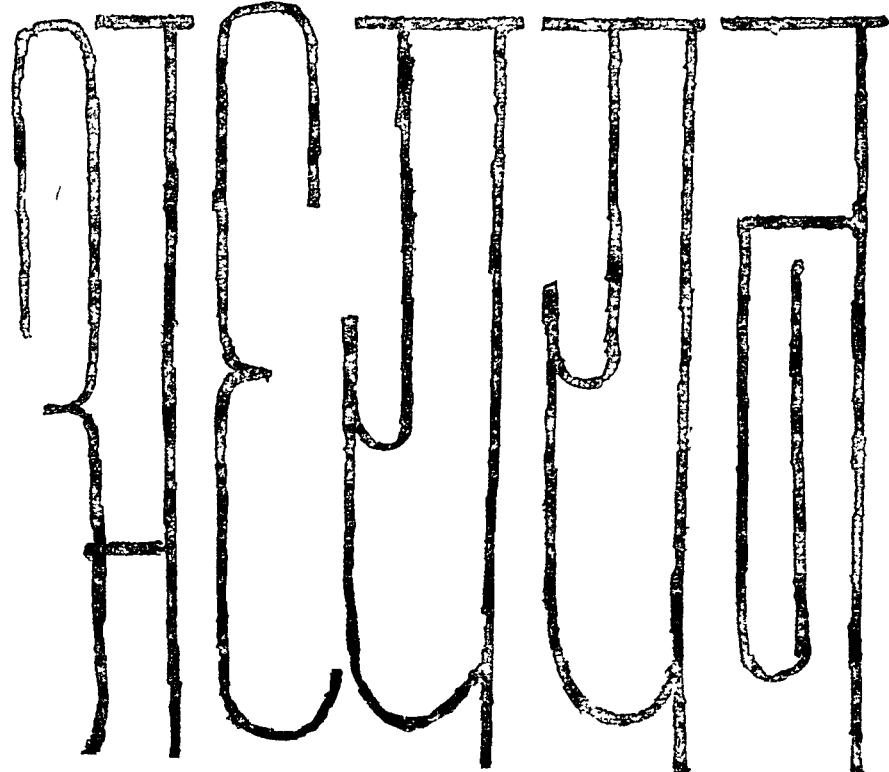


शारतीय विचारणा

की. ए. ए.



© डॉ. भीमानाथ शाही

ग्रन्थ पाठ रथवे

प्राप्ति विद्या विजयी



प्राप्ति विद्या

२२०३ गली छठीगां

तुरंगामेर दिल्ली ६

८२४ ३८

प्रथम मस्वरण जावरी, १६६६

प्राप्ति विद्या

मुद्रक रूपक प्रिट्टा दिल्ली

प्राप्ति मुद्रक परमहंस प्रग दिल्ली

भाष्यकार

दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा मन्त्रालय के तत्त्वावधान में पुस्तकों के प्रकाशन की विभिन्न योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं। हिन्दी में अभी तक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नहीं है, इसलिए ऐसे साहित्य के प्रकाशन को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह तो आवश्यक है ही कि ऐसी पुस्तकें उच्च कोटि की हो, किन्तु यह भी ज़रूरी है कि वे अधिक महगी न हो ताकि सामान्य हिन्दी पाठक उन्हें खरीदकर पढ़ सके। इन उद्देश्यों को सामने रखते हुए जो योजनाएँ बनाईं गई हैं, उनमें से एक योजना प्रकाशकों के सहयोग से पुस्तकों की निश्चित सख्त्या में प्रतियाँ खरीदकर उन्हें मदद पहुंचाती है।

प्रस्तुत पुस्तक इसी योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जा रही है। इसके प्रकाशन और कापी राइट इत्यादि की व्यवस्था प्रकाशक ने स्वयं की है तथा इसमें शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा स्वीकृत शब्दावली का उपयोग दिया गया है।

हमें विश्वास है कि प्रकाशकों के सहयोग से प्रकाशित साहित्य हिन्दी को समृद्ध बनाने में सहायक सिद्ध होगा और साथ ही इसके द्वारा ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित अधिकाधिक पुस्तके हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध हो सकेंगी।

आशा है यह योजना सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय होगी।

ए-पंडितालय

निवेशक
केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय



अथ...

शब्दों का अध्ययन तीन खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड में तीन अध्याय है। पहले में शब्द की परिभाषा तथा उसका वर्गीकरण है। दूसरे में शब्दों का अध्ययन करने के लिए शब्द-संकलन-विधि है। तीसरे में उन मुख्य-मुख्य पद्धतियों का सकेत किया गया है, जिनसे शब्दों का अध्ययन किया जा सकता है।

दूसरे खंड में कुछ प्रमुख शब्द-अध्ययन पद्धतियों से शब्दों के अध्ययन पर विचार किया गया है। इसमें कोशविज्ञान, व्युत्पत्तिविज्ञान, नामविज्ञान, प्रयोगविज्ञान, अर्थविज्ञान, स्वनविज्ञान (ध्वनिविज्ञान), रचनाविज्ञान तथा शब्दसमूहविज्ञान शीर्षक आठ अध्याय हैं। इनमें कुछ अध्यायों के विषय तो उनके शीर्षकों से ही स्पष्ट हैं, किन्तु दो-तीन के बारे में स्पष्टीकरण आवश्यक है। प्रयोगविज्ञान में उन वातों को लिया गया है जिनका ध्यान शब्दों का प्रयोग करते समय रखना आवश्यक है। रचनाविज्ञान में शब्दों की रचना में अपेक्षित घटकों पर विचार करने के अतिरिक्त रचना की पृष्ठमूर्मि में निहित आधार पर भी विचार गया है। शब्दसमूहविज्ञान में भाषा और व्यक्ति के शब्दसमूह के सबब में विचारणाय वाते ली गई है। भाषाविज्ञान की परपरागत शब्दावली में किसी उचित नाम के अभाव में इन शीर्षकों के लिए ये नए नाम बनाने पड़े हैं।

तीसरा खंड परिशिष्ट है, जिसमें प्रारंभ में १०१ हिन्दी शब्दों की कहानी है। 'विज्ञान का जन्म और जीवन' में मैंने विज्ञान शब्द के इतिहास को लेकर एक ललित निवंध लिखने का प्रयास किया है। शेष में विभिन्न प्रकार के शब्दों का विभिन्न हृष्टियों से अध्ययन है।

पारिभाषिक शब्दों के सबब में दो शब्द कहना अपेक्षित है। मैं चाहता तो यह था कि भारत के शिक्षा मत्रालय के शब्दावली आयोग द्वारा निर्वाचित भाषा-विज्ञान विषयक शब्दावली का ही आद्यत प्रयोग करूँ किन्तु अभी तक वह प्रकाशित नहीं हुई है। फिर भी उसके जो कुछ शब्द मुझे इधर-उधर से मिल सके हैं, मैंने उन्हे अपनाया है। शेष

"मैं के हैं तो या तो मिनी में बहुत प्रचलित है या दम पढ़ह ऐसे हैं
जिन्हें जिगा उचित मौके परमार मुझे बनाना पड़ा।

"मैं के बारे में जो बातें मैंने भवन कही हैं, वे भी अल्पाधिक
स्वप्न में यां पाए हैं तथा ऐसी भी बातें हैं जो गारेतिं स्वप्न में या
गविष्यार में प्रस्तुती बार कही जा रही हैं।

"मौकार के उगाही सचान्ति थी जवाहर चौधरी के प्रति मैं बहा
पामारा हूँ जिसने मेरा भवन इस्मायामो के बाबजूँ वा पुस्तक मुम्म पूरी

—भोसानाय तिशारी

विषय-अनुक्रम

खण्ड १

१. शब्द परिभाषा और वर्गीकरण	६
२ शब्द-संकलन	२८
३ शब्द-अध्ययन-पद्धति	४५

खण्ड २

४. कोश-विज्ञान	५०
५ व्युत्पत्ति-विज्ञान	६०
६ नाम-विज्ञान	७६
७. प्रयोग-विज्ञान	१०२
८. अर्थ-विज्ञान	१२०
९. स्वन-विज्ञान	१३४
१०. रचना-विज्ञान	१४३
११. शब्दसमूह-विज्ञान	१५१

खण्ड ३

परिशिष्ट

◦ एक सौ एक शब्दों की कहानी	१६७
◦ हमारे पारिवारिक शब्द	२०६
◦ सप्ताह के दिनों के नाम	२१३
◦ विज्ञान का जन्म और जीवन	२१७
◦ अंग्रेजी महीनों के नाम	२२१
◦ कहारों की साकेतिक शब्दावली	२३२
◦ ग्रीक, लैटिन और अरबी में संस्कृत शब्द	२३५

शब्द : परिभाषा और वर्गीकरण

परिभाषा

‘शब्द’ का मूल अर्थ है ‘ध्वनि’। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद हैं। ‘शब्द’, ‘शब्द’, आदि एक से अधिक धातुओं से इसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है। अधिक प्रचलित मत यह है कि शब्द का सम्बन्ध ‘शब्द’ धातु से है (शब्द + धाता), जिसका अर्थ है ‘शब्द करना’, ‘ध्वनि करना’ या ‘बोलना’ आदि। यो कुछ लोग ‘शब्द’ को ‘शब्द’ से बनी नामधातु भी मानते हैं। अंग्रेजी शब्द word (डच woord, जर्मन wort, गोथिक waurd, आइसलैंडिक orth, लैटिन verbum, ग्रीक Iiro) का सम्बन्ध भी ‘बोलना’ या ‘ध्वनि करना’ से है। अरबी ‘लफज़’ भी मूलतः ‘मुँह से फेका हुआ’ या ‘ध्वनि किया हुआ’ या ‘बोला हुआ’ है। इस प्रकार ‘शब्द’ के विभिन्न भाषाओं में प्राप्त पर्याय भी मूलतः एक दूसरे से बहुत दूर नहीं हैं।

संसार की सभी भाषाओं को दृष्टि में रखते हुए शब्द की सभी दृष्टियों से पूर्ण परिभाषा देना प्रायः असम्भव-सा है। इस विषय पर विचार करते हुए येस्पर्सन, वेन्ड्रिये, डैनियल जोन्स तथा उल्डल आदि अनेक विद्वानों ने इस असमर्थता को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। इस असम्भवता के बावजूद शब्द की अनेकानेक परिभाषाएँ दी गई हैं। पतंजलि कहते हैं—‘श्रोत्रोपलविध-वुद्धिनिर्ग्राह्य प्र योगेणाभिज्ञवितः आकाशदेशः शब्दः।’ अर्थात् शब्द, कान से प्राप्य, वुद्धि से ग्राह्य, प्रयोग से प्रस्फुरित होने वाली आकाशव्यापी ध्वनि है। पतंजलि ने विस्तार से भी ‘शब्द’ पर विचार किया है, जिसके निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है उनकी दृष्टि में उच्चरित, श्रव्य, वुद्धिग्राह्य और अर्ववोधक ये चार विशेषण शब्द की विशिष्टता की ओर सकेत करते हैं। दूसरे शब्दों में शब्द वह है जो उच्चरित, श्रव्य, वुद्धिग्राह्य और अर्ववोधक हो। पतंजलि एक स्थान पर कहते हैं—‘प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनि, शब्दः।’ अर्थात् वह

जिससे "यहार या लोक म पर" के अथ की प्रतीति हो शब्द है। 'अगार पकास म आता है यमोच्चारिनेत अथ प्रतीयते स शब्द। अर्थात् जिसके बोलने से अथ की प्रतीति हो, वह (ज्ञनि) शब्द है।

पश्चिम म भी इस दृष्टि से भाषा प्रयोग हुए हैं। पासर^१ शब्द वो ऐसी लघुतम भाषिक इकाई मानते हैं जो एवं पूरा उच्चार के रूप में वाम कर सके। उन्मन इसे भाषा की लघुतम महत्वपूर्ण इकाई कहते हैं। एनटिवस्तु शब्द वो विचार भार अथ की स्वतंत्र इकाई मानने के पक्ष में हैं। मेये इसे अथ और ज्ञनि समूह का एसा योग मानते हैं जिसका व्याकरणिक प्रयोग हो सके। बूमफील्ड इसे भाषा का लघुतम मुद्रन रूप कहते हैं। राबट सन और दगिड़ी शब्द का लाक्ष्य में लघुतम स्वतंत्र इकाई मानते हैं। स्वीट इसे लघुतम अर्थिक इकाई कहते हैं। अनक अथ विद्वानों ने भी ऐसी ही या इसमें मिलती जुलती वातें कही हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि अथ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई शब्द है।^२ इस परिभाषा में शब्द के सबूत में प्रमुखत दो वातें वही गई हैं। ये ऐनो ही वातें शब्द की विशेषता मानी जा सकता है —

- (१) शब्द अथ के स्तर पर लघुतम इकाई है। इसमें दो सबूत हैं—
- (२) इसका एक अथ होता है (इस दृष्टि से तिरयक शब्द को शब्द नहीं माना

1 Palmer—The smallest speech unit capable of functioning as a complete utterance

Ulman—The smallest significant unit of language

Entwistle—A word is an autonomous unit of thought and sense. It results from the association of a given meaning with a given grammatical employment or is a complex of sounds which in itself possesses a meaning fixed and accepted by convention or is 'the smallest thought unit vocally expressible.'

Mullett—A word is the result of the association of a given meaning with a given combination of sounds capable of a given grammatical use.

Robertson तथा Cassidy—The smallest independent unit within the sentence

Sweat—An ultimate sense unit

जा सकता); तथा (ख) अर्थ के स्तर पर शब्द लघुतम होता है। इसका आशय यह हुआ कि यहाँ 'मूल' या 'रूढ़' शब्दों की बात की जा रही है। 'यौगिक' या 'योगरूढ़' शब्दों की नहीं। यों व्यवहार में वे भी शब्द हैं किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से वे लघुतम इकाई नहीं हैं, यौगिक हैं। उदाहरणार्थ 'अपूर्ण' एक यौगिक शब्द है, किन्तु 'पूर्ण' एक शब्द या मूल-शब्द है। यह ध्यातव्य है कि 'शब्द' अर्थ के ही स्तर पर भाषा की लघुतम इकाई है, ध्वनि के स्तर पर नहीं, क्योंकि एक ध्वनि का सर्वत्र अर्थ नहीं होता। जैसे 'आ' (=आ जा) का तो अर्थ है, किन्तु 'क्' का नहीं है।

(२) इस परिभाषा में 'स्वतत्र' शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ यह हुआ कि 'शब्द' ऐसा होता है, जो प्रयोग या अर्थ की दृष्टि से स्वतत्र होता है। उसे किसी की सहायता अपेक्षित नहीं होती। उपसर्ग (जैसे 'अ'=नहीं) भी एक प्रकार से अर्थ के स्तर पर लघुतम इकाई है, किन्तु यह स्वतत्र नहीं होता अर्थात् अकेले, विना किसी शब्द की सहायता के (जैसे अपूर्ण) इसका प्रयोग नहीं हो सकता, अत इसे शब्द नहीं कह सकते। इसी प्रकार प्रत्यय (जैसे ता=भाववाचकता) भी परतत्र (जैसे पूर्णता) होते हैं। अकेले प्रयोग करने योग्य नहीं होते, अतः इन्हें भी शब्द नहीं माना जा सकता। इसके विपरीत 'पूर्ण' एक शब्द है, क्योंकि वह स्वतत्र रूप से प्रयुक्त हो सकता है।

स्पष्ट ही अन्य परिभाषाओं की तरह यह परिभाषा भी सभी दृष्टियों से पूर्ण न होकर कामचलाऊ है, और एक विशेष दृष्टिकोण से की गई है। व्यापकतम रूप में उपसर्ग, प्रत्यय, रूढ़ शब्द, यौगिक शब्द, सार्थक शब्द, निरर्थक शब्द सभी 'शब्द' माने जा सकते हैं। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय वैद्याकरणों की परिभाषाये अतिव्याप्त दोप से दूषित होते हुए भी अपेक्षाकृत अधिक उचित ज्ञात होती है। अतिव्याप्त दोप इसलिए है कि इन परिभाषाओं में 'शब्द' के साथ-साथ 'वाक्य' भी समा सकता है।

प्रश्न उठेगा कि फिर शब्द की परिभाषा क्या माने? यो तो ऐसी कोई भी परिभाषा देना बड़ा कठिन है जो सार की सभी भाषाओं पर व्यावहारिक और वैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से लागू हो सके किन्तु मोटे रूप से मैं कहना चाहूँगा —

अर्थ और ध्वनि के योग की वह स्वतंत्र इकाई जो भाषा में वाक्य-रचना के स्तर पर एकाधिक इकाइयों की न हो, शब्द है।

इस परिभाषा में चार बातें कही गई हैं —

(१) शब्द अर्थवान होता है।

(२) वह एक या अधिक ध्वनियों का होता है।

(३) वह स्वतंत्र इकाई होता है।

(४) वाक्य रचना के स्तर पर वह एकाधिक इकाइयों का नहीं होता।

लघुतम शब्द को जानकूम कर यहाँ परिभाषा में नहीं रखा गया है। 'दाकलाना' बुडसवारी या फूनदान जसी इकाइयाँ शब्द तो हैं किन्तु ये लघुतम नहीं हैं।

वर्गीकरण

शब्दों का वर्गीकरण शब्दों के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण अग है। विश्व की अनेक भाषाओं में अनेक दृष्टियों से शब्दों का वर्गीकरण विद्या गया है। भारतवर्ष में प्राचीनतम वजानिक वर्गीकरण यास्क मुनि का माना जाता है। (यद्यपि इसके पूर्व भी शुभ अनुभ सावु प्रसापु रूप में गान्धर्वीकरण विद्या जाता था) जो उनके निष्ठक में मिलता है। यास्क (प्रति सदी ई०पू०) के अनुसार गृह चार प्रकार के होते हैं—चत्वारि पदजातानि नामास्याते चोपसग निपात। स्पष्ट ही यह निपाताद्वच (११) भर्यति नाम, आस्यात उपसग निपात। स्पष्ट ही यह वर्गीकरण व्यावरणिक या वाक्य में प्रयोग पर आधारित है। भाज तक जितने भी गान्धर्वीकरण किये गये हैं उसमें इसका महत्वपूर्ण स्थान है तथा कुछ वर्गीकरण व्यावरणिक या वाक्य में प्रयोग पर आधारित है। भाज तक जितने दृष्टियों से यह सर्वाधिक वजानिक ही है। वाग्सनयी प्रातिशाश्य में भी शब्द चार प्रकार के मान गय हैं—तिङ् छृत तद्दित, समाम। कुछ भय प्रतिशाश्यों में भी इस प्रकार के सबेत मिलते हैं। पाणिनि (प्रति सदी ई०पू०) के अनुसार शब्दों के दो ही प्रमुख वर्ग हैं—सुवन्त भ्रोर तिष्ठन्त। यास्क का आस्यात तिया शब्दों के लिए आया है जिसे पाणिनि तिष्ठन्त वहते हैं। यास्क के शय तीन भय यो प्रयोगत वेवल नाम ही सुवत है। इस प्रकार घब्य को भी पाणिनि सुवन्त के घन्तगत (पट्टाध्यायों २४५२) रखते हैं यद्यपि यह बहुत टीक नहा है। सस्तृत प्रयोगों को देखन हुए शब्द के सुवन्त, तिष्ठन्त घब्य ये तीन भय मानना बदाचित भविक्त समीक्षीत हो सकता है। महाभाष्यकार न शब्दों के सौविक भ्रोर तिष्ठन्त दो भय मानते हैं। कुछ सस्तृत व्याकरण (भ्रोर थगार प्रकार) न शब्द के प्रहृति प्रत्यय उपर्युक्त प्रातिपनिक विभक्ति उपसर्जन समाम पर वाक्य भ्रोर प्रत्यय य १२ भय मानते हैं। यह का आधार पर धरा यहाँ वाचन समाव भ्रोर व्यजक तान प्रकार के शब्द मान गय हैं, इसी प्रकार अनिहाम का आधार पर तत्त्वम प्राप्ति भय भी किए गए हैं। परं चम म व्यावरणिक अटिन न शब्द माट वर्गों (eight parts of speech) म विभाजित किए गए हैं—मना (noun) गवनाम (pronoun) विश्वायण

(adjective), क्रिया (verb), क्रियाविशेषण (adverb), समुच्चयवोधक (conjunction), सबधसूचक (preposition), विस्मयादिवोधक (interjection) यह वर्गीकरण अग्रेजी का है। अन्य योरोपीय भाषाओं में भी प्रायः इन्हीं को स्वीकार किया गया है। जैसा कि येस्पर्सन ने कहा है, यह वर्गीकरण व्यावहारिक तो है, किन्तु तात्त्विक या वैज्ञानिक नहीं है। इसी कारण इस पर विचार करते हुए विद्वानों ने आठ के स्थान पर दो, चार तथा नीं आदि वर्ग मानने के सुझाव दिये हैं। इन आठ वर्गों का विकास मूलतः प्लेटो के वर्गीकरण के आधार पर हुआ था। अरस्तू ने भी कई रूपों में शब्दों का वर्गीकरण किया था, जैसे रचना के आधार पर सरल (इसी को हिन्दी में रुढ़ या रुढ़ि कहते हैं) तथा यौगिक (यह सस्कृत या हिन्दी के यौगिक के समान है)। इसी प्रकार प्रचलन, ध्यंजना तथा अर्थ आदि के आधार पर भी अरस्तू ने प्रचलित-अप्रचलित, लाक्षणिक, आलकारिक, नवनिर्मित, व्याकुंचित, संकुचित या परिवर्तित आदि भेद किये हैं। येस्पर्सन ने इस पर विचार करते हुए शब्द को प्रायोगिक या व्याकरणिक दृष्टि से, (१) नाम या सज्ञा (substantives), (२) विशेषण, (३) सर्वनाम, (४) क्रिया, तथा (५) अव्यय (जिसमें वे प्रथम चार को छोड़कर भाषा के शेष सभी शब्दों को रखने के पक्ष में हैं), इन पाँच वर्गों में रखने का विचार प्रकट किया है। रचना की दृष्टि से वे शब्दों को प्राइमरीज (primaries), ऐडजनक्ट्स (adjuncts) तथा सबजनक्ट्स (subjuncts) इन तीन वर्गों में रखने के पक्ष में हैं।

कुछ और भी, इसी प्रकार के वर्गीकरण किये गये हैं।

वर्गीकरण का आधार

वर्गीकरण करने के पूर्व यह विचारणीय है कि किसी भाषा के शब्दों को वर्गीकृत करने के कितने आधार हो सकते हैं। वस्तुतः यदि गहराई और विस्तार से देखे तो इसके बहुत अधिक आधार हो सकते हैं, जिनमें प्रमुख त्रिमाकित है।

(क) इतिहास

शब्दों के इतिहास या व्युत्पत्ति के आधार पर शब्दों के वर्गीकरण का भारत में प्रथम वैज्ञानिक प्रयास भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में किया है —

त्रिविध तच्च विज्ञेय नाट्य योग ससम्मत

समान शब्दैविभ्रष्ट देशीमतमथापि वा

अर्थात् शब्द समान, विभ्रष्ट तथा देशीमत, ये तीन प्रकार के हैं। इन्हीं को आगे चलकर तत्सम, तद्भव तथा देशी या देशज कहा गया। वाद में इनमें एक

विदेशी वग जोड़कर इतिहास के माध्यार पर शब्द चार प्रकार के माने गये। भारत मे बाहर इस प्रकार के किसी निर्वित वर्गिकरण की परिपत्रा बदाचित नहीं मिलती।

अग्रे इन चारों तथा इनम सबद्व उपवर्गों पर कुछ विस्तार स—विश्वयत हिंदी के प्रयोग म—विवार किया जा रहा है।

तत्सम

इमां शास्त्रिक भय है उग्के (तत) समान (सम)' भयात 'सस्तृत के समान'। भरत ने अपने नाट्यग्रन्थ म 'तत्सम वो समान' तथा कुछ अय लोगो ने इसे तद्रूप कहा है। इस तरह 'तत्सम' व शब्द हैं जो सस्तृत के समान हैं अर्थात् जिनम परिवर्तन नहीं होते हैं। जस हृष्ण, दधि, आभीर, कृष्ण और्मक सप्तला, कम आदि। इस प्रसाग म यह बात भी उल्लेख है कि अय भाषाओं से भी आकर अनेक शब्द सस्तृत म ज्यो के त्या या परिवर्तित रूप म गृहात हुए और उनका प्रयोग होने लगा, किर वे सस्तृत के मान लिए गय और आज वे तत्सम ही मान जाते हैं। जस 'गो', 'सौह सुमेरी हैं 'पर्गु' अकादी है अमुर असीरियन है 'कूप, गलाका फिलो उग्गिव है, कदला, बाण, लावून, विनाक गगा, निग आस्ट्रिव हैं 'कला', गग ताना' पुष्प रात्रि' भकट 'गम इविड हैं यवन' होडा, 'द्रम्म ब्रमेल यूनानी हैं रामक', 'दीनार' लातीनी हैं रमल 'सहम भरवो हैं, वानिरा' 'नि शारण' ईरानी हैं तुर्क्य, खच्चर' तुर्की हैं एव 'मसार' तथा 'चीन (चीनकोलक चीनाशुक) चीनी हैं।

हिंदी म स्रोत की विष्ट से 'तत्सम' शब्द चार प्रकार के हैं

(क) प्राकृता (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश) से होते आन वाले शब्द जस अवल अघ, अचला कान बुमुम, जल्लु दण्ड दम आदि। इस वर के शब्दों की सस्मा काफी बढ़ा है। इनम कुछ शब्द ता एम हैं जो सस्तृत से परम्परागन रूप म प्राप्त होता को मिले और जो विणिट कारणों से अपने स्वरूप वा भ्रक्षण रूप मके। दसरे वे हैं जो सस्तृत के प्राप्त होता पर प्रभाव स्वरूप, प्राप्त होता म प्रयुक्त हुए। अर्थात् प्राप्त शब्द (loan word) रूप म सस्तृत से प्राप्त होते मे गये। ऐस 'गना' के तर्भव रूप भी प्राप्त होता म मिलत हैं।

(ख) सस्तृत स सीधे हिंदी म भक्ति आधुनिक आदि विभिन्न वाला म तिय गय शब्द जस कम विद्या जान, कथ हृष्ण, पुस्तक माग, मत्स्य मय, मध पुष्प, मुग मधुर, कुमार आदि। ऐसे शब्दों की मत्त्या प्रथम वग

से भी बड़ी है। सर्वाधिक तत्सम शब्द सभी आधुनिक आर्य भाषाओं में इसी रूप में आये हैं।

(ग) सस्कृत के व्याकरणिक नियमों के आधार पर हिन्दीकाल में निर्मित तत्सम शब्द। इस प्रकार के अधिकाश शब्द आधुनिक काल में शब्दों की कमी की पूर्ति के लिए बनाये गये हैं, और बनाये जा रहे हैं। जैसे जलवायु (आवहन), वायुयान (हवाई जहाज या एरोप्लेन), सम्पादकीय (editorial), प्राध्यापक (lecturer), रेखाचित्र (sketch), प्रभाग (section), वाक्यविश्लेषण (sentence analysis), निदेशक (director), नगरपालिका (municipality), समाचारपत्र, पत्राचार, (correspondence), लघुशका, कटिवद्ध (फाठ कमरवस्ता) आदि। ऐसे शब्द इधर पारिभाषिक शब्दों के लिए लाखों की संख्या में बने हैं।

(घ) अन्य भाषाओं से आये तत्सम शब्द। इस वर्ग के शब्दों की सख्ता अत्यत्यल्प है। कुछ थोड़े शब्द वगाली तथा मराठी के माध्यम से आये हैं। इनमें कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो सस्कृत में भी प्रयुक्त होते थे, और कुछ ऐसे हैं जो इन भाषाओं में सस्कृत के आधार पर बने। कुछ उदाहरण हैं : वगाली वक्तृता, उपन्यास, गल्प, कविराज, सदेश, अभिभावक, निर्भर, तत्त्वावधान, अर्थर्थना, आपत्ति, सञ्चान्त, स्वप्निल, उर्मिल, वन्यवाद, मराठी वाड़मय, प्रगति।

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले तत्सम शब्द सज्जा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय हैं। सज्जा शब्द प्राय दो प्रकार के हैं :

(क) सस्कृत के प्रातिपदिक—जैसे राम, कृष्ण, फल, भित्र, कुसुम, पुस्तक पत्र, पुष्प, देव, वालक, वृक्ष, मनुष्य आदि इकारान्त; कवि, हरि, मुनि, कृष्ण, कपि, यति, विधि, रवि, अग्नि, पति, रुचि, मति आदि इकारान्त ; सुधी, लक्ष्मी आदि इकारान्त, भानु, बत्रु, विष्णु, गुरु, धेनु, जन्तु, प्रभु, शिशु, पशु, सावु आदि उकारान्त, तथा वबू, चमू, भू, स्वयंभू आदि ऊकारान्त; आदि।

(ख) संस्कृत के प्रथमा एकवचन—जैसे सखा, पिता, भ्राता, जामाता, दाता, नेता, कर्ता, माता, दुहिता, वरिणी, सम्राट्, आत्मा, ब्रह्मा, राजा, महिमा, युवा, हस्ती, करी, पक्षी, स्वामी, तपस्वी, सीमा, नाम, चर्म विद्वान्, भगवान्, धनवान् आदि।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनका प्रातिपदिक रूप एव प्रथमा वहुवचन रूप एक ही होता है, अत. इन्हे उपर्युक्त दो में किसी में भी रखा जा सकता है। जैसे वारि, दधि, अस्त्य, वस्तु, मधु, विद्या, रमा, वाला, निशा, कन्या, भार्या नदी, स्त्री, "जगत्, सुहृद् आदि।

सर्वनाम वेवल दो ही बहुप्रयुक्त हैं जो पट्ठी एकवचन के रूप हैं मम, तत् ।

विसेपण प्राय केवल प्रातिपदिक रूप म ही प्रयुक्त होते हैं । जसे तीव्र नूतन, नव नवीन पुरान चिरतन, सु-दर द्वेष आदि ।

तत्सम शब्दन के आधार पर कुछ वियाए भी बनी है, जसे स्वीकारना, हिंदी म प्रयुक्त तत्सम अव्यय मुख्यत तीन प्रकार के हैं

(३) सस्तृत के समान—जस प्रयक सहसा धिक भागि । ये इसी प्रकार सस्तृत म भी आते है, तथा हिंदी म भी ।

(४) सस्तृत के वई रूपो म एक—कुछ अव्यय ऐसे हैं जो सधि के नियमो आदि के कारण सस्तृत म तो वई रूपो मे भात हैं, किंतु हिंदी म प्राय उनम एक रूप ही प्रयुक्त होता है । जसे शन शनृ शनैस । सस्तृत म ये तीना मिलगे किन्तु हिंदी म वेवल 'न प्रयुक्त होना है । इसी प्रकार 'प्रातर प्रातस प्रात मे हिंदी म 'प्रात ही भात है । 'साय सायम मे भी प्राय 'साय हिंदी म शुभीत है ।

(५) सस्तृत का मून रूप—कुछ अव्यय ऐसे भी हैं जो सस्तृत म तो दूसरे रूप म आते हैं किंतु हिंदी म उनके रूप को न लेकर मूल को स्वीकार विया गया है । उदाहरणाथ सस्तृत म अव्यय रूप म नित्यम ही भायेगा 'नित्य' नही, किंतु हिंदी म नित्य ही भायेगा 'नित्यम नही ।

हिंदी म कुछ ऐसे भी हैं जो वरतुत तत्सम नही है, किंतु जिह प्राय तत्सम समझा जाता है । एम शब्दो मे दा वग बनाग जा सकते हैं । प्रयम वग एस गन्हे का है जो सस्तृत प्रयमा एकवचन के रूप म से विसग हटाकर हिंदी म लिये गय हैं जस घण्टरा । स० म 'घण्टरा' कोई शब्द नही है । स० म इमका प्रातिपदिक है 'घण्टरा' तथा प्रयमा ए० रूप म 'घण्टरा' । घण्टरा विसग हो हटाने स हिंदी घण्टरा बन गया है । घाड़मा, पय, नम चर, मन वय रज यस तम या मर गिर भागि भी ऐसा ही है । इन सभी का प्रातिपदिक है ग-युक्त तथा प्रयमा ए० रूप विसग-युक्त । इस बुझ का प्रातिपदिक है—प-युक्त तथा प्रयमा ए० रूप विसग-युक्त । इस प्रकार य तथा इग प्रकार के याय शब्द तत्सम नही हैं । दूसरी थेगी के शब्द एस है जो कुछ अय प्रकार के परिवर्तना के कारण तत्सम नही रह गय है (नमम अप होटर के भीतर है) घनराष्ट्रीय (घनत्ताराष्ट्रीय कुछ विडानो का इग सबय म नमभ भा है) राष्ट्रीय (राष्ट्रीय), उपरोक्त (उपयुक्त), प्रण (पण) मण्डेन (मण्डान) घनुष्टहोन (घनुश्वीत) शवाणी (शवियाणा शविया) घाघोन (घपान) इड (इट), शोड (शोड) होहा

(होड़), श्रीपवि (ओपवि, श्रीष्व), मनोकामना (मन कामना) आदि। ऐसे सभी शब्दों को तत्समाभास कहा जा सकता है, क्योंकि इनमें तत्सम का आभास होता है। यो वस्तुत ये शब्द तद्भव या परवर्ती तद्भव (जिन्हे प्रायः अर्थ-तत्सम कहा जाता है) हैं।

तत्सम शब्द की तत्समता

सस्कृत, प्राकृत आदि के प्राचीन आचार्यों से लेकर आधुनिक भाषाशास्त्रियों तक, सभी ने 'तत्सम' को 'सस्कृत के समान' के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु मुझे लगता है कि यह नामकरण बहुत सोच-समझकर नहीं किया गया है। जिन शब्दों को तत्सम कहा जाता है उनमें यदि वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो 'तत्समता' से अधिक 'अतत्समता' है। दूसरे शब्दों में वे प्रायः कम वातों में सस्कृत के समान हैं, और अधिक वातों में सस्कृत के असमान हैं। अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए मैं इस समस्या को कुछ विस्तार से ले रहा हूँ। 'शब्द' के दो पक्ष होते हैं। एक तो आम्भन्तर पक्ष, जिसे उसका 'अर्थ' कहते हैं, और जो शब्द की 'आत्मा' कहलाने का अधिकारी है, तथा दूसरा वाह्य पक्ष, जिसमें उसका वाह्य रूप या उसमें प्रयुक्त व्यनियाँ आती है, और जिसे शब्द का 'शरीर' कह सकते हैं। शब्द के इन दोनों पक्षों—आत्मा और शरीर—को दृष्टि से रखकर हम कह सकते हैं कि सच्चे अर्थों में कोई शब्द 'तत्सम' कहलाने का अधिकारी तभी है, जब वह आत्मा एवं शरीर दोनों ही दृष्टियों से सस्कृत के समान हो। किन्तु तथ्य यह है कि इस रूप में बहुत ही कम शब्द समान मिलेंगे। पहले अर्थ या शब्द की आत्मा की वात ली जाय हिन्दी में अनेक तत्सम कहलाने वाले शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ सस्कृत के समान नहीं है। उदाहरण के लिए हिन्दी में दो शब्द हैं 'जघा' और 'जाघ'। प्रचलित परिभाषा के अनुसार पहला तत्सम है और दूसरा तद्भव है। 'जघा' शब्द वैदिक तथा लौकिक सस्कृत, दोनों में मिलता है, किन्तु उसका अर्थ 'जाघ' न होकर 'घुटने और टखने के बीच का भाग' होता है। इस तरह सस्कृत एवं हिन्दी 'जघा' में अर्थ की असमानता है। अर्थात् अर्थ की दृष्टि से हिन्दी में 'जंघा' तत्सम नहीं है, यद्यपि माना जाता है। शीर्षक (स० अर्थ 'सिर', हि० अर्थ heading), पतग (स० अर्थ सूर्य, पश्ची, शत्रु, हि० अर्थ 'गुड़ी' भी), पदवी (स० अर्थ रास्ता, पथ, हिन्दी अर्थ उपावि आदि), प्रणाली (स० अर्थ नाली; हिन्दी अर्थ ढग, पद्धति), कटि (स० अर्थ कूर्ण्हा, नितम्ब, हिन्दी अर्थ कमर), निर्भर (स० अर्थ बहुत अधिक, पूर्ण, भरा; हिन्दी आश्रित, अवलम्बित, मुनहसिर भी), प्रान्त (स० अर्थ सीमा, अन्त, किनारा, कोना, हिन्दी अर्थ सूवा भी), परिवार (सस्कृत अर्थ घेरने वाला, नौकर-चाकर-समूह;

भनुवामी, म्यान, हि० भय कुटुम्ब) मूला (ग० घर्य गूढ, हि० भय तालिका भी), तथा नुटि (स० भय दूर, दूरना, हि० भय भूल, दोष) आदि शब्द भी इसी प्रकार के हैं।

जहाँ तक 'गद्य' के गरीर या उनमें प्रयुक्त ध्वनियाँ भ तत्त्वमता का सबै हैं, यह एक मोर्गी बात ध्यान में रखने की है कि विश्व में कोई भी दो भाषाएँ या बोलियाँ ऐसी न होंगी जिनकी ध्वनियाँ एवं दूसरे के पूरुणत अन्यान्य हों। सस्कृत हिंदी भी इस सामाज्य नियम का अपवाद नहीं मानो जा सकती। मग्नि इस समस्या को बहुत गहराई से न भी लें तो भी कुछ अन्तर तो बहुत ही स्पष्ट हैं जसे 'अ' ध्वनि पहले स्वर थी, अब वह रि है, व' पहले 'मूढ़' य ध्वनि थी अब वह तानव्य 'ए' भ आम समाहित हो गई है, अन्त्य 'अ' पहले उच्चरित था, अब कुछ अपवाद को छोड़कर प्राय नहा है ए' अब बहुत कुछ ड हो गया है, 'अ' ध्वनि न या 'य' सी हो गई है तथा 'ए', 'ओ' वैदिक सस्कृत में माइ, 'माऊ' थे, लौकिक सस्कृत में 'छइ' 'मर', किन्तु अब ये 'आए' आग्ना हैं। एस भारती की मूली भीर भी बढ़ाई जा सकता है। निष्प्रवृत्त तत्त्वमें वहाँ दो शब्द ध्वनि की दृष्टिसे भी तत्त्वमें नहीं हैं। हृष्ण, राम, चंचल, गप, अदृश, गाप जस 'गद्य' आज के उच्चारण में विर्झें, रीम, चंचल, गश, रिंडें, गाप हैं। इस प्रकार गद्य की भास्त्वा अर्थात् अथ एव गरीर अर्थात् ध्वनि, दाना हा दूषितियों से तथावधित तत्त्वमें की तथावधित तत्त्वमता वजानिक दृष्टिसे वित्त्य है। मुझे तो पूरा विश्वास है कि तत्त्वमें माने जाने वाले 'गद्य' में बहुत ही कम होंगे, जिह तत्त्वमें नाम का वास्तविक अधिकारी वहाँ जा सके।

अधत्तत्त्वम्

तत्त्वमें प्रसाग में 'अधत्तत्त्वम्' भी विचारणीय है। इसका प्रयोग मिथ्यसन, चटर्जी आदि आधुनिक बाल के भाषा पास्त्रियों ने उन शब्दों के लिए किया है जो एक प्रकार से तत्त्वमें एवं तदूभव के बाच में हैं। तदूभव वे हैं जो सस्कृत संपालि प्राकृत, अपभ्रंश होते—परिवर्तित होते हिंदी आदि आधुनिक भाषाओं में आये हैं। अधत्तत्त्वम् वे हैं जो प्राहृत अपभ्रंश काल में या आधुनिक भाषा काल में सीधे सस्कृत से लिये गये हैं भीर जिनमें तदूभव जैसे परिवर्तन नहीं हुए हैं, अपितु कुछ अथ प्रकार के थोड़े परिवर्तन हुए हैं। य गद्य तदूभवों की तुलना में तत्त्वमें कुछ ही हटे हैं। उदाहरणात् 'हृष्ण' तत्त्वमें शब्द है, तो 'काटा' 'क' हैया आदि तदूभव है तथा 'किशुन', 'विश्वान' अपनतत्त्वमें हैं। मरे विचार में इनका अधत्तत्त्वमें नाम ठीक नहीं है। तदूभव का अथ है जरा

सस्कृत (तत्) से निकला हो, और 'कान्हा' तथा 'किशुन' दोनों ही सस्कृत कृष्ण से निकले हैं, अत. दोनों ही 'तद्भव' नाम के अधिकारी हैं। हाँ 'कान्हा' के तद्भवीकरण की प्रक्रिया बहुत पहले शुरू हो गई थी तथा 'किशुन' के तद्भवीकरण की बहुत बाद में शुरू हुई। ऐसी स्थिति में पहले को 'तद्भव' या 'पूर्ववर्ती तद्भव' तथा दूसरे को 'परवर्ती तद्भव' कहना भेरे विचार जैसे शब्द परवर्ती में अधिक समीचीन है। हिंदी में प्रयुक्त करम, चन्द्र, घरम, अच्छर, कारज तद्भव ही हैं। पजावी में, प्रमुखतः नामों में, ये परवर्ती तद्भव बहुत अधिक हैं। जैसे सुरिन्दर, राजिन्दर, भुपिन्दर, महेन्द्र आदि।

तद्भव

वे शब्द जो 'तत्' अर्थात् सस्कृत से 'भव' अर्थात् उत्पन्न या विकसित हैं। जैसे काम (=कर्म), धाम (=धर्म), दूध (=दुग्ध), नाच (=नृत्य) तथा घोड़ा (=घोटक) आदि। 'तद्भव' को भरत ने 'विभ्रष्ट', वाग्भृत ने 'तज्ज' तथा चंड और हेमचन्द्र ने 'संस्कृतयोनि' कहा है। संस्कृतभव, ऋष्ट, अपभ्रष्ट, अपभ्रश आदि नामों से भी ये पुकारे गए हैं। आगे इसके साध्यमान सस्कृतभव तथा सिद्धमान सस्कृतभव आदि भेद भी किए गए हैं।

विदेशी

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, विदेशी शब्द का अर्थ है वे शब्द जो अन्य देशों की भाषाओं से आये हों। इन्हे 'म्लेच्छ शब्द' भी कहा गया है। प्राचीन भारतीय पण्डितों को विदेशी शब्दों का विशेष पता नहीं था। इसका प्रमुख कारण यह था कि उस समय तक भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा नहीं थी, और विदेशी भाषाओं के बारे में भी हमारे प्राचीन पण्डितों की जानकारी प्रायः बहुत ही कम थी। यही कारण है कि अनेक विदेशी शब्दों को हमारे यहाँ तत्सम या देश आदि मान लिया गया। उदाहरणार्थ सस्कृत में 'सूर्य' अर्थ में 'मिहिर' मध्ययुगीन फारसी का शब्द है, किन्तु संस्कृत के पण्डितों ने इसे सस्कृत धातु मिह् (=छिड़कना आदि) में इर (किरच्) प्रत्यय के योग से बना माना है। इसी प्रकार 'देशी नाममाला' में कई विदेशी शब्दों (जैसे 'दत्थरो' जो वस्तुत फारसी 'दस्तार' (रूमाल आदि) के सस्कृत में प्रयुक्त रूप 'दस्तार' से विकसित है) को देश भाषा में लिया गया है। 'दीनार', 'द्रम्म' आदि कुछ शब्दों के बारे में अवश्य कुछ प्राचीन पण्डितों को पता था कि ये विदेशी हैं, किन्तु इस प्रकार ज्ञात शब्दों की सत्या बड़ी नहीं है, यद्यपि ऐसे शब्द हैं काफी।

भारतीय धार्यभाषा में विदेशी गांव के लिये जाने की परम्परा प्रत्यक्ष ग्रामीन है। जहाँ विशुलित म धार्यप्र मदेन विद्या गया है भारोषीप्र भाषा भाषिया न बहुत पहल (भारत म आने के बई नी यथ पूव) मुमरी भाषा स ग्राउ (म० गो भ० बाउ, पा० याव ग्राउ) सस्कृत 'परसु' (प्रकरणी म पितृकु ही), सुमेरी 'बनग') तथा रोप (म० तोह, रधिर ग्राउ) पौर एजिप्रन म धरय (म० अयग) लिये थे। इसी प्रशार भारत ईरानिया ने यूराती भाषा स उन दलों को लिया जो समृद्ध म धूर मधिरा, द्वाग, बफ, कूप 'नाका तूग हिरण्य एव वाराह' एव म मिलते हैं। भारत म आने पर भी समय-नामय पर भनव विशी सल्ल सस्कृत म आने रहे। जस यूनाना स स० इम्प्र द्रम, द्रम्म (drakh m० ग्रा० दम्म f० दाम दमडी) स० समिता समिना (semidalis m० म धूर मा है, ग्रा० मिमिदा, हि० सर्वई सेविया), स० गुरण सुरग (synax हि० गुरग) धवन (ion) हाडा (घोरा), वेद (विश्वान्), वलिन (खलिनीस) व्रमन, व्रमलक (व्रमेनास), कस्तुरी (कस्तोरइ घोउत वल्लोर), वस्तार (वस्तिवरास्, हि० वासा) वगु (वेश्वास्, हि० वगनी)। लटिन स रोमन, रामन, दीनार। ईरानी से ग्रन्थ (खाग्र, पावन) दीपि (दिपि) कु-दुर (कु-दुर) निपिस्त (=लिलित, निपिस्त) मिहिर (ग्रामीन पा० मिश्र, मध्य पा० मिहिर, तुलनीय स० मिश्र) मण, (मत, मणुस, द्राहणा का एक जाति), गन गजवर तरम्बुज, तीर तूत। ग्रामीन म पाइवक (पाईक, हि० पाइक=पदन सिपाही या हस्तारा) मोचिमा (हि० माची मध्यवर्ती यहनवी मोचन=मुटना तक का जूता, परवर्ती परा० म मोचव') ही माजा हो गया जो हिन्दी ग्रादि म मूर भव तथा जुहाव दोनों म मिलता है। मध्यकालान पा० 'तस्त का ग्रा० ठठ, ठठ जो भोजपुरी ग्रवधी ग्राउ म टाठी (थाली) बना। हिंदा का ठठरा भी मूलत इसी से सम्बद्ध है, पा० तस्त >ग्रा० ठठ+कार+क>ठठयारम>ठठरा। पुस्तव पुस्तिका (पहरवी पास्त (=लितने वा धमडा) क सस्कृताकृत एव पुस्त +क प्रा० पोतिमा, हि० पोयी), स० सेवय (ग्रा० सवङ<मध्ययुगीन पा० सिवक (हिंदी सिवका) भर० सिवर सिवत्त घामेहक सिवा = मिक्के का साचा)। चान म चीं स भी भारत का सब व पुराना है। चाना स सस्कृत मे चान (चीनाशुक), कीचन (मूल शब्द किचाक, एक प्रकार का वंश) सिदूर (मूल चीनी शब्द त्सिडुड) 'य (कागज के लिए पुराना सस्कृत शान्त, मूल चीनी गांव 'त्सिएट'), मुसार (एक रन मूल चीनी शब्द म्ब-सर) तथा तसर (रेशम विशेष, मूर चीनी शब्द वह स्मर, प्राहृत तथा द्विनी 'टसर) ग्रादि गाँव आये हैं। हिंदी लीची शब्द भी मूलत चीनी

'लीन्स' है। 'चीनी (शक्कर) शब्द भी मूलतः 'चीन' पर आवारित है, किन्तु यह शब्द कदाचित् फारसी होने हुए आया है। मिस्री से मुद्रा (मुद्रिका भी इसी से है, हि० मुंदरी), हिंदी का 'मिश्री' भी मूलतः 'मिस्री' है जो स० 'मिश्र' के प्रभाव से 'मिश्र' उच्चरित होता है। यो काफी लोग इसे 'मिस्री' भी कहते हैं। तुर्की से तुर्क, ठक्फुर, खच्चर।

इस प्रकार मंस्कृत तथा प्राकृत में अनेक भाषाओं से शब्द लिये गये हैं। हिन्दी ने भी इसी परम्परा में पश्तो, तुर्की, फारसी, पुर्तगाली, अंग्रेजी, फ्रान्सीसी, उच्च, स्पेनी, रूसी कई भारतीय भाषाओं से शब्द लिये हैं।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि विदेशी शब्द भी दो प्रकार के हो सकते हैं, एक तो तत्सम और दूसरे तद्भव। तत्सम तो वे हैं जो उसी रूप में प्रयुक्त होने हैं, जैसे विदेशी भाषा में होते थे, तथा तद्भव वे हैं जो अपने मूल रूप से परिवर्तित हो गए हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी में 'पम्प' तत्सम विदेशी (अंग्रेजी) है तो 'दर्जन' तद्भव (अंग्रेजी) है।

हिन्दी आदि अनेक भाषाओं में विदेशी शब्दों का एक और भी रूप मिलता है। यह है अनूदित रूप। ये अनूदित शब्द अपनी रचना में तो तत्सम या मिश्र या तद्भव हो सकते हैं किन्तु मूलतः ये विदेशी हैं, क्योंकि उन्हीं के आवार पर वने हैं। हिन्दी में, ऐसे शब्दों में कुछ तो फारसी से आये हैं जैसे जलवायु (आवहवा) कटिवद्ध (कमरखस्ता) आदि, किन्तु अधिक शब्द अंग्रेजी से आये हैं। कुछ उदाहरण हैं : लालफीताशाही (red tapism) दृष्टिकोण (angle of vision), घ्वेतपत्र (white paper), काला जादू (black magic), दृष्टिविन्दु (point of view), रजतजयन्ती (silver jubilee), डाकखाना (post office), मालगाड़ी (goods train), सवारी गाड़ी (passenger train), अन्तर्रिम (interim), तदर्थ (ad hoc), प्रधानाध्यापक (head master), वातानुकूलित (air-conditioned), सुसतुनित (well-balanced), उपकुलपति (v. c.), प्रार्थनापत्र (application), विराम-चिन्ह (punctuation mark), योजक-चिन्ह (hyphen), पूर्णविराम (full stop), लित कला (fine art), उपयोगी कला (useful art), सम्पादकीय (editorial), प्रकाशक (publisher) सस्करण (edition) आदि।

विदेशी वर्ग में आने वाले शब्दों के लिए 'विदेशी' नाम बहुत उपयुक्त नहीं है, क्योंकि किसी भी अन्य भाषा से आया शब्द इसी के अन्तर्गत आयेगा, चाहे वह देश की हो या विदेश की। इसीलिए 'गृहीत', 'आगत' या 'वाह्य' नाम अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए हिन्दी में वगला भाषा से आया शब्द विदेशी नहीं कहा जा सकता, यद्यपि इन चारों में उसे

स्थान दिया जायगा। इन सीनों में 'गुहीत' या 'प्रापत' नाम परिषक स्त्रीवाय हैं।

देशज

भरत ने इसे 'लैशी भत', चड ने 'देशीप्रसिद्ध', कुछ लोगों ने 'देशजात', 'देशिका', तथा हमचाड़, मार्विड़ेप आदि न देख पा 'दशी' कहा है। इसकी परिभाषा के सम्बन्ध में विवाद है। चड ने उन गानों को देशीप्रसिद्ध कहा है जो सस्तृत एवं प्राकृत (अर्थात् तत्सम एवं तदभव) न हो, रुद्रट वे घनुमार इनमें प्रकृतिप्रत्यय मूला व्युपत्ति नहीं दी जा सकती, हमचाड़ थीम्ज, भडारकर आदि के घनुसार इनकी सस्तृत से व्युपत्ति सम्भव नहीं। हानल ने सबैन किया है कि ये वे तदभव गव्द हो सकते हैं जो इन्हें विवर हो गए हैं कि उनका तदभव रूप पहचाना नहीं जा सकता। श्रियस्त मुडा, द्रविड़, प्रान्ता भ विस्तित प्रतीय गव्द एवं प्रायमिक प्राकृता वे तदभव आदि को, जो सस्तृत गान में जोड़े नहीं जा सकते, देशज मानते हैं। चटर्जी ने इहें आयपूर्व द्रविड़, काल शार्दूल कहा है। इसी प्रवार की ओर भी परिभाषाएं एवं सार्थकाएं दी गई हैं।

मैं 'वास्तविक देशज' शब्द तथा 'देशज माने जाने वाले' शब्दों में अतर मानता हूँ। वास्तविक देशज शब्द तो वे हैं जो किसी भाषाक्षेत्र में विना किसी आधार (तत्सम, तदभव, गुहीत (loan), गान, तथा अनुकरण आदि) के विकसित हो गए हों, और जो गव्द देशज माने जाते हैं वे हैं जिनकी व्युत्पत्ति का हम एता नहीं है। सबै देशज शब्द का पहचानना मेरे विचार में प्राय असम्भव-सा है। इसलिए यह तो कहा जा सकता है कि देशज शब्द हो सकते हैं होने हैं किन्तु यह यहता मुझे भासक और अवजानिक लगता है कि अमुख ये ये शब्द देशज हैं। देशज मान जाने वाले गान देशज हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि ये अनात युत्पत्ति ने है। फिर इहें 'अनातव्युत्पत्तिक' नाम देना मेरे विचार में अधिक वजानिक है क्योंकि यह असम्भव नहीं कि इनमें अनुकरणात्मक, दूसरी भाषाओं में गुहीत, तदभव या यहाँ तक कि—यद्यपि बहुत हो वर्ग—तत्सम शब्द द्विषेष हो। हम जानत हैं कि हमचाड़ द्वारा स्वीकृत देशज शब्द में अतः तदभव या विदेशी सिद्ध हो चुके हैं। हिन्दी में कुछ प्रसिद्ध अनातव्युत्पत्तिक शब्द ये हैं बदहड़ी, लादी गडवड, घपला, घूट चपत चूहा, भभर मगडा, टटहू, टीस, ठेठ, ठेम, तेंदुआ थोया, घब्बा, पेठा, पड़, भर्ता आदि।

अनुकरणात्मक शब्द

इन्हे प्राय. देश शब्दों के अन्तर्गत रखा जाता है, किन्तु मैं इनका एक अलग वर्ग बनाने के पक्ष में हूँ। देश शब्दों की तरह ये अज्ञातव्युत्पत्तिक तो हैं नहीं। हमें इनकी व्युत्पत्ति का पता है। ये अनुकरण के आवार पर बने हैं। अत इन्हे देश के अन्तर्गत नहीं रखा जाना चाहिए।

अनुकरणात्मक शब्दों के कई भेद हो सकते हैं।

(क) ध्वन्यात्मक—जैसे फटफटिया, भोपू, सीटी आदि। इनमें अनुकरण ध्वनि का होता है। ऐसे शब्द प्राय सभी भाषाओं में थोड़े-बहुत मिल जाते हैं।

(ख) दृश्यात्मक—जैसे वगवग। इनमें दृश्य का अनुकरण होता है। इस प्रकार के शब्द बहुत ही कम होते हैं। यह भी असम्भव नहीं कि इस वर्ग में आने वाले शब्द किसी पूर्ववर्ती शब्द पर आवारित हों। वैसी स्थिति में इनकी सत्ता पर प्रश्नवाचक चिह्न लग जाएगा।

(ग) प्रतिध्वन्यात्मक—जैसे घोड़ा-बोड़ा, चाय-चूय, पान-जान। इनमें बोड़ा, चूय, जान क्रमशः घोड़ा, चाय, पान का प्रतिध्वनि के आवार पर बने हैं। प्रतिध्वन्यात्मक शब्द का प्रयोग प्राय ‘बगैरह’ का भाव व्यक्त करने के लिए होता है। विश्व की अनेक भाषाओं में ऐसे प्रयोग मिलते हैं। अधिकांश भाषाओं में इसे बनाने का ढग प्राय. अलग-अलग होता है। जैसे हिन्दी में चाय-वाय, अधिक चलता है तो पंजाबी में चाय-गाय। उजवेक भाषा में ‘म’ लगाते हैं। किताव-मिताव। गुजराती घोड़ो-बोड़ो, मराठी घोड़ा-विड़ा, वंगाली घोड़ा-टोड़ा आदि।

आभास

कुछ शब्द होते हैं कुछ और, किन्तु उन्हे देखने-मुनने पर आभास कुछ और का होता है। इसी आवार पर पीछे कुछ शब्दों को तत्समाभास कहा जा चुका है। डॉ० श्यामसुन्दरदास ने राष्ट्रीय, जागृत, पीरात्य, उन्नायक, सिचन, सृजन आदि को तत्समाभास कहा है। इसी प्रकार ‘मौसा’ को उन्होंने तद्भवाभास या अर्वतद्भव कहा है। मूल तद्भव शब्द ‘मौसी’ है, जिससे ‘मौसा’ बना लिया गया है। डॉ० दास ने आभास के आवार पर ये दो भेद किये हैं। यदि पाठक आभास के आवार पर और भी भेद बदौर्धन कर सके तो मैं विदेश्याभास (जैसे कलेजा, यह लगता है विदेशी, किन्तु है स० कालेयक का तद्भव) एवं देशभास (जैसे बागर, जजाल, खच्चर, समोसा ; ये सभी विदेशी हैं) का सुझाव देना चाहूँगा। यो वैज्ञानिक अध्ययन में आभास पर आवारित ये वर्गीकरण कोई महत्त्व नहीं रखते। वैज्ञानिक अध्ययन में हमें देखना होता है कि कोई शब्द क्या है, यह नहीं कि वह क्या लगता है।

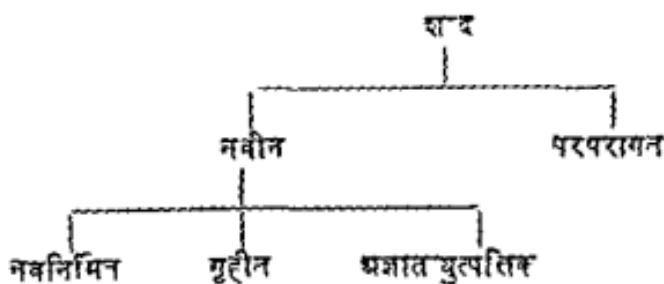
सकर मिथित या द्विज शब्द

उपर्युक्त वर्गों में एक से भविक वर्गों के शब्दों को मिलाकर बनाये गये। इस वर्ग में माते हैं रेसगाही, मुरहम, पाषरोटी मालगाही, दलझी।

इस तरह भोटे रूप से कहा जा सकता है कि शब्द या उसके भाने के इतिहास की दृष्टि से शब्द ये प्रकार के होते हैं तत्सम तदभव, देणा, विदेशी, अनुकरणात्मक तथा सकर।

या विदेशी को यदि गृहीत या भागत नाम दे, जसा कि ऊपर सकेतित है तो सस्तुत से तिए जान चाले तत्सम शब्द भी इसी के अतागत रखे जा सकते हैं।

वस्तुतु शुद्ध वजानिक दृष्टि से विसी भी भाषा के 'अ' मूलत दो प्रकार के हो सकते हैं परपरागत और नवीन। आगे नवीन की तीन वर्गों में बौद्ध जा सकता है नवनिर्मित गृहीत भजात्युत्पत्तिक। विर गृहीत के 'देश' से गृहीत, विदेश से गृहीत आदि उपभेद हो सकते हैं।



उनाखट या रचना के आधार पर 'अ' तीन प्रकार के मान गये हैं—स्त, योगिक तथा योगस्त।

हड़ि ना शब्द साधक शब्दों या गवाहार के योग से न बना हो, या जिसके सघड अथ म साधक टुकड़े न किये जा सकें, उस रूढ़ वहा जाता है। इसे मौलिक 'अ' या योगिक 'अ' भी कहते हैं। जसे पाड़ा हाथ, कपड़ा, धान आदि। 'धोड़ा' में यदि 'धो' और 'ड़ा' या उ और 'ओड़ा' पा धोड़ और या' को अनग बर्ते तो इन टुकड़ों के घोड़ा अथ म बोई अथ न होगे। इसी प्रकार हाथ, कपड़ा पा भाग को भी देखा जा सकता है।

योगिक 'ह' 'अ' के साथ उपभग या प्रत्यय या काई और 'अ' जाड़ वर 'योगिक' 'अ' बनते हैं। 'योगिक' का अथ ही है 'जोड़ा हुआ' या जोड़ वर अनाया हुआ। 'अ' शब्दों म हमने देखा कि उनके टकड़ वरन पर काई साधक 'अ' नहीं मिलत, पर उसके विपरीत योगिक 'अ' के टुकड़े करने पर माधक 'अ' या शब्दान्त मिलते हैं। उनाखटसाध कटूना घतपर, रमोईधर

आदि यौगिक शब्द है। इन्हें तोड़ने पर हम देखते हैं कि (कटु+ता (भाव-वाचक संज्ञा बनाने का प्रत्यय); अन (नहीं)+पठ, रसोई+घर) सभी टुकड़े सार्थक हैं।

योगरूढ़—यौगिक शब्द यदि अर्थ की दृष्टि से सकुचित होकर केवल किसी एक वस्तु का बोध कराये तो 'योगरूढ़' कहे जाते हैं। उदाहरणार्थ 'जल' एक रुढ़ि शब्द है, इसमें 'ज' प्रत्यय जोड़कर 'जलज' बनता है। 'जलज' शब्द यौगिक है और इसका अर्थ है 'जल में उत्पन्न'। किन्तु अब 'जलज' का प्रयोग जल में उत्पन्न वहुत सी ग्रन्थ जैजो, जैसे सेवार, जोक, मछली आदि के लिए न होकर प्राय केवल कमल के लिए होता है, अतः यह 'यौगिक' शब्द 'योगरूढ़ि' है। अर्थात् यौगिक है पर साथ ही विभिन्न ग्रन्थ में रुढ़ि है। यहाँ एक बात का सकेत आवश्यक है कि यह तीसरा वर्ग शुद्ध अर्थों में रखना पर आवारित न होकर अर्थ की भी अपेक्षा रखता है। इसीलिए, तत्त्वतः बनावट या रखना के आवार पर दो (रुढ़ि और यौगिक) भेद मानना ही अधिक संगत है।

बनावट के ही आवार पर शब्दों के कुछ अन्य भेद भी हो सकते हैं।—

(१) समस्त शब्द (Compound word)—यह लगभग वही है जिसे अन्यत्र यौगिक कहा गया है। भेद केवल यह है कि सामान्यत यौगिक में प्राय शब्द और प्रत्यय (मुन्द्रता) या शब्द और उपसर्ग से युक्त (असुन्दर) शब्द रखते जाते हैं और समस्त शब्द में दो स्वतंत्र शब्दों के मिलने से या समास से बने शब्द होते हैं, जैसे—राम+अनुज=रामानुज। यो तात्त्विक दृष्टि से असुन्दर भी समस्त शब्द है और इसमें समास है तथा रामानुज भी यौगिक शब्द है, क्योंकि यह दो शब्दों के योग में मिलकर बना है।

(२) पुनरुक्त शब्द (Doublet)—यह एक प्रकार का यौगिक शब्द है, जिसे किसी शब्द की पुनरुक्ति या उसके अभ्यास द्वारा बनाते हैं। जैसे फट-फटफटिया, भड़भड़, खटखट। पुनरुक्त शब्द दो प्रकार के हो सकते हैं—
(क) पूर्ण पुनरुक्त शब्द—जैसे चमचम, भड़भड़। (ख) अपूर्ण पुनरुक्त शब्द—जैसे बीच-बचाव, रख-रखाव।

(३) अनुवाद युग्मक शब्द (Translation Compound)—ये एक प्रकार के ऐसे समस्त शब्द या यौगिक शब्द होते हैं, जिनमें दो शब्द एक ही या लगभग एक ही अर्थ के रहते हैं, अर्थात् एक-दूसरे के 'अनुवाद' या 'अर्थ' होते हैं। जैसे हाट-वाजार, दवा-दारू, होज-चेत। ये भी तीन प्रकार के हो सकते हैं। (क) कभी तो एक शब्द विदेशी होता है, और दूसरा अपना। जैसे (पाड़-रोटी (पाड़ पुर्तगाली में रोटी का वाचक है), आसा-सोटा, घ्वज-नियान, हाट-

बाड़ार ताला कुलप मेल-तमासा, साग-सहजी, साज गरम (ग) वभी कभी दोनों गद्द धयन ही हात हैं, जग जीव तनु साधा विमान बाम-बाज, बनाव लिंगार, और (ग) वभी-वभी वेष्ट विदांगी ग-ग ग ही इग प्रकार के शब्द बन जाते हैं। जमे इज़ज़त मादर्स नाज़-नमरा दखा-शर्स सीत मुन्ह रज्जा हुवाम रोग-मुलफ। ऐसे गद्दा को मनुराम गमाग मनुराम मूनक गमाग या मनुराम-मूनक समस्त पर भी कहत हैं। इग प्रकार के शब्द बनाते भी प्रवृत्ति नहीं नहीं है। सस्तन म शार्ति-घोड़ा (शार्ति=घोड़ा कोल भाषा म हाव=घोड़ा इविह म) ऐसा ही शब्द है।

(ग) प्रयोग

प्रयोग के द्वायार पर गद्दा वा वर्गीकरण कई प्रकार स दिया जा सकता है

(i) गामाय घपणारिभाविह-पारिभाविह

गामाय तो ये हैं जो गामाय भाषा म इमुख शोत हैं। जस घाना, पेह पानी मिट्टी घारि। पारिभाविह शब्द उनका कहा हैं जो शास्त्र या विज्ञान विषय म विद्या भव य भान है। जग इन्हें (गद्दा) गवनाम (ध्यावरण) प्रवरी (नाटक्याम्ब) गमोवरण (भाषाविज्ञान) घारि। घरणारिभाविह गद्दा वा घिर्ति शब्द भी है। व गामाय भाषा म भा प्रवृत्ता ही है और

पैर श्लील हैं, लिंग, योनि अल्पश्लील तो लॉड, बुर अश्लील ।

(iv) प्रयुक्त—अल्पप्रयुक्त—अप्रयुक्त

स्पष्ट ही पहले वर्ग के शब्द प्रयोग में होते हैं, और दूसरे का अपेक्षाकृत कम प्रयोग होता है, और तीसरे का प्रयोग प्राय नहीं के वरावर होता, या नहीं होता आग-ग्रन्ति-हृताशन, हाथी-हस्ती-मैंगल । किसी भी भाषा में सदा-सर्वदा के लिए यह स्थिति नहीं होती । समय के साथ प्रयोग की वहुलता-न्यूनता में कमी-वेगी होती रहती है और प्रयुक्त, अप्रयुक्त या अल्पप्रयुक्त होने वाले वर्ग में आते रहते हैं ।

(v) सर्वक्षेत्रीय—प्रातीय

कुछ शब्द किसी भाषा के पूरे क्षेत्र में चलते हैं और कुछ प्रात या स्थान या उसकी किसी बोली विशेष के क्षेत्र तक सीमित होते हैं । उदाहरणार्थः अच्छा-निम्नन, कटोरा-खोरा, थाली-ठाढ़ी, तोरी नेनुवा-चेवड़ा आदि ।

(घ) अर्थ

इस आधार पर भी एकाधिक प्रकार का वर्गीकरण किया जा सकता है । जैसे—

(i) सरल—अल्पविलिष्ट—विलिष्ट

यह भेद मूलत प्रयोग पर ही आधारित है । वहुप्रयुक्त शब्द अर्थ की व्यष्टि से सरल लगता है, तथा अल्पप्रयुक्त अल्पविलिष्ट और अप्रयुक्त विलिष्टः नरम-मसृण, चिडिया-विहग-द्विज, भोपड़ी-उटज ।

(ii) स्थूल-सूक्ष्म, मूर्त-अमूर्त

स्थूल या मूर्त शब्द ठोस या मूर्त चीजों को व्यक्त करता है । जैसे लोहा, पानी, हाथी, घास । सूक्ष्म या अमूर्त में अहिमा, ब्रह्म, आत्मा, हवा जैसे शब्द आते हैं । स्थूलता या सूक्ष्मता के ग्राविक्य के आधार पर इसके और भी भेद-उपभेद किये जा सकते हैं ।

(iii) वाचक-लक्षक-व्यजक

वाचक शब्द मात्र अपना कोणार्थ या साक्षात् अर्थ देता है । जैसे घास । लक्षक शब्द मुख्यार्थ से भिन्न अपना लाक्षणिक अर्थ भी देता है । जैसे गदहा (मूर्ख), शेर (वीर), गीदड (कायर) । व्यजक शब्द अपने कोणार्थ एव लाक्षणिक अर्थ के अतिरिक्त व्यग्रार्थ भी देता है । जैसे वह गदहा=लाक्षणिक अर्थ 'वह मूर्ख है', व्यग्रार्थ 'वह मूर्ख है', अतः उससे कुछ हो नहीं सकता या उससे दूर रहना चाहिए, वह समझ नहीं सकता । वस्तुतः एक ही शब्द प्रयोग के आधार पर तीनों प्रकार का माना जा सकता है । इस प्रकार यह भेद प्रयोग में भी सवाल है ।

अध्याय २

शब्द-संकलन

शब्द के अध्ययन के लिए सबसे पहले सामग्री संकलन पा "ए" संकलन आवश्यक है। "ए" संकलन वे लिए दो भाषाओं में हैं। या तो हम किसी लिखित रामग्रन्थ से "ए" संकलन करते हैं या मौखिक रूप से सुनकर। प्रकाशित या लिखित हृतियों दस्तावेज़ या अभिलेख भाषि प्रथम वर्ग में आते हैं। किसी बोली जान वारी भाषा या बोली अथवा लोक-साहित्य आदि वे "ए" की संकलन दूसरे वर्ग में आता है। दोनों ही वो अवगमन वर्ग पद्धतियाँ हैं। आगे इन पर पद्धति-पद्धति विचार किया जा रहा है।

लिखित सामग्री से "ए" का संकलन "ए"नुक्रमणी (Word index) रूप में दिया जाता है। "ए"नुक्रमणी लिखित भाषग्रन्थ में प्रयुक्त सार शब्दों की वर्णनुक्रमानुक्रम शृंखली होती है। जिसमें इस बात का भी गकेत रहता है कि शब्द "कही बही" भाषा है। इस प्रवार उसमें वर्कल सारे "ए" होते हैं, अद्यता हर "ए" के सारे प्रयोगों के संदर्भ भी होते हैं।

लिखित सामग्री की "ए"नुक्रमणा तथार बरने के लिए सबसे पहले वह हृति पुस्तक, जित या अभिलेख का बचानिक पद्धति या पाठ निष्पालि वर उन्हाँ भाषायन है। विशेषत याठ निष्पालि की भाषग्रन्थता ऐसे पुराने साहित्यसारारा की हृतियों में पढ़ती है। जिनकी रचनामा की एक से अधिक पाठ्यनिष्पालि उपनिषद्य हैं। "ए" की लिखित ममी श्रितियों की तुक्ता के पापार पर हृति का पाठ या निष्पाला दिया जाता है। यदि किसी दो एवं ही पाठ्यनिष्पालि उपनिषद् हो तो इन्हें यह भाषा तो तात्त्विक भाषा कहिया—विशेषत उन्हीं जाता एवं पापा की रचनामा के घटाया तथा पापानीयत विषयक भाषा तिष्ठानों के पापार पर उपापा भाषा में भी मानो जान दिया जाता है। आपुनिक संग्रह की भाषग्रन्थ बनाने में भी वही संकलन भाषग्रन्थ होती है। एगा प्राप्त होता है कि मुद्रित पाठ में एकहाता न। जिनकी और भाषग्रन्थमणी बनाने वाले न यदि भाषा दूसरे मुद्रित पाठ के पापार पर भाषग्रन्थमणी बना दाती तो यह बहुत सत्ता

के कारण कई प्रकार की गड़वडियाँ रह जाती हैं। उदाहरण के लिए मान ले कि पाहुलिपियों के आधार पर संशोधित प्रति में या मुद्रित कृति में कही तो 'करनेवाला' है और कही है 'करने वाला'। अब यदि एक स्थान पर 'करने वाला' को एक शब्द मानकर अनुक्रमणी में रखा गया तथा दूसरे स्थान पर 'करने' को अलग और 'वाला' को अलग शब्द रखा गया तो अनुक्रमणी चुटि-पूर्ण हो जायेगी। 'वाला' शब्द जहाँ होगा, वहाँ 'करने वाला' के 'वाला' का सदर्भ तो मिल जायेगा किन्तु 'करनेवाला' के 'वाला' का सदर्भ नहीं मिलेगा। इसी प्रकार यदि कही 'उस ने', लिखा या छपा है और कही 'उसने', तो 'ने' के दोनों सदर्भों का पता नहीं चल सकता। विभिन्न भाषाओं में वर्तनी और प्रेस-सम्बन्धी गड़वडियाँ विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं, जिनके कारण शब्दानुक्रमणी चुटिपूर्ण या अपूर्ण हो सकती है। इस दृष्टि से, अनुक्रमणी बनाने के पूर्व, ग्रन्थ को आद्यंत पढ़कर उसमें वर्तनी की दृष्टि से आवश्यक संशोधन कर लेना अधिक अच्छा होता है। यह तो लेखन या मुद्रण की गडवडी की बात थी। भाषा-विशेष की लेखन-पद्धति के कारण भी गडवडी हो जाती है। उदाहरणार्थ, हिन्दी में सर्वनामों के साथ कारक-चिह्न मिलाकर लिखते हैं जैसे उसने, मुझमे, तुमको, किन्तु सज्जा के साथ अलग लिखते हैं, जैसेर आम ने, मोहन मे, श्याम को मान ले इनकी शब्दानुक्रमणी बनानी है और इसी प्रकार बना दी गई तो परिणाम यह होगा कि अनुक्रमणी में 'ने' और 'को' के बीच संज्ञा के साथ वाले ही आयेगे, सर्वनाम के साथ के 'ने' और 'को' के सदर्भ उनके साथ नहीं मिलेंगे। इसके लिए अच्छा यह होगा कि जिनके साथ कारक-चिह्न मिलाकर लिखे जाते हैं, उन्हें समुक्त रूप में (जैसे उसने, उसको) अलग लिखा तो जाय, किन्तु साथ ही कारक चिह्नों (जैसे यहाँ 'ने' या 'को' को) के सदर्भ अलग आने वाले कारक चिह्नों के साथ भी दे दिये जायें। दोनों में अन्तर के लिए दोनों को अलग-अलग भी रखा जा सकता है, जैसे ने १. २. ४, आदि (अलग 'ने' के लिए), तथा—ने-१. ३. २, आदि (सम्बद्ध 'ने' के लिए)। दोनों को मिलाकर एवं में भी रखा जा सकता है। इसके लिए 'ने' शीर्षक के अन्तर्गत ही सदर्भों के साथ कुछ सकेत दिये जा सकते हैं। जैसे, जहाँ 'ने' अलग है, उसका सदर्भ सामान्य रूप में दिया गया, किन्तु जहाँ सम्बद्ध है उनके साथ कोष्ठक में 'स' या कुछ और लिख दिया जाय। जैसे 'ने' १. ४. २; २. ३. ४ (स), ३. २. ६।

संधित या सामासिक पदों के सम्बन्ध में भी यही नीति वरतभी चाहिये। यदि इनमें दूसरा भी स्वतन्त्रत उस भाषा में प्रयुक्त होता हो तो उसे अलग भी देना चाहिए और उसके बांधे रूप का भी सकेत दे देना चाहिए। उदाहरणार्थ रामावतार, यथाशक्ति आये हो तो रामावतार और यथाशक्ति को अलग-अलग

तो उना ही चाहिए साथ ही अवतार और गवित को अपन प्रपत्ति स्थान पर दिलाना चाहिए। और इनके साथ इनके समास या सधि में द्वितीय मदस्य होने का भी संकेत किया जाना चाहिए। अवतार, गवित।

ये बातें हिंदी का दृष्टि से कही गई हैं। इस प्रवार के नियम सभी भाषाओं के लिए अलग अन्य बनाय जा सकते हैं। इसके सम्बन्ध में सामाजिक सिद्धांत यह है कि ऐसे भाषा की पुस्तक की अनुक्रमणीय बनानी हो, उसकी अध्ययन इकाई [शब्द रूप, अच्छा हो विं उपसर्ग प्रत्यय, मध्यसर्ग आदि भी] दी जाय। स्थलान्तर शब्दों या रूपों को अलग अन्य सामाजिक रूप से दिया जाय और जो कंवल प्रारम्भ में (जस उपसर्ग) क्वार मध्य में (जस मध्यवर्ग) या अत म (जसे प्रत्यय, परसर्ग या सधि या समास के प्रथमार्थ मदस्य) आय हो उन्हें अलग दिया जाय या उनके ही अलग आने वाले रूपों के साथ, विसी भेदक विहू या मवन के साथ लिया जाय। ऐसी अनुक्रमणीयों से भाषावानिक अध्ययन में बहुत राहायता मिलेगी। यहाँ तक कि विं उस लेखक या पुस्तक के बारक विहू के उपसर्गों मध्यसर्गों या प्रत्ययों आदि पर विचार करता हो, तो भी ऐसी अनुक्रमणीयों के आधार पर सरलता से विचार किया जा सकता है। सामाजिक समासों को तोड़कर अलग अलग शब्दों को अपन अपन स्थान पर भी दिया जा सकता है। जब मुख्याद्रूप के लिए बहुत भावदेवक नहीं है, विं मुख्याद्रूप को भी अलग लिया जाय। व्याख्यान मुख और चाड़ देंदा पर्याप्त है, किन्तु बहुतीर्ण समास के शब्दों को (चतुर्पाला दानानन आदि) तो समुक्त रूप में भी अवश्य ही दिया जाना चाहिए क्योंकि समुक्त रूप में उनका प्रयोग रुद्ध होने के कारण दुःख और हो जाता है।

मुहावरों और लोकोक्तियों के सम्बन्ध में दो दान की जाना चाहिए। पहली तो यह कि इनमें आने वाले रूपों या शब्दों या उपसर्ग प्रत्यय कारण विहू आदि को, जसा विं ऊपर बहुत गया है अन्य अन्य देना चाहिए। दूसरे पूरे मुहावरे या पूरी लोकोक्ति को भी अलग कोश में व्याख्यान देना चाहिए। इससे उस प्रयोग या लेखक को भाषा पर विचार करने समय उसमें प्रयुक्त मुहावरों भी रसाक्षीकृत्या का अध्ययन या मुहावर तोक्षीकृत्या में प्रयुक्त गादा का अध्ययन करने में सहायता मिलता।

“अननुक्रमणीयों में सभी दैन में बहुत सकृता वरती जानी चाहिए और प्रयुक्ति पढ़ति का भूमिका में स्पष्ट उल्लंघन होना चाहिए। परं प्रयोगों में प्रवार बाब्य हो तो सग या अध्याय भी और इन की सम्या दी जा सकती है। मुक्तवर हो तो यदि वीर्या भी और विकिं दी जा सकती है। यदि प्रयोग में अध्याय, पूर्ण और पक्षियों या केवल पछ्य दिया जा सकता है। भूमिका में सख्तरण का उल्लंघन

शब्दों का अध्ययन

अवश्य होना चाहिए, नहीं तो विभिन्न स्स्करणों में गद्य में और कभी-कभी पद्य में भी पृष्ठ और पक्षित में अन्तर होने पर शब्द का ठीक पता नहीं चल पाता। यदि किसी लेखक के पूरे साहित्य की ग्रनुक्रमणी बन रही हो, तो उपर्युक्त वातों के अतिरिक्त पुस्तक के नाम का सक्षेप भी दिया जाना चाहिए।

ग्रन्थ तक हम लोग लिखित साहित्य से ग्रन्थ-सकलन की बात कर रहे थे। लिखित सामग्री से ग्रन्थ-सकलन परिश्रम-साध्य भले हो, कठिन नहीं है, किन्तु मुँह से सुनकर शब्दों का सकलन परिश्रम-साध्य होने के साथ बहुत कठिन भी है। यही नहीं, किसी वोलचाल की भाषा के सभी शब्दों का सकलन प्रायः असम्भव-सा है। क्योंकि ऐसा भी हो सकता है सकलन-काल में उपर्युक्त अवसर के अभाव में बहुत से ग्रन्थ प्रयुक्त ही न हो। हीर, इस कठिनाई के बावजूद इस दिशा में प्रयास करना ही पड़ता है।

किसी बोली जाने वाली भाषा या बोली के अलिखित रूप से शब्दों के लिए जो पद्धति काम में लाई जाती है उसे 'सर्वेक्षण-पद्धति' कहते हैं। इस प्रकार के सर्वेक्षण से न केवल ग्रन्थ, अपितु उनमें प्रयुक्त ध्वनियाँ, उनका वाक्य-गत प्रयोग, उनके उच्चारण में प्रयुक्त वलाघात या सुरलहर आदि सभी वातों का पता चल जाता है। यो कहने की आवश्यकता नहीं कि शब्दों के सर्वांगीण अध्ययन के लिए इन सभी की जानकारी अपेक्षित है।

किसी क्षेत्र में भाषिक सामग्री का सकलन प्रायः दो प्रकार से करते हैं : (१) स्वयं उस क्षेत्र में जाकर, (२) उस भाषा को मातृ भाषा के रूप में बोलने वाले अर्थात् मातृभाषाभाषी (Native speaker) को अपने यहाँ बुलाकर।

इन दोनों में प्रथम ही अपेक्षाकृत अधिक अच्छा है, क्योंकि उस क्षेत्र में उस भाषा का अपना वातावरण बना रहता है, अतः सहज रूप में सबद्ध और अपेक्षित सारी सामग्री प्राप्त करना सभव होता है। क्षेत्र के बाहर बुलाने में निम्नाकित कारणों से ठीक और अपेक्षित पूरी सामग्री नहीं मिल पाती :—

(क) उक्त भाषा का वहाँ मूल वातावरण नहीं रहता, जिसमें भाषा बोली जाती है। इसके कारण कुछ असहजता आ जाती है। (ख) बाहर जाने से नए वातावरण के भी कुछ प्रभाव की सभावना होती है जो चाहे बहुत थोड़े रूप में सही, सूचक को प्रभावित कर सकता है। (ग) सूचक के घर या उसके गाँव में जाकर उससे बात करने पर वह अधिक सहज रूप में उत्तर देता है, किन्तु यदि उसे कही बाहर बुलाया जाय तो उसके अपनी भाषा के प्रति अधिक सतर्क हो जाने की सभावना होती है, जिसका परिणाम यह होता है कि ऐसे शब्द जिन्हे वह शिष्ट या परिनिष्ठित नहीं समझता, प्रायः छोड़ जाता है।

इसके विपरीत उसके अपन यात्रावरल म गढ़ज भा॒ ते बात करन पा॑ परि॒
यत विया जाय तो एगी सामग्री के छुट्टा पा॑ सर रातृ॒ तम समाजना रहती है।
(प) उग गोंद म होते पर किंगी शब्द या उमर प्रयोग भारि॑ म सह॑ ह इन
पर दूसरा से यात करके गही ल्पादि॑ प्राप्ति॑ दिए जा सकता है किंतु उग धन
के बाहर एगी गुविया नही॑ होती। (इ) धन म हाय स दारा करते भी
अनेक वस्तुया॑, सउपा॑ वियामा॑ के नाम भारि॑ पूछे जा सकत है किंतु धन क
बाहर, यह सायदर नही॑ है कि धन म उपनधन भी वस्तुए॑ भारि॑ ना हो।
इस तरह न बेचत सामग्री छुट्टा जाता का भय रहता है, अपितु यह निश्चित है
कि धन से बाहर एक-दो सूचको॑ वी गहायता म उम भाषा या शोरी का पूरा
शब्द सप्ति॑ नही॑ प्राप्त भी जा सकती।

सूचक से सामग्री प्राप्ति॑ करन के लिए उसके गपक म भाना पड़ता है।
इस प्रसंग म आने यानी स्थिति॑ दो प्रकार की हो सकती है। वभी तो एक
होता है कि सूचक बेवल भरनी भाषा जानता है उसे किसी ऐसी दूसरी भाषा
या जानकारी नही॑ होती जो सामग्री सखलित करन वाले या धनेदर दो पात
हो और वभी इसके विपरीत वह ऐसी थोई॑ एक (या घनेदर) भाषा (ए)
जानता है और वह भाषा (या भाषाए॑) उन दोनो॑ के बीच विचार विनिमय
के माध्यम वा वाय करती है (है)। पहली स्थिति॑ म उन दोनो॑ के बीच बेवल
वही भाषा होती है, जिसकी सामग्री सेनी है भन इस हप म सामग्री सखलन
की पद्धति॑ को एकभाषिक (monolingual) पद्धति॑ कहते हैं तथा दूसरी दो
द्व भाषिक (bilingual) पद्धति॑, क्याकि उग स्थिति॑ म उन दोनो॑ के बीच एक
और भाषा भी आ जाती है। दूसरी म यदि एक स अधिक भाषाया॑ को
माध्यम बनाया जाय तो उस बहुभाषिक पद्धति॑ कह सकते हैं। या एकभाषिक
पद्धति॑ के सादृश्य पर दसरा दो अनेकभाषिक पद्धति॑ नी कहा जा सकता है
जिसमे द्व भाषिक और बहुभाषिक दोनो॑ पद्धतियाँ समाहित हा॑ मकती है। आगे
की बातें मुख्यत एकभाषिक पद्धति॑ को ध्यान म रखकर वही गई है। द्व
नापिक या बहुभाषिक पद्धति॑ से सामग्री सखलन गणेशाहृत अधिक सरल होता
है। उसके लिए जिस भाषा को विचार विनिमय का माध्यम बनाना होता है
उसम प्रश्नावली तयार करते हैं। प्रश्नावली बनाते समय मुख्यत बेवल इस
बात का ध्यान रखते हैं कि वह इतनी॑ यापक हो कि उसके उत्तर अवृप्त उक्त
भाषा का अधिकारिक शब्द सप्ति॑ प्राप्ति॑ की जा सके।

सर्वेक्षण पद्धति॑ के सम्बन्ध म निम्नानित बाते विचाय हैं

सूचक—जसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सूचक उस अविति॑ को कहते हैं,
जिससे सूचना (भाषा विषयक सामग्री) प्राप्ति॑ वी जाय। सूचक बे॑ ल्पन सादि॑

के सम्बन्ध में प्रमुख रूप से ये वाते ध्यान में रखने की हैं।

(१) सामान्यतया १७-१८ वर्ष से कम का सूचक वहुत काम का नहीं होता। यो मेरा अपना अनुभव तो यह रहा है कि ३०-३५ वर्ष के आसपास का सूचक वहुत अच्छा होता है क्योंकि वह अपनी भाषा की सूक्ष्मताओं से अधिक परिचित होता है। ४० वर्ष से ऊपर के सूचकों में साधारणतया अपेक्षित चुस्ती नहीं होती।

(२) कभी-कभी एक ही स्थान की भाषा, उच्च वर्ग-निम्न वर्ग, उच्च जाति-निम्न जाति, हिन्दू-मुसलमान, विशेष प्रकार के अलग-अलग पेशे, आदि दृष्टियों से एकाधिक प्रकार की होती है। यह अतर गव्द-समूह के क्षेत्र में सर्वाधिक होता है। सूचक-चयन के समय इसका विचार भी आवश्यक है। ऐसी स्थिति में कई सूचकों (कुछ पुरुषों कुछ स्त्रियों) से सामग्री लेना अधिक अच्छा रहता है।

(३) एक स्थान से दो-तीन सूचक लिये जाने चाहिए, किन्तु सभी से अलग-अलग (दूसरे की उपस्थिति में नहीं) सामग्री नोट करनी चाहिए। जो वातें सभी में समान हो, वे निश्चित रूप से ठीक हैं, किन्तु जिनमें अंतर है, आवश्यक नहीं कि सर्वदा लगत ही हो। उच्च, व्यवसाय, कुल-परंपरा, शिक्षा आदि अनेक कारणों से अतर पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में उन्हीं सूचकों से फिर सुनकर, या अन्य सूचकों से पता लगाकर चुद्धि-अचुद्धि या स्थानीय अतर आदि का निर्णय किया जा सकता है।

(४) स्त्री-पुरुष में पुरुष सूचक अपेक्षाकृत अधिक अच्छे होते हैं, क्योंकि अधिक सामाजिक जीवन विताने के कारण, उनका भाषा-विषयक अनुभव भी अधिक होता है। किन्तु इसके साथ ही यह भी उल्लेख्य है कि पुरुष सूचकों पर वाह्य प्रभाव की अधिक सभावना रहती है। स्त्री सूचक अपेक्षाकृत अधिक अप्रभावित एवं ठेठ भाषा का प्रयोग करती है। ऐसी स्थिति में यदि कोई कठिनाई न हो तो पुरुष और स्त्री दोनों से सामग्री ली जानी चाहिए।

(५) पुरुषों और स्त्रियों की भाषा में शब्दों, रूपों, मुहावरों आदि के स्तर पर कभी-कभी अतर भी मिलते हैं। इसीलिए अपनी आवश्यकतानुसार पुरुष से, स्त्री से या दोनों से सामग्री ली जा सकती है।

(६) कभी-कभी कुछ पिछड़े वर्गों या जातियों में स्त्रियाँ दूसरों से नहीं मिलती-जुलती। ऐसे स्थानों पर केवल पुरुष सूचक से काम चलाना पड़ सकता है।

(७) शब्दों-प्रयोगों आदि के स्तर पर कम आयु, अधिक आयु और बहुत अधिक आयु के लोगों में कभी-कभी अंतर मिलता है। शब्दों के स्तर पर

भी इस प्रकार के अतर मिलते हैं। हिन्दी म ही सुगिधिता की पुरानी पीढ़ी 'आश्चर्य और मूल का प्रयोग बरती है, जिनु नई पीढ़ी अचरण और 'मूरख' (सात यूगोस्तनाव वहानिया—प्रभावर मात्रवे १६६२ इसमें एकाधिक बार 'मूल के स्वान पर 'मूरख प्रपुत्त हुआ है) की भी परिनिविटि हिन्दी का भग मानती है। सामाजिक नई पीढ़ी के लोगों को घम ग्रधविश्वास आदि विषयव शब्दों या वर्जित शब्दों (टब्बु) के सम्बन्ध में पुरानी पीढ़ी की तुलना में जानकारी होती है। अताग ग्रलग धरों में इससे मिलते जुलते अथ प्रकारों के भी अतर मिल सकते हैं। यह इस प्रकार अन्तरों का गत बरता भी हमारा लक्ष्य हो तो तनुकूल सूचक चुने जा सकते हैं।

(५) सूचक कई पुस्तकों से वहा रह रहा हो किन्तु उसी धर्म में रहा हो तो अधिक अच्छा है, क्याकि बाहर से आने वाला की भाषा में किसी न किसी स्तर पर विही और भाषाओं के प्रभाव की पूरी समाजना रहती है। इस प्रकार उससे उस भाषा या बोनी की गाँवली का प्राचृत रूप नहीं मिल पाता।

(६) सूचक कई पीढ़ियों से वहा रह रहा हो किन्तु यदि वह अपने जीवन काल में अधिक दिना तक वही बाहर रहा हो तो भी उसकी भाषा में बाहर तत्त्वों के था जाना की समाजना रहती है, अत अच्छा हो कि ऐसे व्यक्ति को सूचक बनाया जाय जो अधिक निन्होंके लिए वही बाहर न गया हो।

(७) सामग्री के साथ सूचक का नाम, उसकी धार्य, स्थान परिवार के यात्रा, मूल स्थान प्रवास तथा ऐगा विषयक संहिता इतिहास आदि निख लेना चाहिए। सामग्री विशेषण में इनसे बड़ी सहायता मिलती है।

(८) समझार आजमी अधिक अच्छा सूचक बन सकता है क्याकि वह सर्वेक्षण की आवश्यकता को जल्दी समझ सकेगा।

(९) अल्पभाषा, लज्जालु प्रान्तिरिय या बहुत गमीर व्यक्ति प्राय अच्छे सूचक नहीं बन पाते। इसके विपरीत बातुनी, हेतमुत न भेषनवाला अविक्त सूचक के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त होता है।

(१०) सूचक ऐसा होना चाहिए जो सहज रूप में बोले। बहुत से लोग सतक होकर बनावटी भाषा बोलन लगते हैं। इस बान का पना चलत ही, या तो उसे छोड़ द्या चाहिए या किर उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का किसी अप अच्छे सूचक की सहायता से पना लगा लेना चाहिए।

(११) सभी दृष्टिया से विचार बरते पर अथ लोगों की तुलना में किसान नाय अपने धर्म की भाषा को अधिक प्रबन्ध रूप में जानता रखा बोलता है मज़दूर या अथ नौकरों ऐगा व्यक्ति की तुलना में वह प्राय अधिक

तिखने वा भ्रम्यास भी होना चाहिए।

प्रश्नावली—लोकव्या लोकगीत पहेली या चुटकुला आदि के लिए तीनों की भपक्षा नहीं होनी चाहिए रूप वाक्य आदि जानने के लिए सर्वेक्षण की प्रश्नावली बना लेनी चाहिए। प्रश्नावली बना लेने से एक तो सरलता एव सटृप्तता से सूचन अर्पित सूचनाएँ देता चलता है दूसरी आवश्यक सूचनाओं के छूटने का भय नहीं रहता। या ऐसी कोई भी प्रश्नावली नहीं बनाई जा सकती जो अपने मूल रूप में गिरा किसी परिवर्तन के सभी क्षेत्रों में भाषा-सर्वेक्षण के बाइंग भा सके, क्याकि हर भाषा या बोली की अपनी सांस्कृतिक एव सामाजिक पठभूमि भिन्न होती है। इसलिए अच्छा यह होता है कि क्षेत्र के सोगा, जानिया घम रहन सहन एव उद्याग वध आदि से परिवर्य प्राप्त करके ही सर्वेक्षण की प्रश्नावली तयार करे। फिर नीं माटे रूप से इस सांबाध में कुछ सामाजिक बात बनाई जा सकती हैं। (१) प्रश्नावली में स्थूल या भूत वस्तुओं या त्रियामा से सम्बद्धित प्रश्न पहले आने चाहिए तथा सूख्य या अमूल में सम्बद्धित बाद में। (२) व्यावरणिक दृष्टि से सज्जा सवनाम प्राप्त तथा वाक्य कम से सामग्री प्राप्त करने की दृष्टि से प्रश्नावली बनानी चाहिए। (३) वाक्य के बाद कहानी, चुटकुले गीत जसी जीजो पूछकर नोट की जा सकती हैं। (४) प्रारम्भ में मुद्रावरेण्याक्षिणी आदि कहानी भादि से जोजी जा सकती हैं। भाषा के बारे में अच्छी जानकारी हो जाने पर स्पताशन भा इहें पूछ कर मानूम किया जा सकता है। प्रश्नावली बनाने समय क्षेत्र की विशेषताओं को ध्यान में रखत हुए निम्न धाराओं की सहायता ली जा सकती है।

(अ) सज्जा—(क) नरीर के अग—सिर पर हाथ झेंगडा डैगली, नालून बाल, आखि नाक मुह कान गाल, दौत, जोभ, हाठ भौं गदन छाती, पीठ, घेट वसर, जांघ, घुटना, पिछली। हड्डी रक्त मास, दिल जिगर केफ़डा जैसी जीजो के नाम बाद में पूछे जा सकते हैं।

(ख) गावधियों के नाम—दाप भाई, पति, पत्नी, पुत्र पुत्री, भाभी, जीजा, दादा दादी, ताऊ, ताई चाचा, चाची नाना, नानी मामा, मामी भौसी, भौसा बुधा, फूफा, साता मानी साथ, ससुर, पोता, पोती, नानी, नातिन, पनोह।

(ग) घरेवू चाजों के नाम—चारपाई, विद्युत रजाई तकिया चादर, रोदा गिराम, धानी, बटोरी, पीला, पनीनी, कडाही, तवा, चमचा, झंगीटी, चूल्हा।

(घ) अन तथा खान-पान—गहूं धान जो भट्टर चना, बाजरा, उड्ड,

चावल, दाल, आटा, खाना, पानी, मिठाई, रोटी, पूड़ी, पराठा, सब्जी, श्रालू, बैगन, गोभी, पालक, आम, सेव, अमरुद, केला, अगूर, संतरा, नीबू, अनन्नास, नाशपाती, अखरोट, वादाम, किशमिश, काजू आदि ।

(इ) जीव जनुओं के नाम—गाय, भैंस, बकरी, बैल, भेड़, कुत्ता, बिल्ली, बंदर, घोड़ा, हाथी, शेर, चीता, हिरण, गोदड़, ऊंट, मछली, चूहा, सर्प, मेड़क, तोता, कोयल, मुर्गी, वत्तख, मक्खी, मच्छर आदि ।

(च) फूलों के नाम—गुलाब, चमेली, गेदा, चम्पा, रातरानी, वेला आदि ।

(छ) भौगोलिक नाम आदि—नदी, नाला, समुद्र, पर्वत, घाटी, जमीन, आसमान, सूर्य, चाँद, तारे, वादल ।

(ज) कपड़े आदि—घोती, कुर्ता, टोपी, तौलिया, अंगोच्छा, रूमाल, कोट, पाजामा, बनियाइन, जूता, मोजा, कमीज, स्वेटर आदि ।

(झ) पढ़ने-लिखने की चीजों के नाम—किताब, कागज, कलम, स्याही, पत्र, पत्रिका, अखबार आदि ।

(आ) सर्वनाम—यदि एकभाषिक पद्धति से पूछना हो तो सर्वनामों में प्रारम्भ में मेरा घर, उसका घर, तुम्हारा घर जैसे प्रयोगों से, सबध कारक के रूप में मालूम किये जा सकते हैं तथा अन्य रूपों (मैं, हम, तुम, वह, यह, मुझे, उन्हे आदि) को वाद में जानने का यत्न किया जा सकता है । हाँ, द्वैभाषिक या वहुभाषिक पद्धति से यदि सामग्री एकत्र की जा रही हो तो मूल रूप (मैं, तुम, हम, वह, यह आदि) एव सबध के रूप में दोनों ही नोट किये जा सकते हैं । अन्य रूप (उन्हे, मुझे, जिसे आदि) वाद में वाक्यों के विश्लेषण के वाद खोजे जाने चाहिए । उसके पूर्व इनको जानने का यत्न अनावश्यक रूप से बहुत समय तो लेता ही है, स्पष्टतः पता चलना भी कठिन हो जाता है ।

(इ) विशेषण—सबसे पहले संख्यावाचक विशेषण । इनमें भी पूर्ण तथा क्रम पहले और अपूर्ण आदि वाद में । पूर्ण में भी दस तक पहले तथा अन्य वाद में । रग आदि विषयक विशेषणों को छोड़कर अन्य विशेषण वाक्य के माध्यम से अधिक अच्छी तरह जाने जा सकते हैं । ये वाते एकभाषिक पद्धति की दृष्टि से कही जा रही है । द्वैभाषिक आदि में इसका ध्यान रखना आवश्यक नहीं है ।

(ई) वाक्य—शब्दों के प्रयोग से सबधित जानकारी फुटकर गब्दों से नहीं प्राप्त की जा सकती । वाक्य के स्तर पर ही इन्हे पाया जा सकता है । इसका अर्थ यह है कि ऐसे प्रश्न भी किए जाने चाहिए जिनके उत्तर स्वरूप वाक्यों की प्राप्ति हो सके ।

प्रश्नावस्ती के लिए कुछ सवेत—समा के लिए वस्तु या जानकर प्राप्ति की ओर सवेत करते हुए 'यह क्या है?', व्यक्ति की ओर सवेत करने हुए 'यह कौन है? या 'यह तुम्हारा कौन है?'।

सवनाम के सवध में कारकोप्य हप्ते के लिए वस्तु की ओर सवेत करते हुए पहले प्रश्न क्या (कौन) है? ।

सह्याओं के लिए कई वस्तुओं को एक स्थान पर रखकर 'ये कितनी हैं?' को कुछ करते हुए देखकर, सकेत करते हुए 'वह क्या कर रहा है?' या हृगर किया गया है।

फहानी, गोत, चटकुले आदि का सकलन—वाक्या के बाद इनका रखलन बरना चाहिए। इनके विश्लेषण द्वारा सूक्ष्म सज्जाएँ (भास्त्रा, दया, अद्वा आदि), सूक्ष्म विशेषण (बुद्धि, चालाक सतोषी आदि) प्रत्यय उपसग समात तथा सधि धारा का पता लगाया जा सकता है तथा ऊपर जिमका उल्लंघन किया जा सकता है। उनसे सबद्ध जानकारी की प्रामाणिकता की परीक्षा की जा सकती है। असल में इस प्रकार के सबद्ध पाठ (Texts) में ही भाषा अपने और पूरे हृप में हमारे सामने आती है। इसी कारण इसके आधार पर अपने अनेक पूर्ववर्ती निषेध हम बदलने भी पड़ते हैं। या इस सवध में यह बात भी ध्यान में रखने की है कि वहानी तथा गीत आदि की भाषा कभी-कभी प्रचलित सहज भाषा से कई बातों में थोड़ी भिन्न तथा पुरानी होती है। उदाहरण के लिए अनेक भोजपुरी शब्दों की बोलचाल की भाषा में मुक्ते पहिती (संगप्रहिता प्रपवाद है) लुचुई रगीती शब्द नहीं मिले किंतु गीतों में इनका प्रयोग शूच मिलता है। गीतों में शब्द की आवश्यकतामुसार लोड मरोड़ की प्रवत्ति भी असामाय नहीं है। इसका अर्थ यह हमा कि वहानी गीत आदि के आधार पर भाषा के स्वरूप निष्ठरण में इस दृष्टि से पर्याप्त सततता आवश्यक है।

बातचीत की रिकाडिंग—दो या अधिक शूचकों की बातचीत की टेप रिकाडर गतिकारके उम किर सुनकर उत्तर का विश्लेषण करना भी उस भाषा या बोनी विषयक सामग्री की प्राप्ति का अच्छा साधन है। मच शूचा जाय तो दो या अधिक शूचकों की धापसी बातचीत में ही भाषा का सर्वाधिक प्रहृत रूप मिल सकता है।

सामग्री-लक्षन—इस सवध में मुख्यत निम्नावित बातें ध्यान में रखने की हैं

(१) विश्लेषण के समय कभी-कभी यह जानना आवश्यक हो जाता है कि कौन सी सामग्री क्या ली गई थी। अत जिन चिट्ठों पर सामग्री नीत करें उन पर उम किन की तिथि भी प्रक्रित होनी चाहिए। पहले से तिथि अकित

शब्दों का अध्ययन

करने में वच्ची चिटो पर तिथि काटनी पड़ती है, अतः प्रतिदिन नोट करने के बाद तिथि अकित करना अधिक अच्छा है।

(२) यदि चिटो पर कोई संशोधन करना हो तो ऐसे काटकर लिखना चाहिए कि पूर्वलिखित सामग्री भी पढ़ी जा सके। कभी-कभी संशोधन पूर्व सामग्री को जानना भी आवश्यक हो जाता है।

(३) सामग्री कितने बड़े कागज पर नोट करे, यह प्रश्न भी विचारणीय है। नाइडा ने बड़े कागज पर सामग्री नोट करने की राय दी है, जिस पर काफी कुछ लिखा जा सके। मेरे विचार में शब्द आदि छोटी-छोटी चिटों पर नोट करना अधिक अच्छा है, ताकि फिर से सामग्री उतारनी न पड़े और विश्लेषण में चिटो को आवश्यकतानुसार विभिन्न बगों में रखा जा सके। हाँ, कहानी, गीत आदि बड़े कागज पर नोट किये जा सकते हैं।

(४) कागज के एक तरफ लिखना चाहिए। दोनों तरफ लिखने में तुलना करते समय बहुत समय लग जाता है तथा विश्लेषण में भी कठिनाई पड़ती है।

(५) छिपाकर नहीं लिखना चाहिए। इससे सूचक सर्वेक्षक को उद्देश्य पर संदेह हो सकता है।

(६) हर शब्द को कम से कम दो बार सुनकर लिखना अधिक अच्छा होता है। लिखने के बाद तुरन्त एक बार दुहरा भी लेना चाहिए ताकि लेखन में यदि कोई त्रुटि हो तो उसे ठीक किया जा सके।

(७) जो शब्द जैसे सुनाई पड़े, वैसे ही लिखना चाहिए। किसी स्तर पर बलात् एकरूपता लाने का यत्न नहीं किया जाना चाहिए। अनुसंधान में ऐसी ईमानदारी बड़ी ही आवश्यक है।

(८) सामग्री ध्वनिग्रामिक लिपि में न लिखी जाकर ध्वन्यात्मक लिपि में लिखी जानी चाहिए।

(९) सूचक से सामग्री नोट करने के लिए अच्छी किस्म की पेसिल ठीक रहती है। एक तो इससे अपेक्षाकृत अधिक तेजी एवं सरलता से लिखा जा सकता है, दूसरे कागज के भीगने पर अपठ्य होने का भय नहीं रहता, और तीसरे स्थाही साथ रखने से परेगानी से छुटकारा मिल जाता है।

(१०) टेप रिकार्डर से टेप करके, बाद में अकेले बैठ कर भी सामग्री लिखी जा सकती है।

अर्थ—सामग्री लिखने के साथ-साथ उसका अर्थ भी लिखते चलना चाहिए। इस सम्बन्ध में निम्नोक्त बातें ध्यान में रखी जानी चाहिए :

(१) स्थूल वस्तुओं के सुनिश्चित अर्थ (जैसे रोटी, चारपाई, मकान आदि) तो सरलता से लिखे जा सकते हैं।

(२) जिन गान्धों के लिए अपनी भाषा में शब्द न मिल जनकी व्याख्या लिखी जा सकती है।

(३) बहुत सी वस्तुओं के ऐसे भी नाम मिल सकते हैं जिनके लिए अपनी भाषा में शब्द नहीं हैं, और उनकी ठीक व्याख्या लिखना भी जहाँमें इच्छित होता है ऐसी स्थिति में उनके रेखाचित्र या संकेत से काम चलाया जा सकता है।

(४) अर्थ की दृष्टि से अस्पष्ट गान्धों के अर्थ उनके प्रयोग से पढ़ाने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि सूचक के लिए गान्ध का अर्थ समझना—विशेषता ठीक अर्थ समझना—सबका समझना नहीं होता।

सर्वेक्षण के लिए अपनी सुझाव—अपर, सर्वेक्षक का सा हो इस सम्बाध में कुछ बातें बही गई हैं। यहाँ कुछ वे बातें दी जा रही हैं, जिनका उसे सर्वेक्षण परते समय ध्यान रखना चाहिए।

(१) यदि मूचक की अभिवादन पद्धति में सर्वेक्षक परिचित है या मिलत ही दूनकर परिचित हो जाता है तो उस उसी पद्धति से तुरन्त अभिवादन करना चाहिए। प्रारम्भ में विना विशेष परिचय के अपनी पद्धति से अभिवादन करना उचित नहीं होता क्योंकि एसा भी ही सकता है कि सर्वेक्षक की पद्धति से सूचक परिचित न हो और यहाँ भेंट भी ही उसकी यह दूरबन सूचक के लिए एक रहस्य बन जाय, या यह भी ही सकता है कि उस प्रकार की क्रिया (जैसे हाय उठाना) उसकी अपनी सम्भृति में कुछ भिन्न अर्थ रखती हो या सराव भव रखती हो। विशेषत किसी भी दैन के बहुत पिछड़ आर्द्धवासिया में जात समय इस बात का ध्यान निरात भावस्थक है।

(२) मूचक से मुख्यराते हुए मिलना चाहिए। या विभिन्न स्थितियों में मुख्यराहट व्याय या भजाक उडाने की थातक होती है कि नु प्रथम या मिलन समय की सहज मुख्यान ग्राम सभी सस्तियों में इसी बात का थोता बरती है कि मिलवर यही प्रसन्नता हुई। विशेषत एकमात्रिक पद्धति में तो यह मुख्यान और भी आवश्यक हो जाती है क्योंकि सर्वेक्षक एमो स्थिति में नहीं होता कि बालकर अपने भावा को सूचक तक पहुंचा सके।

(३) मिलन ही चूप न रहवार किसी न किसी भाषा में (चाहे उसे मूचक भल न समझना हो) बात बरनों पूर्व कर दनी चाहिए। मूचक पर इसकी सहज प्रतिविधि यही होगी कि सर्वेक्षर बात बरना चाहता है।

(४) यदि मूचक की सम्भवा में प्रचलित विनाभना एवं लिप्तता के डगा से सर्वेक्षर परिचित हो तो उसे उसी के अनुरूप व्यवहार बरना चाहिए। उससे मूचक की अपनी भी भावधिन बरन एवं उसमें अपेक्षित पहुंचोग प्राप्त बरने में

मदद मिलती है ।

(५) क्षेत्र मे कुछ उपहार (जैसे मिठाई आदि) लेकर जाना प्रायः अच्छा सावित होता है । यदि सर्वेक्षक को इस बात का पता हो कि सूचक के क्षेत्र मे कौसा उपहार-विशेष पसद किया जायगा तो वही लेकर जाना चाहिए ।

(६) सूचक से मैत्रीपूर्ण भंगिमा से स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिए ।

(७) सर्वेक्षक कुछ सीखने के लिए सूचक के पास जाता है । उसे सच्चे अर्थों मे अपने को शिष्य समझना चाहिए ।

(८) सूचक की हर परंपरा, बात एवं व्यवहार आदि के प्रति सर्वेक्षक को सहज प्रशंसात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए तथा ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि सूचक को भी इस दृष्टिकोण का पता चल जाए ।

(९) यदि सूचक से कोई गलती हो जाय तो ऐसा रुख अपनाना चाहिए या ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे उसे ग्लानि, संकोच आदि न हो, और उसे लगे कि सर्वेक्षक यह कहना चाहता है कि कोई बात नहीं, ऐसी गलतियाँ तो हो ही जाती हैं । या ऐसी गलती देखकर भी नजरदाज कर देना चाहिए ताकि सूचक को लगे कि सर्वेक्षक ने देखा नहीं, या ध्यान नहीं दिया, ताकि उसमे लज्जा, संकोच आदि के भाव न आएँ ।

(१०) सूचक के साथ जब तक भी सर्वेक्षक रहे, उसे प्रसन्नचित्त रहना चाहिए ।

(११) यदि किसी प्रकार यह पता चल जाय कि किसी कारण सूचक कुछ दुखी है तो ऐसी स्थिति मे उस समय उससे सामग्री नोट करने का प्रयास न कर फिर कभी उसके लिए जाना चाहिए । यदि किसी प्रकार सभव हो तो ऐसी स्थिति मे सहानुभूति के भाव व्यक्त करना उसके समीप जाने मे बहुत सहायक होता है ।

(१२) सूचक यदि कोई बात अशुद्ध भी बतलाये तो न तो उसे टोकना चाहिए और न उससे विवाद करना चाहिए । यदि किसी बात के अशुद्ध होने का सदेह है तो विना उसे बताए, उससे फिर एक बार घुमाफिरा कर किसी अन्य प्रसग मे वही बात पूछ लेनी चाहिए । यदि फिर भी गलती का सदेह हो तो बाद मे दूसरे सूचक से पूछना चाहिए ।

(१३) यदि अपने से कोई गलती या अभद्रता हो जाय तो सर्वेक्षक को क्षमा-प्रार्थी होना चाहिए । नाइडा ने अपनी भूलों पर तुरत हँसने की सलाह दी है । मेरे विचार मे कुछ स्थितियों मे तो यह ठीकहो सकता है, किंतु सभी स्थितियों मे भूल करके हँसने से गलतफहमी हो सकती है ।

(१४) सूचक वे दार्शनिक या भाषण दुहराने में यदि सर्वेक्षण से बोई थागुदि हो जाय और इस पर सूचक या भाषण लोग हँस तो इसका युरा न आए, किर से ठीक फूने का प्रयास करना चाहिए, और उन लोगों के साथ अधिक स अधिक बातचीत करनी चाहिए।

(१५) सर्वेक्षण को सूचक या उग भाषण का भाविता के सदृश में अधिक स अधिक रहना चाहिए ताकि उन लोगों दो भाषण में बात करने मुना जा सवे।

(१६) सूचक में मुन गए कुछ नाम या वाक्य यथावसर सूचक के सामने प्रयुक्त दिए जायें तो सूचक आगे और भा तत्परता में बनलाता है, क्योंकि उसे विश्वास हो जाता है कि उसकी भाषण के सदृश में जानकारी एवं प्र करने वाला व्यक्ति बताई गई चीजों परिधि में याद कर रहा है।

(१७) सूचक के साथ लफातार बहुत देर तक काम करना ठीक नहा होता। ऐसा न हो कि वह ऊब कर बतलाते में हचि लेना थोड़ा द। नाइट ने ४५ मिनट को सामायत ठीक समय माना है। मेरे विचार में ऐसा कोई नियम बनाना कदाचित बहुत व्यावहारिक नहीं। बस्तुत समय का निर्धारण सूचक की प्रकृति (कम खोलने वाला या बातूनी), उगवे पास कितना समय है उसकी उम्मी (यह अनुभव यह रहा है कि अधेड या कुछ बूने दर तक बिना ऊबे बतलाते रहते हैं और १८ २० वर्ष की उम्मी बाले सबसे जल्दी ऊब जाते हैं) तथा उसके स्वास्थ्य आनि का आधार पर भाषण-सर्वेक्षण स्वयं कर सकता है।

(१८) सूचक से एक ही बात बार बार दुहराने वो नहीं कहना चाहिए। इससे वह ऊब सकता है। यदि दो-तीन बार के बाद भी उसी वो दुहराने की आवश्यकता है तो ऐसा बाद में किसी और प्रसंग में करना अधिक उचित होगा।

(१९) 'ऐसा क्यों या एस प्रकार के भाषण प्रश्न पूछना उचित नहीं।' यदि सूचक जानता है तो बतला देगा, और यदि नहा जानता है तो यह सूचक विं उस अपनी भाषण के बारे में नहीं मालूम है, भर प सकता है और आग सर्वे नाम की सहायता करने से कठरा सकता है। सूचक ऐसी स्थिति में यह सूचक भी हीन पर्यावरण करता है कि सर्वेक्षक उसके बारे में क्या सोचेगा कि इस अपनी भाषण के बारे में इतनी सी बात भी नहीं मालूम है।

(२०) नाइट न चिना है कि एक बार कोई सर्वेक्षण अगुली स इशारा करने विभिन्न बस्तुओं के नाम पूढ़ता रहा और सूचक हर बार एक ही उत्तर देता रहा। हमा यह कि हर बार सूचक यह समझता था कि सर्वेक्षक अगुली का नाम पूढ़ रहा है और वह वही बताता रहा। इस प्रवार जब एक ही उत्तर

वार-वार मिले तो ऐसी गलतफहमी का अनुमान लगा लेना चाहिए, और इस से वचने के लिए वस्तु को छुआ जा सकता है या और तरीके अपनाये जा सकते हैं।

(२१) नाम जानने के लिए सूचक की वस्तुओं को देखने में, अपनी वस्तुओं को दिखाना बहुत सहायक होता है। इसका आशय यह भी हुआ कि सर्वेक्षक भी अपने साथ कुछ वस्तुएँ ले जाय, और अच्छा हो कि वह (पहले) अपनी वस्तुएँ भी दिखाए।

(२२) अपनी वस्तुएँ दिखाते समय सर्वेक्षक को सतर्कता के साथ सूचक के शब्दों को सुनना चाहिए। निश्चित रूप से वह 'यह क्या है' या 'इसका क्या नाम है' या 'यह किस काम आता है' का समानार्थी कोई शब्द या वाक्य प्रयुक्त करेगा। इस प्रकार के प्रश्नों के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों को जान लेने पर उनकी वस्तुओं के नाम-काम आदि पूछने में सर्वेक्षक को आसानी रहेगी।

(२३) इस सम्बन्ध में एक यह बात भी ध्यान देने की है कि यदि सूचक से सुनकर उसी रूप में प्रश्न किया जाय और सूचक एक शब्द न कहकर एक या कई वाक्य कहे, या देर तक बोलता रहे, तो उसका आशय यह समझना चाहिए कि उस प्रश्न का अर्थ 'इसका क्या नाम है' न होकर 'यह किस काम आता है' है।

(२४) अपनी वस्तुएँ दिखाते समय उनके नाम तथा काम आदि के बारे में कुछ कहते रहना चाहिये, यद्यपि यह निश्चित है कि सूचक कुछ नहीं समझेगा। इससे लाभ यह होगा कि अपनी वस्तुएँ दिखाते समय वह भी उनके बारे में कुछ कहना चाहेगा, जिससे उसकी भाषा को सुनने और कुछ प्रारम्भिक बातों को पकड़ने का अवसर मिलेगा।

(२५) सूचक की स्फूर्ति एवं उसके अधिविश्वास आदि को ध्यान में रखते हुए उन वस्तुओं के नाम प्रायः नहीं पूछने चाहिए, जिन्हे बताने में सूचक को किसी भी कारण सकोच हो। उदाहरण के लिए अनेक पिछड़ी जातियों के आदिवासी अपना नाम, रात में साँप-विच्छू के नाम तथा शैतान-मृत आदि तथाकथित अमांगलिक शक्तियों आदि के नाम लेना नहीं चाहते।

आदिम जातियों में कुछ शब्द टैवू होते हैं। यदि उनकी जानकारी हो तो उन्हे भी नहीं पूछना चाहिए।

(२६) सूचक की चीजों देखते समय उन चीजों के बारे में उनके न समझने के बावजूद कुछ कहते और पूछते चलो, जिससे वह स्पष्ट समझ जाय कि उन वस्तुओं के बारे में सर्वेक्षक जानना-सुनना चाहता है। इसका परिणाम यह

होगा वि यह हर यरतु वो निरान वे समय उमरे राम राम वे बारे म हुद्ध
महता खलता जिग्न घना पहुँचा वे नाम जाते तथा गूचक की भाषा
समझने मीठान ग भूमि मिलती ।

(२०) मनुगयता वो गूरा की यसनमा क प्रति द्राशात्मक भाव व्यक्त
वरते समय इग यात ए पूरा व्याप रखता चाहिए वि सोभ पा उग बस्तु की
सो श्री गण ए घाटे पाठ ।

(२१) गूचक वो गनी पहुँचा के सम्बद्ध म गवें रह वो रहज जिनाया
ए भाष प्रश्नित वरना चाहिए ।

(२२) ऊपर मह व्या है का गमानार्थी शब्द या वाक्य जानने के लिए
वहा जा चुका है । बस्तुत सर्वेश्वर के जिए गूचक की भाषा वे तो वाक्य
जानन बहुत आवश्यक हैं 'मट वगा है वह रिग्वा है, 'वह व्या वर रहा
है । इनम प्रथम ग मनव गजा गड़ा, दूसर से सवनामा वे सम्बद्ध वाक्य के
इत्या तथा तीवर से घनें घातुपा की जानकारी हो रहती है ।

(२३) भाषा के, विषम एव वक्ता से सम्बद्ध विभिन्न स्तरों की जानकारी
के लिए विभिन्न विषयो एव घवसरा पर, तथा विभिन्न वगो-जातियों घमो
स्तरों के लोगो के वीच यातें मुननी चाहिए । इससे उस भाषा के विभिन्न
स्तरों के गव्व भादि समझने म आसानी होगी ।

(२४) वाम के वाद समय मिलते ही सामग्री का विश्लेषण आरम्भ कर
देना चाहिए । इसस आगे के वाम म मदद मिलती है तथा जानी गई चौज
के भूलने वा भय नही रहता और वह याद होनी चलती है ।

उपर्युक्त पढ़ति से इसी भाषा का अनिवित शब्द भाजार तथा उससे
सम्बद्ध आवश्यकीय वातें एवं वातें जो सरती हैं कितु इसम जल्दी नही बरनी
चाहिए । छवनि, रूप, तथा वाक्य नियम विषयक सामग्री अपेक्षाकृत जल्द
एवं वरने के लिए वही वपौं वा रामय चाहिए । ताक ही सम्बद्ध पूरे प्रदेश
के सभी घमों, जातियो, "पञ्चायियो, स्तरो एव अवस्था के मूलमा से सामग्री
लो जानी चाहिए ।

अध्याय ३

शब्द-अध्ययन-पद्धति

अन्य भाषिक इकाइयों के अध्ययन की तरह शब्दों का अध्ययन भी तीन प्रकार से किया जा सकता है : वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक। ये अध्ययन रचना, अर्थ, ध्वनि और प्रयोग की दृष्टि से हो सकते हैं। इनमें कुछ के बारे में इसी पुस्तक में अन्यत्र कुछ विस्तार से विचार किया गया है। यहाँ सक्षेप में इन्हें लिया जा रहा है, जिन विषयों को पुस्तक में अन्यत्र नहीं उठाया गया है, उन पर यहाँ कुछ विस्तार से कहा जायगा।

(क) रचना की दृष्टि से .

रचना की दृष्टि से सभी शब्द विचारणीय नहीं होते। ऊपर के शब्दों के वर्गीकरण में जिन शब्दों को 'रुढ़' कहा गया था उनकी रचना का प्रश्न नहीं उठता। उदाहरण के लिए घर, मेज, रोटी, पानी या डस प्रकार के अन्य शब्द जिनको सम्बद्ध ग्रंथ में विश्लेषित नहीं किया जा सकता अपने आप में लघुतम इकाई हैं। रचना का प्रश्न यौगिक शब्दों के प्रसरण में उठता है जो दो या अधिक भाषिक इकाइयों से बनते हैं। उदाहरण के लिए अव्यावहारिकता (अ+व्यवहार+इक+ता), सुपठ्य (सु+पठ+य), अग्रेजियत (अग्रेजी+अत), घुडदौड़ (घोड़ा+दौड़) आदि। आगे शब्द-निर्माण के अध्याय में हम विस्तार से देखेंगे कि शब्दों की रचना मूल में उपसर्ग, मध्यसर्ग, प्रत्यय या अन्य शब्द जोड़ने या किसी ध्वनि या ध्वनिसमूह को परिवर्तित करने या निकालने आदि से होती है। योगरुढ़ शब्द भी इस यौगिक के अन्तर्गत ही आते हैं, क्योंकि रचना की दृष्टि से वे भी यौगिक ही हैं, केवल अर्थ की दृष्टि से रुढ़ हैं।

इस प्रसरण में यह भी उल्लेख्य है कि यह आवश्यक नहीं कि एक शब्द यदि एक भाषा में रचना की दृष्टि से विचारणीय है तो सभी भाषाओं में वह

विचारणीय हो। इसका कारण यह है कि यह ही शब्द एक भाषा में सूचि हो सकता है तो दूसरी भाषा में योगिक। उत्तराहण के लिए 'इन्सान' 'विताव', 'मानवत' भ्रवों में योगिक हैं अर्थात् इनकी रचना पर विचार हो सकता है जिन्हें ही शब्द हिन्दी में मूल अर्थात् इस है और इनकी रचना पर विचार बरने का प्रश्न नहीं उठता। इसी प्रकार नेता पंत, पंथ, नगर समृद्धि में योगिक शब्द हैं जिन्हें ही में ये सूचि हैं।

रचना की दृष्टि से 'गढ़' का विश्लेषण भाषा विशेष की भाषिक इकाइयों के सम्बन्ध में होता है। ऐतिहासिक अध्ययन में उन तत्त्वों का इतिहास देता जाता है जिनमें उस शब्द की रचना होती है। तुलनात्मक में पारिगारित दृष्टि से सम्बद्ध या असम्बद्ध एक या अनेक भाषाओं में प्रयुक्त उस शब्द का उसके तत्त्वों का तुलनात्मक विवेचन किया जाता है।

(ए) अथ की दृष्टि से

अथ शब्द की मात्राएँ हैं। उसकी मात्रामात्रा की दृष्टि से भी उसका अध्ययन होता है। इस अध्ययन के अनेकानेक हृषि सर्वतों हैं। एक वालिक (सिन्धानिक) भाषा विश्लेषण में 'गढ़' के उत्त एक समय में प्रबन्धित अर्थों को देखा जाता है। जैसे मान लें हम घर 'गढ़' लें। हमें यह देखना हांगा कि हिन्दी में उसका वित्तन अर्थों में प्रयोग हो रहा है। यह प्रयोग कोण से नहीं वास्तविक प्रयोग से देखा जाना चाहिए। जब हम प्रथोगों पर दृष्टि दीड़ाते हैं तो हमें यह देख बर आश्चर्य होता है कि जिस हम सामान्यतः एक या दो अथ वाला समझते हैं उसका प्रयोग अनेक अर्थों में हो रहा है —

- १ उसका घर अच्छा है। (भवान)
- २ आपका घर कहाँ है? (जामभूमि स्वदेश)
- ३ इस मवान में पांच घर है। (कमरा)
- ४ यह ती घर की बात है। (निंग अपस)
- ५ रोग का घर जासा। (भूल कारण)
- ६ वह बड़े घर की बटी है। (भराना वश)
- ७ तुम तो भूठ के घर हो। (राशि समूह)
- ८ उसमें बुराई घर कर गई है। (स्थान)
- ९ घर में कहाँ गई है? (घर में=पल्ली)
- १० उब औरत ने घर बर तिया है। (पति)

शब्द-अध्ययन-पद्धति

ये तो घर के मुख्य प्रयोग थे। गौण प्रयोग दो-चार और भी खोजे जा सकते हैं। भाषाविज्ञानवेत्ता के कार्य की इतिश्री यही नहीं हो जाती। वह इन भिन्न-भिन्न अर्थों का आपसी सम्बन्ध भी खोजता है। साथ ही घर के इन अर्थों में हिन्दी के कौन-कौन से शब्द उसके पर्याय या विपरीतार्थी हैं, इसका अध्ययन भी, इसके अर्थों का भाषा के पूरे ढाँचे पे स्थान निर्वाचित करने के लिए आवश्यक है।

ऐतिहासिक दृष्टि से शब्दों के अर्थ का विकास देखना होता है। कैसे और क्यों सस्कृत में तेल 'तिल का रस' था पर हिन्दी में 'तेल' का अर्थ बहुत फैल गया है और गोला, वादाम, सरसों, मछली आदि के प्रसंग में भी तेल का प्रयोग होने लगा है। यही नहीं यदि आपने अपने नौकर को चिलचिलाती धूप में कहीं दौड़ा दिया तो लौटकर वह पसीने से लथपथ, उलाहना देता है, 'वादूजी आपने तो मेरा तेल निकाल लिया'। इस तरह इस शब्द ने 'तिल' से अपनी विजय यात्रा शुरू की और सरसो-गोली-वादाम, मछली-चिड़िया होता आदमी तक पहुँच गया। अर्थ के ऐतिहासिक अध्ययन में यह अर्थ का विस्तार था। संकोच और आदेश आदि भी होते हैं, जिन्हे हम आगे अर्थ से सबद्ध स्वतन्त्र अध्याय में देखेंगे।

शब्द के अर्थ का तुलनात्मक अध्ययन भी कम मनोरजक और उपयोगी नहीं है। भाषाशास्त्री यह जानते हैं कि अग्रेजी शब्द 'फोस' और हिन्दी 'पशु' मूलत एक हैं किन्तु आज दोनों के अर्थों में जमीन-आसमान का अन्तर है। 'किताब' शब्द मराठी में भी चलता है किन्तु वहा इसका अर्थ 'उपाधि' है, और हिन्दी में 'किताब' का अर्थ 'पुस्तक' है। देखने में यह अर्थ-भेद आश्चर्यजनक है किन्तु वस्तुत यहाँ ध्वनि-परिवर्तन के कारण ऐसा हुआ है। हिन्दी 'किताब' अरवी 'किताब' से सम्बद्ध है पर मराठी किताब 'खिताब' का विकसित रूप है। 'घाम' मराठी में पसीना है और हिन्दी में धूप है। इसका सम्बन्ध सस्कृत 'धर्म' से है। इसी प्रकार सस्कृत पर्ण से निकला 'पान' शब्द हिन्दी में ताम्बुल है तो मराठी में पुस्तक का पृष्ठ। मराठी में ही 'तालीम' व्यायाम या कसरत है किन्तु हिन्दी में शिक्षा है। मूल शब्द अरवी 'तालीम' है।

(ग) प्रयोग की दृष्टि से

शब्द का प्रयोग की दृष्टि से अध्ययन भाषा की अभिव्यञ्जनाशक्ति के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन करता है। अभी तक बहुत कम भाषाओं में इस प्रकार का कार्य हुआ है। प्रयोग की दृष्टि से अध्ययन में अनेक वाते आती हैं। उदाहरण के लिए एक समस्या है कि तथाकथित समानार्थी शब्दों

"वर्दों का अध्ययन

ग यथा कुछ प्रयोगिक भ्रत है ? उदाहरण के लिए हिन्दी म अधिक और बहुत दोनो ही रचाया के ग्रन्थ म प्रयुक्त होते हैं। किंतु प्रयोगो से पता चलता है कि बहुत केवल रचाया होने का वोपन चराता है

राम बहुत बोलता है।
सीता बहुत सुन्दर है।

किंतु दूसरी ओर अधिक तुलनावोधक शब्द है
राम अधिक बोलता है।

इस दूसरे वाक्य का ग्रन्थ यह है कि किसी ओर की तुलना म यह कही जा रही है।

राम मोहन स अधिक बोलता है।
इसी प्रकार

सीता अधिक सुन्दर है।
अर्थात् किसी की तुलना म

सीता राधा से अधिक सुन्दर है।

जपर के दोनो वाक्यों म अधिक के स्थान पर यदि बहुत रखें तो ओर भी बात सामन आती है

(1) राम मोहन स अधिक बोलता है।
राम मोहन से बहुत बोलता है।

(2) सीता राधा स अधिक सुन्दर है।
सीता राधा स बहुत सुन्दर है।

स्पष्ट है पहले वाक्य म 'बहुत रख देने से वाक्य का अध्य बाल गया है और दूसरे म बहुत का प्रयोग अच्छा नहा लगता। यहाँ केवल अधिक ही भा सकता है बहुत नहीं। इस तरह दोनो शब्द समानार्थी हैं पर दोनो के प्रयोग म अन्तर है।

वस्तुत प्रयोग म अन्तर का अध्य यह है कि जपर स व समानार्थी भल हो मृद्घम दट्टि स उनका भय एक नहीं है। दूसरे 'ग' म वे समानार्थी हैं पर एकार्थी नहीं हैं। इस समानार्थी हाने ओर एकार्थी न होने को केवल अध्य बतलाकर समझना कठिन है। प्रयोग जिस तात्त्व ही 'ग' को 'गलि' ओर सामा स्पष्ट को जा सकती है।

कभी-कभी य दोना साध भी मान है।
यह बहुत अधिक सुन्दर है।

और तब ग्रत्यविक का भाव व्यक्त होता है। किन्तु यहाँ प्रयोग की एक और वात ध्यान देने की है। 'वहृत' के बाद 'ग्रविक' का प्रयोग हो सकता है किन्तु 'ग्रविक' के बाद 'वहृत' का प्रयोग नहीं हो सकता। इस प्रकार के सही प्रयोग पर ही भाषा का स्वाभाविक प्रवाह निर्भर करता है।

इस तरह शब्दों के प्रयोग का अध्ययन वाक्य में शब्द विशेष का क्रम या उसका स्थान बतलाता है तथा भाषा की अभिव्यञ्जना में उसकी शक्ति और सीमाओं, दोनों ही का उद्घाटन करता है।

(घ) ध्वनि की दृष्टि से

अर्थ शब्द की आत्मा है तो ध्वनि उसका शरीर है। ध्वनि की दृष्टि से हम शब्द के शरीर का अध्ययन करते हैं।

जहाँ तक ध्वनियों के वर्णन का प्रयत्न है पहली वात देखने की यह है कि किसी शब्द में कौन-कौन सी ध्वनियाँ हैं और ये ध्वनियाँ अपने आदर्श रूप से कितनी भिन्न हैं। उदाहरण के लिए 'ल' ध्वनि जीभ की नोक के ऊपरी भाग को बत्सर्घ के पास ले जाकर बोली जाती है किन्तु 'वाल्टी' बोलने में यही 'ल' जीभ की नोक उलट कर नीचे के भाग को मुद्रित और कठोर तालु के बीच ले जाकर उच्चरित किया जाता है।

इसी प्रकार यह भी देखा जाता है कि शब्द के उच्चरित रूप और लिखित रूप में ध्वनि के स्तर पर क्या सम्बन्ध है। यदि अन्तर है तो कितना है। साथ ही एक शब्द जब दूसरे के पास आता है तो उसकी किस-किस स्थान की ध्वनियाँ कितनी-कितनी परिवर्तित होती हैं। उदाहरण के लिए 'डाक' 'घर' से मिलकर उच्चारण में डाग् (डाग्वर) हो जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने में ध्वनियों का इतिहास देखते हैं। जैसे सस्कृत का 'दवि' शब्द हिन्दी में 'दही' हो गया अर्थात् 'घ' 'ह' हो गया।

ध्वनि का तुलनात्मक अध्ययन दो या ग्रविक भाषाओं में सम्बद्ध शब्दों में ध्वन्यात्मक समानता, अन्तर और परिवर्तन को लेकर होता है।

उपर्युक्त चार दृष्टियों या पद्धतियों—रचना, अर्थ, प्रयोग ध्वनि—ही प्रमुख हैं। इन चारों को मिला-जुलाकर शब्दों की व्युत्पत्ति और उनका इतिहास, शब्दों में छिपा समाज या उमकी चिन्तन-प्रणाली का स्वरूप तथा कोश आदि अन्य रूपों में भी शब्दों का अध्ययन किया जा सकता है, और किया जाता है। ◎

कोशा विज्ञान

कोशा विज्ञान भाषा विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है। मानव विकास के शारीरिक में कोशा की आवश्यकता नहीं थी वयोविधि मानव का सम्बन्ध क्वल अपना भाषा स था। न तो उसके पास अपने पूर्वजों की भाषा का काइ रूप था जिम जानने-समझने के लिए वह ऐसा प्रयास कर और न एक भाषा भाषी कबीले का दूसरे से बहुत अधिक संपर्क हा आवश्यक था कि वह इस दिशा में कुछ करे। साथ ही, काण का आवार लियि है। यह आवार नी उनके पास नहीं था, या या भा ता नगण्य रूप में। लिपि वे विकास के साथ-साथ मनुष्य का अपने पूर्वजों का रचनाए उत्तराधिकार के रूप में मिली जिह रामभन के लिए कोशा की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इसी प्रकार व्यापारिक या सास्कृतिक कारणों से एक भाषा भाषी जब दूसरे के समझने की आवश्यकता हुई तो द्विभाषीय कोण की नीव पढ़ी। इस प्रकार समाज वे विकास के साथ यथा अनेक प्रकार के कोणों का विकास हुआ है और होता जा रहा है।

भाषा विज्ञान की भाष्य शाखाओं की भौति ही काश निमाण भी सबसे पहले अपने शारीरिक रूप में भारतवर्ष में ही विकसित हुआ। नगभग १००० ई०पू०—निषट्टुओं की रचना हुई। तब से लेकर १००० ई० तब इन दो हजार वर्षों में भारत में वही प्रकार के सबडों कोण लिये गये जिनमें से अमरकाण्डा आदि बहुत स तो अब भी उपनिषद हैं। यूरोप में १००० ई० के पूर्व ठार शर्थों में कोण नहीं मिलते। अप्रेजी कोशा का इतिहास तो १६वीं सदी के अंतिम चरण से ही प्रारम्भ होता है, यद्यपि अब वे सलार में सम्भवन सबसे आगे हैं।

कोणों के प्रमुख प्रकार

अब तक विश्व की अन्तरालेवं माध्यांग्रा में अनेक प्रकार के कोण बन हैं और आग उनके प्रकारों की संख्या हमार जीवन, जान और आवश्यकताओं के

विकास के साथ-साथ बढ़ती ही जा रही है। मुख्यतः निम्नाकित प्रकार के कोश मिलते हैं —

च्यव्वित कोश .

किसी एक व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त सभी शब्दों के कोश को व्यक्ति कोश कहते हैं। हिन्दी में प्रस्तुत पवित्रों के लेखक द्वारा सम्पादित तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त शब्दों का कोश 'तुलसी शब्द सागर' प्रकाशित हो चुका है। अग्रेजी में शेक्सपियर तथा मिल्टन के कोश इसी प्रकार के हैं।

पुस्तक कोश

किसी एक पुस्तक का कोश पुस्तक कोश कहलाता है। वाइविल कोश, कुरान कोश इस दृष्टि से काफ़ी प्रसिद्ध हैं। हिन्दी में रामचरित मानस कोश तथा विनय कोश उल्लेख्य हैं।

भाषा कोश

भाषाओं के कोश मूलतः तीन प्रकार के मिलते हैं एकभाषी, द्विभाषी, वहुभाषी। एकभाषी कोष में एकभाषा के शब्दों का अर्थ उसी भाषा में होता है। अग्रेजी में ऑक्सफोर्ड, चैम्बर्स, वैन्स्टर या हिन्दी में हिन्दी शब्द-सागर, इसी प्रकार के कोश हैं। द्विभाषी कोश में एक भाषा के शब्दों का अर्थ दूसरी भाषा में देते हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी-हँसी कोश, अग्रेजी-हिन्दी कोश, उर्दू-हिन्दी कोश या सस्कृत-अग्रेजी कोश आदि। वहुभाषी कोश में दो से अधिक भाषाओं के शब्द साथ-साथ होते हैं। जैसे प्राकृत-अग्रेजी-हिन्दी, अग्रेजी-हिन्दी-उर्दू, हिन्दी-मराठी-अग्रेजी, हिन्दी-उर्दू-सिन्धी-अग्रेजी। उपर्युक्त भाषा कोशों में पहले और दूसरे में अधिक गहराई होती है। तीसरे प्रकार के कोशों की श्रेणी में जो भी कोश अब तक प्रकाशित हुए हैं, प्रायः उन सभी की शब्द-समूह और अर्थ दोनों ही दृष्टियों से अपनी काफ़ी सीमाएँ हैं। भाषा कोश, विशेषतः एकभाषी और द्विभाषी, प्रायः दो प्रकार के होते हैं वर्णनात्मक, ऐतिहासिक। तुलनात्मक सामग्री देकर दोनों ही को तुलनात्मक भी बनाया जा सकता है। कोश-साहित्य में वर्णनात्मक और ऐतिहासिक कोशों का विशेष मूल्य है, अतः इन पर नीचे कुछ विस्तार से विचार किया जा रहा है।

वर्णनात्मक कोश .

इसमें किसी भाषा में किसी एक काल में प्रयुक्त सारे शब्दों और उनके सारे अर्थों को देते हैं। इस प्रसग में यह प्रश्न विचारणीय है कि यदि एक

शादी का अध्ययन

राज्य के एक संभिक भव्य है तो उह किस रूप से रखा जाय। हिंदी में नागरी प्रचारिणी सभा वा हि दी राज्य सामर या उम्मा संक्षिप्त रूप बहुत हिन्दी कोश या प्रामाणिक हि नी कोश भावि इसी प्रकार के बणनात्मक कोश हैं। उनमें यदि किसी भी रूप से न दिय जाकर मनमान लग से जस पार भात गय भागे पीछे दे दिय गये हैं। वस्तुत बणनात्मक कोश में यदि प्रचलन के आधार पर कमबढ़ किए जान चाहिए। जो अथ सबसे अधिक प्रचलित हो उस सबस पहले और जो सबस कम प्रचलित हो उस वार म। कमी कभी अथ के कम या अधिक प्रचलन के सम्बन्ध में विवाद भी खड़ा हो सकता है और एसी स्थिति में विवादप्रस्त भव्यों में किसी को भी भाग पीछे रखा जा सकता है।

ऐतिहासिक कोण

किसी भाषा का ऐतिहासिक कोण उसके विवास भावि को समझने लिए बड़ा सहायत होता है। ऐतिहासिक कोश में किसी भाषा में ये प्रचलित राज्यों या उनके प्रचलित घण्यों को ही न लक्ष्य सार राज्यों और भाषा में प्रयुक्त उनके सार अध्यों को लेते हैं। बणनात्मक कोण में हमने देख कि यदि वो प्रचलन के आधार पर रखा जाता है। ऐतिहासिक कोण में यदि यह वो प्रचलन के आधार पर रखे जाते हैं। उगाहरणाय हम मानते हि किसी भाषा का एक राज्य है म। उगर का इ उ ऊ य पीछे यदि यह भाषा का एक राज्य होगा कि उसक पहले किस घण्य का प्रयोग हुआ और या भाषा का एक राज्य है म। उगर का इ उ ऊ य पीछे यही उन नियम का। मानते हि उस भाषा का धारम १००० ई० म है यही उन पर्य का प्रयोग १६०० ई० म इ वा ११०० म ई वा १००० म उ का १७०० म और ऊ का १२०० ई० म हुआ है। बहना न होगा यही उन घण्यों का वालदम से सवाना होगा घण्यत १००० ई० म प्रचलित यदि पहले नियम जायगा विर नम स ११०० १२०० १६०० और १७०० ई० क पर्य निय जायेग। घण्यू ई० इ ऊ का इ एवं प्रवार का कां बनान क निए पह भावन्यक है कि उम भाषा का माहिय उपयोग हो। एग कोण क निर्माण क पूर्व दो बाने भावन्यक है (१) उम भाषा म ग्राम ममा घण्यों का पाठ पाठालाचन क आधार पर निर्मित कर निया जाय। यही य घातम्य है कि प्रशिक्षण घण्यों का निवान पेहन का पाठ पाठना नहीं घण्यन उनका रख जाने का बान निष्ठाला करन उहे भा उम बान या गमों को रखना भान कर उगा गमहालान माहिय का याप रखा जाय। (२) गमा रखनाया का भान निर्मित कर निया जाय।

इन दो बातों के कर लेने पर किस सदी में कौन शब्द किस ग्रंथ में प्रयुक्त हुआ, इसका निचय करना सरल हो जायेगा, और उनके आधार पर सरलता से ऐतिहासिक कोश बन जायेगा। इस प्रसग में यह भी उल्लेख्य है कि ऐतिहासिक कोश हर दृष्टि से बहुत पूर्ण नहीं बन सकता, क्योंकि तैयार होने के बाद नई खोजों के आधार पर यदि कोई नई रचना सामने आ गई, पुरानी रचना का नया पाठ आ गया, या किसी रचना का काल कुछ और सिद्ध हो गया तो उनके कारण कोश में पर्याप्त परिवर्तन करना होगा। किसी भी, आवृत्तिक भारतीय भाषा का इस प्रकार का ऐतिहासिक कोश अभी तक नहीं बना। सस्कृत का मैनियर विलियम्स का कोश इसी प्रकार का है, यद्यपि वहुत अपूर्ण है। संस्कृत का इस प्रकार का एक आदर्श कोश पूना में बन रहा है। अग्रेजी की आक्सफोर्ड डिक्शनरी इस प्रकार का सर्वोत्तम प्रयास है।

पारिभाषिक कोश

पीछे शब्दों के वर्गीकरण में पारिभाषिक और अर्थपारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया जा चुका है। सामान्य कोशों में सामान्य शब्द तो होते ही हैं उनके साथ कोश के आकार-प्रकार के अनुकूल पारिभाषिक शब्द भी होते हैं। पारिभाषिक कोशों में केवल पारिभाषिक एवं अर्थपारिभाषिक शब्द होते हैं।

ये पारिभाषिक कोश भी मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिनमें शब्द का पूरा अर्थ समझाया जाता है। दूसरा वह जिनमें दो या अधिक भाषाओं के पारिभाषिक शब्दों का वर्णनुकूम से संग्रह होता है। दूसरे वर्ग के राजनीति, चिकित्सा विज्ञान, पत्रकारिता, दर्शन, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र आदि अनेकानेक विषयों के अनेक अग्रेजी-हिन्दी कोश प्रकाशित हो चुके हैं। यूरोपीय देशों में रूसी-अग्रेजी-फ्रेंच-जर्मन या फ्रेंच-अग्रेजी-जर्मन या इसी प्रकार के और भी बहुत से ३, ४, ५, ७, ८, १० भाषाओं के तुलनात्मक परिभाषिक कोश छाप चुके हैं।

पर्याय कोश

किसी एक भाषा के समानार्थी शब्दों का यह कोश लेखकों के बड़े काम का होता है। इसमें एक अर्थ या उसके समीप के अर्थों के सारे शब्द एक स्थान पर दिये होते हैं ताकि कवि या लेखक उस समानार्थी शब्द-समूह में अपने लिए अपेक्षित उपयुक्त या सटीक शब्द छॉट सके।

ऐसे शब्दों की प्राय शब्द-सूचियाँ ही मिलती हैं, किन्तु वैन्स्टर के पर्याय कोश की तरह यदि सभी शब्दों के अर्थ और प्रयोग का अतर भी समझाया

जा सके तो यह कोग प्रीत नो उपयोगी बन गवता है, प्रीत कोश की सहायता से लसव या कवि न केवल अनेक शब्द पा सकता है अपितु उनका ठीक प्रयोग म भी सहायता से सकता है।

विलोम काण्ड

विलोमार्थी या विपरीतार्थी (अच्छा बुरा जाम मूँग) शब्द प्राप्त पर्याप्त कीणों म भी निये होते हैं। अनेक याकरणों में भी विलोमार्थी शब्दों की मूल्चियाँ दी रहती हैं। यह भी अभियक्षित की सहायता के लिए ही होता है। अब तक इस तरह का कोई अच्छा कोश देखन म नहीं माया।

मुहावरा फोश

यह कोग वण्णनात्मक ऐतिहासिक एव तुलनात्मक तीनों प्रकार का या मिलाऊला हा सकता है। मुहावरे भाषा के प्राण होते हैं। वण्णनात्मक मे द्रवका अथ प्रीत प्रयोग रहता है ऐतिहासिक म इनका पूरा इतिहास, जते किस भाषा म आये हैं, मूलत इस पर आधारित हैं, या अथ म वया दुष्क विकास हुए है आदि देते हैं। तुलनात्मक म अथ भाषाभी के समानार्थी मुहावरे देते हैं।

सोकोक्षित कोग

मुहावरा कोग की तरह सोकोक्षितया या कहावतो का कोग भी तीनों प्रकार का हो सकता है।

प्रयोग कोग

भाषा प्रयोग पर ही आधारित है, इसीलिए याकरण या कोश आदि प्रयोग से ही नियमित होते हैं। प्रयोग कोश विसी भाषा वी सम्यक जानकारी के लिए बहुत आवश्यक है। अपेक्षो मे फाउलर का कोग इस हार्ट से भठ्ठत्वपूर्ण है। प्रयोग काण्ड म भाषिक इवाइयो के ठीक प्रयोग के संबेत रहते हैं, तथा मिलते जूलते प्रयोगों से अतर भी स्पष्ट किया रहता है। चाहरण के लिए यह हिंदी वा प्रयोग काण्ड बने तो राज राज वा भेद ने को म के ठीक प्रयोग, इयामरा की प्रयोग सीमाए सकना पाना म अतर बहुत अधिक मे भेद आदि भाषा व सभी स्तरों (ध्वनि, वल सुर, रङ्ग स्प, वाक्य मुद्रावरे सोकोक्षित) की सामग्री का प्रयोग स्तर पर विवेचन होगा।

विश्व कोण

यह कोग भाज के सुग वा भनिवाय भावशक्तता है ताकि एक ही पुस्तक म आप अपशिष्ट अधिक मे अधिक जानकारी प्राप्त कर सकें। विश्व कोग दो

प्रकार का होता है। एक तो सामान्य होता है, जिसमें सभी विषयों की प्रविष्टियाँ होती है। ब्रिटेनिका, अमेरिकाना, हिन्दी विश्व कोश आदि इसी श्रेणी के हैं। दूसरे प्रकार का विश्वकोश अलग-अलग विषयों का होता है। जैसे—दर्शन विश्व कोश, इतिहास विश्व कोश, भौतिकी विश्वकोश आदि।

जीवनी कोश

इसमें विभिन्न कालों के उल्लेख्य व्यक्तियों का जीवनियाँ रहती हैं। कथा कोश, अन्त कथा कोश भी इसी के अन्तर्गत आ सकते हैं। इसमें नामों, विशेषत विदेशी नामों के ठीक उच्चारण देना अच्छा रहता है।

भौगोलिक कोश

इसमें भौगोलिक नामों के सम्बन्ध में जानकारी रहती है। नामों के ठीक उच्चारण का ध्यान इसके लिए भी आवश्यक है।

उच्चारण क्रोश

उच्चारण की पूरी जानकारी के लिए उच्चारण कोश की आवश्यकता होती है। अग्रेजी और फ्रासीसी आदि में इस प्रकार के कोश हैं। ऐसे कोश में वर्तनी और उच्चारण में अन्तर (लोप, आगम, परिवर्तन) का स्पष्ट उल्लेख रहता है। साथ ही बलाधात का भी सकेत रहता है। ऐसा कोश ऐसी भाषाओं के लिए अधिक आवश्यक है जहाँ वर्तनी और उच्चारण में बहुत अधिक भेद है। हिन्दी में भी धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आ गई है। उपन्यास, कविता, कृष्ण, पाप, बलदेव, शेष आदि अनेकानेक शब्द हिन्दी में ऐसे हैं, जिनका उच्चारण अब वर्तनी के अनुरूप न रहकर क्रिश्चें, पाप्, बलदेव, शेश हो गया है।

इसके अतिरिक्त अन्वद कोश (प्रतिवर्प की वातो का कोश), अनेकार्थी कोश (ऐसे शब्दों का कोश जिनके कई अर्थ हों। संस्कृत में ऐसे कई कोश हैं) एवं एकाक्षरी कोश (एक अक्षर के शब्दों का कोश। ऐसे कोश भी संस्कृत में हैं) आदि आदि और प्रकार के कोश भी बनते रहे हैं, और कुछ आज भी बन रहे हैं।

कोश-निर्माण-विषयक कुछ आवश्यक वाते

शब्द-संकलन :

कोश-निर्माण में सबसे पहला काम कोशकार को इसी दिशा में करना पड़ता है। कोश यदि जीवित भाषा का बनाना है, तो शब्द लोगों से सुनकर इकट्ठे करने पड़ते हैं। यदि साहित्य या पुरानी भाषा का बनाना हो तो पुस्तकों से लेना पड़ता है। लोगों से सुनकर इकट्ठा करने में पूर्ण कोश बनाना

शब्दों का अध्ययन

प्राय भ्रसम्भव सा है, पराकिं हर जीकित भाषा म शूँ बढ़ते रहते हैं। नये शब्द विभिन्न स्रोतों से पाते रहते हैं। साहित्य के आधार पर कोण बनाने के लिए सम्बद्ध सारी पुस्तकों की पूरी विग्रामणी बना लेना शब्दस मज्जा होता है। ऐसा बट से ए पर कोई शब्द या भ्रय छूटने नहीं पाता। ऐतिहासिक कोशों के लिए तो यह अनिवार्य है। पिछले सदृश म शूँ सकलन अध्याय इस सम्बद्ध म विस्तार के साथ विचार किया गया है।

बतनी

“—सरलता के बाद उहे कोण म देने के लिए उनकी बतनी (spelling) निश्चित कर लेना आवश्यक है। इस हिटि से सरल अधिक मावश्यक चीज़ है एवं रूपता अनेक रूपता होने पर होता यह है कि कभी कभी “—” होश म रहता है कि तु मिलता नहीं। इस निपय म आवश्यक निणयो का उल्लेख भूमिका म अवश्य किया जाना चाहिए ताकि देखने वाले सहायता ले सकें। साथ ही यदि किसी शूँ की एक से अधिक बतनियाँ प्रचलित हो तो (जस लिए लिये) अधिक प्रचलित रूप के साथ अथ देना चाहिए तथा द्रुतरे को यथास्थान देकर अथ के लिए प्रयम के सदभ का सवेत दे देना चाहिए।

“—इकम

कोण म शूँ विशेष रूप से होने हैं ताकि देखने वाला उह सरलता स पा ल। सरार के कोशों म अनेक प्रकार के “—” कम प्रचलित रहते हैं, जिनम से कुछ प्रमुख ये हैं —

आज की अधिकास भाषाओं क अधिकास कोणों म शूँ विग्रामण स रखे जाते हैं। पहले शब्द वेवल प्रयम वरए क आधार पर रखे जाते थ। अथवत् क से गुरु होने वाले सारे शूँ एक साथ। इसका आशय यह है कि यदि किसी भाषा म क' से प्रारम्भ होने वाले ५००० “—” हैं तो वे ए जगह बिना किसी अम वे रखे जाते थे और खोजने वाले को सार शूँों क देखकर अपशित शूँ खोजना पड़ता था। वाल म “—” के द्रुमरे वरए वा भी विचार होने लगा और अत म सारे बलों का। हिंदी म विग्रामण बहुत निश्चित नहीं है। उदाहरण के लिए क—क र—र—व—ग—ग ज—ज फ—फ ड—ड—ड थ—थ—था—था प्राकि म विम आग और विसे पीछे रखें यह सरलता रूप स स्वीकृत नहीं है। घनुस्त्वार और चांद्रविल के सम्बद्ध म भी निणय प्रावश्यक है। इसी प्रकार ज' को जन्म मानकर रखें या यें (य) मानकर या ज्ये मानकर। इस तरट की समन्याप्रो के सम्बद्ध म अपनाई गई नीति का उल्लेख भूमिका म होना चाहिए।

अक्षर संख्या

इसके आधार पर भी शब्दों को रखा जाता है। भारत में इस प्रकार के एकाक्षरी-कोश मिलते हैं। अक्षर-संख्या पर आधारित कोशों में एक अक्षर (syllable) वाले शब्द पहले, फिर दो वाले, फिर तीन वाले, और आगे भी इसी प्रकार के रखे जाते हैं।

सुर :

सुर-प्रधान भाषाओं (Tone languages) में वर्णानुक्रम या अक्षर-संख्या के अतिरिक्त सुर के आधार पर भी शब्दों को रखते हैं, क्योंकि वहाँ एक ही शब्द कई सुरों में भी प्रयुक्त होता है और इस प्रकार कई अर्थ देता है।

विचार .

पर्याय कोशों (थेसारस) में शब्दों को भावों या विचारों के आधार पर रखा जाता है। जैसे जीवों के नामों के शब्द एक स्थान पर। ऐसे ही धर्म, अंग, खाद्य-पदार्थ, कला, विज्ञान आदि के अलग-अलग। प्रसिद्ध सस्कृत कोश अमर कोश के काड इसी आधार पर है।

व्युत्पत्ति

कभी-कभी शब्द व्युत्पत्ति के आधार पर भी रखे जाते हैं। अरवी में इस प्रकार के कोश प्राय मिलते हैं, जिनमें वर्णानुक्रम से 'मादा' (धातु root) देते हैं और हर मादे के साथ उससे बनने वाले शब्द। धातु पर आधारित सभी भाषाओं के इस प्रकार के कोश बनाए जा सकते हैं।

व्याकरण .

शब्द-कोश में प्रविष्टि के साथ व्याकरण की हड्डि से टिप्पणी भी आवश्यक है। यदि एक शब्द एक से अधिक व्याकरणिक रूपों में प्रयुक्त ('गया', सज्जा और क्रिया, 'वडा' सज्जा और विशेषण) होता हो तो व्याकरण का उल्लेख करके उसके साथ सम्बद्ध अर्थ देने चाहिए। व्याकरण के साथ-साथ उससे बनने वाले अनियमित रूप भी अवश्य देने चाहिए (जैसे जाना में 'गया' या करना में 'किया')।

अर्थ

वर्णनात्मक कोश में अर्थं प्रचलन के आधार पर और ऐतिहासिक में इतिहास के आधार पर दिया जाता है। इसे पीछे समझाया जा चुका है। अर्थं दो प्रकार के होते हैं। एक में केवल समानार्थी शब्द होते हैं (जैसे गज का अर्थ हाथी) दूसरे में परिभाषा देते हैं या समझाते हैं। (जैसे हाथी एक

जानवर है जो) दोनो प्रकारों का उचित प्रयोग होना चाहिए। यास्ता जहाँ प्रभक्षित हो वही दी जानी चाहिए। एकभाषीय कोश म व्याख्या प्रदिव भरपेक्षित है, किन्तु द्विभाषीय कोश म समानार्थी 'शब्द' देना ही पर्याप्त है। जस भ्रष्टजो हिन्दी कोश म (elephant) की हिन्दी म व्याख्या निरर्थक है। वहाँ कवल हाथो' शब्द द देना पर्याप्त है। हरा यदि 'गढ़ हिन्दीभाषी के लिए नकीर हो तब व्याख्या भरपेक्षित होगी।

उद्धरण

अर्थ के स्पष्टीकरण या उदाहरण के लिए भव के साथ उसके प्रयोग भी दिय जाते हैं। ऐसे उद्धरण प्रामाणिक होने चाहिए। यदि कई दिये जाएं तो उन्हें कालक्रमानुसार रखना अच्छा होता है।

चित्र

बभी-बभी अथ पर्याय या 'यास्ता स ही स्पष्ट नहा हान। ऐसी स्थिति में बस्तु का विश्वावश्यक ही जाता है। प्रमुखत ऐसी बीजा का जिनसे कोश का प्रयोगता अपरिचित हो। उदाहरणाथ हाथी का विश्वावश्यक कोश में भरपेक्षित नहीं होगा, किन्तु एस दा के कोश म जहाँ हाथी रही होना यह बहुत आवश्यक है। भारतीय कोश म कगाह का विश्वावश्यक हो गता है।

उच्चारण

कोश में उच्चारण की आवश्यक है। क्योंकि मात्र सामान्य वर्तनी (spelling) से वह स्पष्ट नहीं होता। अप्रजी फैच भादि कोश म इसी कारण उच्चारण दिया रहता है। इन भाषाओं के तो उच्चारण-कोश भी प्रकाशित हो चुके हैं जिनका काम कवल उच्चारण वर्तना है। हिन्दी कोश म उच्चारण नहीं रहता। नागरी लिखि के समयको का बहना है कि जमा हमारा उच्चारण है बसा हा नागरी म लिखते हैं भलग उच्चारण की हिन्दी म आवश्यकता नहीं। किन्तु ऐसा मानना अवैज्ञानिक है। हिन्दी में सभी शब्दों का उच्चारण बड़ी नहीं है जो लिखा जाता है। उदाहरणाथ 'झूँघि' का उच्चारण तिनि 'द्विवेनों का दुवेनी साहित्यिक दा माहितिर उपयास का उपयास' राम का राम् तथा 'नगमा का लग्मण' है हिन्दी म इन प्रकार क हजारा शब्द हैं जिनका उच्चारण वर्तनी व प्रतुल्य नहीं है। ऐसे सारे शब्दों का उच्चारण कोश म लिया जाना चाहिए। जिनका विश्वावश्यक का पड़ात का अनुशव है वे जानते हैं कि दोनों म एस म हान से वितनी कठिनाई हाता है। इसी प्रकार उच्चारण के साथ-साथ वसापात्र (stress) का भी हिन्दा कानों म मनेन अपेक्षित है।

व्युत्पत्ति :

यह भी कोश का एक महत्वपूर्ण अग है। अच्छे शब्दकोश में इसका होना आवश्यक है। व्युत्पत्ति का कभी तो सीधे सकेत कर देते हैं और कभी तुलनात्मक दृष्टि से सम्बद्ध या असम्बद्ध सभी भाषाओं के प्राप्त रूपों को देते हैं। आगे इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। ●

अध्याय ५

व्युत्पत्ति-विज्ञान

व्युत्पत्ति विज्ञान भाषा विज्ञान की एक शाखा है जिसमें गणना के इतिहास का अध्ययन किया जाता है। इतिहास में उस गण का अध्ययन तो थाता ही है साथ ही उसको बनाने वाले भाषिक घटकों (जसे प्रहृति प्रत्यय पार्श्व) भी भी विज्ञान का अध्ययन थाता है। इस तरह गण की रचना उसका उद्दगम या उद्भव और उसका विकास तीनों इसके अन्तर्गत थाते हैं। यह अध्ययन के चलने हैं। हिन्दी में व्युत्पत्ति के अतिरिक्त निरूपण या निवचन शास्त्र गण भी

निरक्षण गण सहृदय व्यावरण के प्रयोगारनिति + पक्ष + का संबन्ध है। यो तो सहृदय साहित्य में बाह्यल उग्निपृथक् तथा महामारुत पार्श्व में इस गण का प्रयोग उच्चतरि, परिभ्यस्त तथा परिभावित पार्श्व यन्त्र प्रयोगों में हुआ है किन्तु उग्ना मूल प्रय यन्त्र यन्त्र एवं उत्तर या अन्य यन्त्र यन्त्र करा हुआ हुआ है तथा उग्ना मूल्य प्रयोग गण की व्युत्पत्तिमूलक व्यावरण के तिरहुता है। इस प्रय में यह गण धाराय उग्निपृथक् (५ ३ ३) तथा महामारुत (१ २६६) पार्श्व कई प्रयोगों में विद्यता है। इसी प्रय के प्रयारण पर विज्ञान का नाम गण कई व्याख्यात व्यक्तियों ने दिया है। इसका व्युत्पत्तिमूलक व्यावरण के तिरहुता प्रय नियंत्रण प्रय एवं यन्त्र का विवरण ही उपलब्ध है।

निवचन गण निरूपण एवं गण में विन्दि ही तिरहुता विवरण तो ही भावशास्त्र गण भी है एवं ही एवं गण में प्रयोग यन्त्रों प्रयोग मात्र है एवं ही निवचन एवं गण मात्र है। परंतु निवचन एवं प्रय निरूपण का विकास भी है और एवं भी है तिरहुता विवरण विन्दि ही एवं ही इसका विवरण नियंत्रण + एवं + निरूपण में हुई है तथा गण

'व्युत्पत्ति' शब्द 'पद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'गति करना'। इसमें वि+उत् उपसर्ग तथा कितन् (भाववाचक अर्थ में) प्रत्यय है। 'व्युत्पत्ति' शब्द का भी 'निरुक्त' की भाँति ही एकाधिक अर्थों में प्रयोग मिलता है, किन्तु भाषागास्त्र के प्रसग में उसका अर्थ व्याकरणिक विश्लेषण है अर्थात् इसमें शब्द को विश्लेषित करके धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि का निर्देश किया जाता रहा है।

इस प्रकार निरुक्त में शब्द विशेष की धातु आदि का निर्देश करके अर्थ को स्पष्ट करने पर वल होता है तो व्युत्पत्ति में केवल धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि व्याकरणिक इकाइयों का निर्देश करने पर। यो आज व्युत्पत्ति में, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, शब्द का एक प्रकार से सर्वांगीण अध्ययन आता है।

हर नई चीज का विकास ग्रावश्यकतावश ही होता है। हमारे यहाँ प्राचीन काल में बोलचाल की भाषा जैसे-जैसे वैदिक भाषा से दूर हटती गई वैदिक भाषा को समझना और उसका ठीक उच्चारण या पाठ करना लोगों के लिए कठिन होता गया। किन्तु वैदिक उच्चारों का अध्ययन-अध्यापन तत्कालीन पडित वर्ग के लिए एक प्रकार से अनिवार्यत आवश्यक था, परिणामत इस कठिनाई को दूर करने के लिए दो शास्त्रों का विकास हुआ। अर्थ समझने के लिए निरुक्त या निर्वचन शास्त्र तथा ठीक उच्चारण के लिए शिक्षा शास्त्र।

यो शब्दों के निर्वचन करने के प्राचीनतम उदाहरण ऋग्वेद में मिलते हैं, जिससे यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि कदाचित् शब्दों की निरुक्त देने की मौखिक परम्परा निरुक्त से काफी पुरानी थी। आज भी कभी-कभी सामान्य लोग इस प्रकार के अनुमान लगाते पाये जाते हैं।

निर्वचन या निरुक्त का प्राचीनतम रूप अनुमानाश्रित अधिक रहा होगा। धीरे-धीरे समय के साथ उसमें वैज्ञानिकता आती गई होगी। यास्क के निरुक्त तक आते-आते इसमें काफी कुछ शास्त्रीयता आ गई थी, किन्तु फिर भी उसमें अनुमान का अग्न विलकुल न रहा हो, ऐसी बात नहीं। व्याकरण शास्त्र कदाचित् निरुक्त या निर्वचन का ही विकसित रूप है। इसी कारण व्याकरण के आधार पर शब्द-विश्लेषण के उदाहरण बहुत पुराने नहीं मिलते, जबकि निरुक्त के उदाहरण बहुत पुराने भी मिल जाते हैं। यह भी कहना कदाचित् अन्यथा न हो कि अतिम निरुक्तकार यास्क के बाद ही सच्चे अर्थों में व्याकरण की परम्परा चली। वह काल सधिकाल है। उसके पूर्व निरुक्तकार ही प्रायः भाषा का विश्लेषण करते थे। उसके बाद व्याकरण ने इसका स्थान ले लिया।

यो यास्त्र भी व्याकरण के महत्व से अपरिचित नहीं थे, इसीलिए निश्चन्द्रा वे लिए व्याकरण का जान उठाने सावधयक माना है।

अप्रेजी म व्युत्पत्ति का या तो डेरिवेशन (derivation) भी वहने हैं, जितु इसने निए मुख्य गद्द एटिमोलॉजी (etymology) चतता है। अप्रेजी म यह शब्द प्राचीनी का एवं etymologic से आया है और वहाँ यह शब्द लटिन etymologia का विवित रूप है। लटिन का भी यह अपना गद्द नहीं है; वहाँ प्रीव से आया है। प्राच एतिमॉलोजिया' के मूल म दो शब्द हैं 'एतिमास' (etymos) और लॉगोस (logos)। पहल 'गद्द' का अर्थ यथाय, मञ्चवा' या 'ठीक' है और दूसरे का 'शब्द' या लेखा जोखा। इस तरह इसका मूल अर्थ है 'यथाय या सच्चा गद्द' या 'शब्द' के सच्च अर्थ का लेखा जोखा'। प्रिमिड स्टोइक दार्शनिक प्रिसिपास (Chrysippus) ने जिनका दाल सीसरी सभी दृष्टियों हैं, एक प्रथम एतिमॉलोजिका लिखा था जिसमें गद्द के दीक अर्थ की ध्यानदीन भी। वहना न होगा कि 'निश्चन्द्र' भी मूलत इसी का समवक्ष था, और दोनों देशों में इन दानों का विकास कदाचित एक ही प्रकार की भाव अर्थवता के कारण हुआ जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। प्राचीन यूनान म 'एतिमॉलोजी' भाषाविज्ञान की 'गाल्वा न होकर दान' की एक शास्त्री धी, जिसमें शाद द्वारा व्यक्त भाव की यथाय जानकारी के लिए उसके मूल भाव का अध्ययन किया जाता था। वस्तुत यूनानी और रामन लोगों के लिए गद्द शास्त्र किसी 'गद्द' का मूल अर्थ ज्ञान करने का साधन माना था। धारा की तरह शब्द की उत्पत्ति और उसका इतिहास जानना इसका साध्य नहीं था। उत्पत्ति और इतिहास पर विचार होना भी था तो साध्य रूप म नहीं, अपितु शब्द का मूल या वास्तविक अर्थ जानने के लिए साधन रूप म। इस तरह मुख्यत अर्थ से सम्बद्धि धृत होने के बारण यह विज्ञान उन लोगों के लिए दशन की गाल्वा अर्थ विज्ञान के भन्तवत आता था।

व्युत्पत्ति विज्ञान मूलत एतिहासिक भाषा विज्ञान क अंतर्गत आता है किन्तु व्युत्पत्तियों के अध्ययन में बण्णनात्मक एवं तुलनात्मक भाषा विज्ञान की भी ज़रूरत पड़ता है। बण्णनात्मक की इसलिए कि शाद विन विन तत्त्वों से बना है तथा उसका इतिहास के विभिन्न कालों म व्या भर्थ था। आदि बातें भी व्युत्पत्ति के अध्ययन के लिए अपेक्षित हैं। तुलनात्मक की इसलिए कि भाषा विज्ञेय के शब्द विशेष की व्युत्पत्ति म, विभिन्न दालों म उस गद्द के भार्यिक व्यामात्मक परि वर्तन की जानकारी के लिए उस परिवार की भाष्य भाषाओंमा से तुलना करनी पड़ती है। वस्तुत विसी भी प्रकार के परिवर्तन वा पता तुलना स ही लगता है। इसने अतिरिक्त यदि गद्द विसी और भाषा स गृहीत है तो मूल से विस-

व्युत्पत्ति विज्ञान

हृष्टि से कितना परिवर्तित है इसके लिए उस भाषा से भी तुलना करनी पड़ती है।

व्युत्पत्तियों के अध्ययन में सबसे अधिक सहायता ध्वनि-विज्ञान से लेनी पड़ती है। शब्दों में ध्वनि की हृष्टि से प्रायः बहुत अधिक परिवर्तन हो जाया करते हैं। 'उपाध्याय' और 'ओभा' में ऊपर से देखने में कोई खास सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। ध्वनि विज्ञान के सहारे ही 'उपाध्याय' में संभावित परिवर्तनों का पता लगाते हैं और तब यह स्पष्ट होता है कि 'ओभा' उपाध्याय का ही परिवर्तित रूप है। कृष्ण-कान्ह, ग्रद्य-आज, नृत्य-नाच को भी ध्वनि विज्ञान की सम्यक् जानकारी से ही जोड़ा जा सकता है। ध्वनि विज्ञान अपने तीनों (वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक) रूपों में व्युत्पत्ति देने में सहायता करता है।

व्युत्पत्ति विज्ञान में सहायता पहुँचाने वाली भाषा विज्ञान की दूसरी शाखा अर्थ विज्ञान है। शब्द के दो पक्ष होते हैं। एक वाहरी, जिसे उसका शरीर कह सकते हैं। ध्वनियों के रूप में यही हमारे समक्ष रहता है। शब्द का दूसरा पक्ष भीतरी है, जिसे उसकी आत्मा कह सकते हैं। परिवर्तित शब्द को वाहर और भीतर दोनों ओर से देखकर ही किसी पूर्ववर्ती शब्द से जोड़ा जा सकता है। अग्रेजी का शब्द है 'ट्रेजरी' और हिन्दी में उसका विकास है 'तिजोरी'। 'ट्रेजरी' से 'तिजोरी' का सम्बन्ध केवल ध्वनि के ग्रावार पर नहीं जोड़ा जा सकता। अर्थ विज्ञान ही यह बतलाएगा कि आर्थिक हृष्टि से भी इनके सबद्ध होने की सभावना है। सस्कृत 'पशु' और अग्रेजी 'फी', संस्कृत 'सिंघु' और अग्रेजी इडिया), सस्कृत 'गृह' और हिन्दी 'घर', सस्कृत 'श्रामलक' और हिन्दी 'आँवला', सस्कृत 'वाटिका' भोजपुरी 'वारी', सस्कृत 'द्वार' पजावी 'नारी' अर्थ-विज्ञान के ग्रावार पर ही जोड़े जा सकते हैं। अर्थ विज्ञान के भी तीनों रूप (वर्णन, तुलना, इतिहास) हमारी सहायता करते हैं। अर्थ-निर्वारण में वर्णनात्मक तथा अर्थ-परिवर्तन की ठीक जानकारी में तुलनात्मक और वर्णनात्मक सहायक होते हैं।

इस प्रकार व्युत्पत्तिविज्ञान में सहायक के रूप में ध्वनि विज्ञान और अर्थ विज्ञान दोनों ही एक दूसरे के पूरक है।

रूप विज्ञान से भी व्युत्पत्ति विज्ञान को कुछ न कुछ सहायता लेनी पड़ती है। शब्द यदि कोई पद या रूप है तो उसके विश्लेषण एवं उनके अर्थ-निर्वारण में यह हमारी मदद करता है। किसी भाषा का सामान्य व्याकरण हमें शब्द विशेष के बारे में अपेक्षित सारी जानकारी नहीं दे पाता या देता भी है तो गलत देता है। इसके लिए भी व्युत्पत्ति विज्ञान को रूप विज्ञान की शरण लेनी पड़ती है। विशेषत, प्राचीन भाषाओं के लिए तो यह और भी सत्य है।

भाषण विज्ञान भी व्यु पनि विज्ञान की सहायता करता है। कभी कभी कोण से किसी शब्द के अथ तथा व्याकरण में उमके व्याप्ररणिक अथ का टीक पना नहीं चलता। इसके लिए हम उसका वाक्या भ प्रयोग देखता पड़ता है, जिसम वाक्य विज्ञान वे किना हमारा काम नहीं चल सकता। मुख्यत प्राचीन साहित्य के शब्दों के अध्ययन म तो यह अनिवार्य हो जाता है। बद्रि ससृत, परस्ता, ग्रीक, सैटिन गव्डो के व्यु पत्तिक अध्ययन म सचमुच ही इस विज्ञान ने बढ़ी सहायता की है।

भाषा विज्ञान की गाला "शब्द" विज्ञान भी "व्युत्पत्ति विज्ञान म पर्याप्त सम्बन्धित है। एक तो व्युत्पत्ति विज्ञान अपने आप म शब्द विज्ञान की एक गाला जसी है क्योंकि "शब्द" विज्ञान गाला का अध्ययन है, और व्युत्पत्ति विज्ञान "शब्दों" (एक पर्याप्ति) का एक विशेष हृष्टि से अध्ययन। इसमें अतिरिक्त विभी भाषा का "शब्द" मूल कम और बढ़ा बदलता है, जोई भाषा बहाँ-बहाँ म और बढ़ा शब्द नहीं है य बातें शब्द विज्ञान म महत्वपूण स्थान रखती हैं। वहना न होगा कि व्युत्पत्ति विज्ञान के लिए भी इन बातों की जानकारी अपेक्षित है। भग्न, सबई दाम जसे गव्ड भारतीय भाषाओं म यूनान स थाये हैं। भाषा विज्ञानों की सामग्री से हिन्दी 'दाम' का हम ससृत द्रम्य या प्राचीन द्रम्य स जोड गरा है रिन्दु शब्द विज्ञान ही यह बतलाएगा कि यह शब्द मूलत ससृत का नहा है और पूनानी 'द्राम' स भाषा है। बस्तुत विज्ञानी मूल के सारे शब्दों की व्युत्पत्ति म हम शब्द विज्ञान स बढ़ी सहायता मिलता है।

भाषा विज्ञान की उपयुक्त गाला तो व्युत्पत्ति विज्ञान का गहायता करनी ही है, साथ ही इही के माध्यम से या सामग्री या प्रमाण सबूतन या विवरण के लिए स्वतंत्र पुस्तक शिल्प साहित्य, घम शूलान फलोविज्ञान सानख विज्ञान आदि म भी इस पर्याप्ति महायना मिलती है।

व्युत्पत्ति के द्वेष म बाय करने के लिए निम्नाद्वारा बनें स्थान म रखन शक्ति है—

(३) त्रिम व्यवित का उम दाव म बाय करना हा। उम भाषा विज्ञान का गम्भीर भान होता चाहिए। दिनायन पनि विज्ञान म उमका गति बहुत गम्भीर होती चाहिए।

(४) गव्ड या शब्दों म गव्ड भाषाओं गारिय तथा महानि का गम्भीर भान हो तो उमका बाय घवित गता तथा दिनायन बाय हा बनेगा।

(५) गव्ड मुम्लहों की उमक दाव घवित में घवित पूछ गूचा होता चाहिए ताकि उम तो उम स तो उम बाय हा चुका है उमक बहुत घवित हो।

व्युत्पत्ति विज्ञान

सके। ऐसा न करने से कभी-कभी तो ऐसे व्यर्थ के कामों में काफी समय लग जाता है जो दूसरे कर चुके हैं, और जिसे आवार मानकर काम आगे बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हुए सारे कार्यों को पढ़ लेने से व्युत्पत्ति शोध-कर्ता वे बहुत सी गलतियाँ करने से बच जाता है जो पूर्ववर्ती लोग कर चुके हैं। इस प्रकार पूर्ववर्ती कार्य जान लेने से उसका श्रम ठीक प्रकार से व्युत्पत्ति-कार्य को आगे बढ़ाने में लगता है, व्यर्थ के कामों में या पिछले घण्टे में नहीं।

(घ) जिस भाषा या भाषा-परिवार पर इस दृष्टि से कार्य करना हो उसके बारे में तथा उसकी भाषाओं एवं वोलियों के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी उपयोगी सिद्ध होती है।

(ड) सबसे पहले जिस (या जिन) भाषा (ओ) के शब्दों पर कार्य करना हो उनकी ध्वनियों का तुलनात्मक चार्ट बना लेना चाहिए। इस चार्ट के लिए अधिक-से-अधिक तुलनात्मक सामग्री एकत्र करनी चाहिए। इस सामग्री से ऐसे शब्दों को साथ-साथ रखना चाहिए जिनके किसी एक मूल शब्द से निकलने की सभावना हो। उदाहरणार्थ—

संस्कृत	पालि	प्राकृत	जिप्सी
घृत	घत	घिअ	गिर
सिंधी	लहँदा	पजावी	वगाली
गिहु	घिऊ	क्यो	घि
उडिया	भोजपुरी	अवधी	हिन्दी
घिअ	घीव	घीउ	घी

यहाँ एक शब्द के विभिन्न भाषाओं में प्राप्त रूप एकत्र किये गये हैं। इनके आवार पर यह जाना जा सकता है कि संस्कृत की 'घ' ध्वनि जिप्सी में 'ग' सिंधी में 'ग' तथा पजावी में 'क' जैसी है और शेष में 'घ' ही है। यहाँ तो एक शब्द से निष्कर्ष निकाला गया। ४०-४०, ५०-५० इसी प्रकार के शब्द लेकर ध्वनि की आदि, मध्य, अत, वलाधातयुक्त एवं वलाधातशून्य, अक्षर में स्थिति देखकर उसके विकास की रूपरेखा निर्धारित करते हैं। इसी प्रकार सारे स्वरों और सारे व्यजनों के बारे में पता लगाते हैं। इससे इन सभी भाषाओं और वोलियों के व्यनि-समूह का तुलनात्मक ढंग से आपस में, तथा ऐतिहासिक दृष्टि से संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के साथ सम्बन्ध का पता चल जाता है। इस ऐतिहासिक और तुलनात्मक चार्ट के सहारे सरलता से पता चल जाता है।

कि इसी मापा की सोई छवि पहले भया रही होगी ।

सस्तुत	हिंदी
यत	बन
विवाह	व्याह
दधि	दही
वधिर	बहरा

उदाहरणाथ मान नीजिए सस्तुत और हिंदी म सम्बन्ध स्थापन के लिए भाषने कुछ शब्दों की सूची बनाइ । उपयुक्त ग्रन्ते स पना चनना है कि ध्यान स्थान का गस्तुत व हिंदी म 'व' हो जाता है तथा बीच के स्थान का व 'ह' हो जाता है भर्याति सस्तुत व > हिंदी व, सस्तुत घ > हिंदी ह । अब मान नीजिए भाषको हिंदी 'बहू' की व्युत्पत्ति खोजनी है । उपयुक्त नियम को उलट दें तो वह यहते हैं कि हिंदी 'व' सस्तुत म व रहा होगा तथा ह 'घ', अत इसका पुराना हप वधू होगा ।

वस्तुत व्युत्पत्ति खोजना इतना आसान नहीं है । यहा क्वल समझाने के लिए यह एक बहुत सतही उदाहरण दिया गया । हमन देखा कि उपयुक्त चाट तंयार कर लेने पर ठीक व्युत्पत्ति देना अपेक्षाकृत सरल हो जाता है ।

(च) छविं का चाट बनात समय दो बातों का ध्यान रखना बड़ा जहरी है । ये हीं भाषा की अनुसेक्षण पद्धति और बतनी । यह ध्यान मे रखना चाहिए कि हम छविंयों का सम्बन्धन करते हैं, लिपि चिह्न का नहीं । वभी कभी एक ही अधर (letter) कई भाषाओं म कई छविंयों का काम करता है । ऐसी स्थिति म उस एक छवि का प्रतीक न मान लेना चाहिए । उदाहरण के लिए प हिंदी म 'प' है किन्तु सस्तुत म प था या यह सस्तुत म 'ह' थी वित्तु गुजराती म 'ન' है । १ अश्रेष्टी म 'ट' जसी छवि है तो फार्मीसी मे त जसी । आशय यह है कि हमारा ध्यान छविंयों पर होना चाहिए थार इसके लिए सतक रहना चाहिए । ऐसा न हो कि लिपिचिह्न की अनेक रूपता हमें भटका दे । वभी-कभी एक भाषा म भी यह गढ़बड़ी मिलती है । अप्रखी मे u अ भी है, उ भी ch व भी है और 'क' भी ।

यही बात बतनी के बारे म भी है । बतना और उच्चारण म भत्तर हो तो बही सावधानी से भए तिक्कप निवालने चाहिए । ऐसी बतनी गल के पुराने हण या पुराने उच्चारण को (psychology talk daughter) तो प्रबट बतती है कि तु बतमान उच्चारण (साइकॉलजि, टाक डाट्रम) भिन्न होता है ।

(छ) व्युत्पत्ति में शब्द कभी-कभी तोड़कर अर्थात् उसके उपसर्ग मूल शब्द एवं प्रत्यय को अलग-अलग करके (अ+कुश+ल+ता) देखना भी उपयोगी होता है।

(ज) बलाधात सुर लहर आदि का घटनियो पर कभी-कभी ऐसा प्रभाव पड़ता है कि परिवर्तन के सामान्य नियम से उन्हें अलग कर देता है। अतः इस पक्ष पर भी ध्यान आवश्यक है।

(झ) ऊपर घटनि चार्ट बनाने की बात कही गई है। कभी-कभी साहश्य के कारण असाधारण परिवर्तन भी हो जाते हैं। स्कृत महा > प्राकृत भज्ञं से हिन्दी मध्य बनना चाहिए था किन्तु बन गया मुझ। इससे यह निष्कर्ष निकालना भ्रामक होगा कि संस्कृत अ > प्राकृत अ > हिन्दी उ है। वस्तुतः यह तुम्ह > तुज्ञ > तुझ का प्रभाव है। वस्तुत घटनियो का परिवर्तन प्राय बहुत नियमित होता है। इस नियम में सबसे बड़ी गड़वड़ी साहश्य के कारण पड़ती है अतः इस पर भी हमारा ध्यान होना चाहिए।

(ञ) इसी प्रकार किसी भाषा में गृहीत परवर्ती शब्द भी घटनि नियम के अनुसार नहीं चलता। ऐसी स्थिति में यदि उसके बाहर से आने का ध्यान नहीं रखा गया तो निष्कर्ष गलत हो जाएगा। उदाहरण के लिए स्कृत कृष्ण का हिन्दी में नामो में 'किशुन' रूप भी मिलता है। इसके आवार पर यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि स्कृत प हिन्दी में श हो जाता है। वर्ष > वरस, पञ्च > साठ, पड़ > साँड़ में प > स है। वस्तुत 'किशुन' तद्भव शब्द नहीं है। स्कृत से हिन्दी काल में 'कृष्ण' शब्द मूल रूप में आया और उसका यह विकास है।

(ट) कुछ लोग व्युत्पत्ति में 'अनुमान' लगाना अवैज्ञानिक मानते हैं। मैं इस मत से असहमत हूँ। विना अनुमान या अदाज के तो हम आगे बढ़ ही नहीं सकते। हाँ यह नहीं कि हम अपने अनुमान को ही सिद्ध करने के लिए कठिवद्ध हो जाये। हमें चाहिए कि अपने अनुमान को शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से देखें यदि वह उपर्युक्त नियमों के विलक्षण अनुकूल हो तो उसे मानें, अन्यथा छोड़ दे। अनुमान आगे बढ़ने का एक आवार होता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह सत्य ही हो। इस प्रकार अनुमान करने के बाद उसके प्रति तटस्थ होकर हमें ध्यानवीन करनी चाहिए।

(ठ) घन्यात्मक दृष्टि से व्युत्पत्ति ठीक मिल जाने पर उसके अर्थ पर भी विचार कर लेना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं कि अर्थ में अन्तर हो तो उसे गलत मान लें। अन्तर पर विचार कर लेना चाहिए और यह देखना चाहिए

वि प्रथ परिवर्तन के बारण पर प्राचीर सम्भव है या नहीं। उदाहरण के लिए गास्टन 'पांगु, भ्रंगेजी 'की' एवं है। पांगु भी कभी राय एवं के स्थान पर दिये जाने ये धत ऐसा प्रथ परिवर्तन समझ में भाला है। इन्हुं हिन्दी के 'आम' (भ्रंग) वो गास्टन प्राचीर समाज लेने पर हिन्दी 'आम' (सामाज) उपर नहीं जोड़ सकते। यह भलग शब्द है जो भरवी से प्राप्ता है।

इस तरह अनुमान रो प्रारंभित किर घरायात्मक व्यवस्था, एवं भ्रथ की हार्टि स पूणि परीक्षित व्युत्पत्ति ही गच्छी व्युत्पत्ति हो सकता है।

बुध शब्द ऐसे होते हैं जो विश्व का अनेक भाषाओं में पहुंच जाते हैं। उभर्वी व्युत्पत्ति पर विचार करने में यह भी दरमाना होता है वि के बहौ-बहा से अर्थात् विस रास्ते गए यह घटनि के अध्ययन के आधार पर होता है। उदाहरण के लिए सस्तृत का एक शब्द है शृगवेर जिसका अर्थ है प्रारक। यही सक्षाप में इसका इनिहास देखा जा सकता है। सस्तृत में एवं 'ग' है शृग (गीर), इसी में भाषार पर सोग जसा होने से इस जड (वर) को 'शृगवेर' बहा गया। बस्तुत शृग और वेर सस्तृत के अथवा शब्द नहीं हैं। यह द्वितीय परिवार के हैं और द्रनका भ्रथ प्रमदा 'सीग और जड है। अर्थात् एसी शृगवेर जड है जो सीग जैसी हो। यही सस्तृत में शृगवर पालि में चिणिवेर तथा प्राशृत में चिणिवेर हा गया। पालि प्राशृत से जाकर यह 'ग' मिहली में 'इगुरु, भ्रथईरानी में Sngypyō तथा श्रीक म Zingiberis बना। फिर एक तरफ भ्रथ ईरानी में (Sogrvēl) ग्रामेंडक होते यह Zanghebbil रूप में हिन्दू में पहुंचा तो दूसरी ओर ग्रामेंडक से भरवी में Zanjabil और तुर्की में Zence या रूप में। भरवी में स्याहिली (Tangawizi) आदि कई अफ्रीकी भाषाओं में यह गया। भरवी में ही जांजियन (Janjapili) बना। अब श्रीक से यह जटिल (Zingiber) में पहुंचा और वहाँ से यह एवं ओर तो इटलियन (Zenzero) स्पेनिश (Jengibre) पुतगानी (Gengivre) फैब्र (Gingembre) भ्रंगजा (Ginger) जमन (Ingwer) डच (Gember), आदि में गया और दूसरी ओर हायरियन (Gyomber) आदि में। इसी, वेस्त बलगरियन अल्बानियन रूमानियन उद्यगुर, किञ्जियन इस्लोवियन स्विडिश, किनिया आदि में भी विभिन्न रूपों में यही 'ग' है। यह है सस्तृत शृगवेर को विश्वविजयिनी यात्रा। सस्तृत 'शब्द' 'ग' भी इसी प्रकार सासार दी अनेकानेक भाषाओं में शकर शूगर साम्बर सभीन आदि रूपों में प्रयुक्त नी रहा है।

कभी कभी व्युत्पत्तियों में बहौ जटिल समस्याएँ भा जाती हैं। उदाहरण के लिए सस्तृत सपनी (इसका नामिक अर्थ है 'पनी महिन' अर्थात् 'और

व्युत्पत्ति विज्ञान

पत्ती वाला') से हिन्दी 'सौत' का विकास है। प (> व > व >) उ होकर 'स' के 'अ' से मिलकर 'ओ' हो जाता है और 'न' के लोप से 'त' शेष रह जाता है। किन्तु इसी से सम्बद्ध गद्द पजावी में है 'सौकन' या 'सौकण'। इसमें 'स', और, 'न' या 'ण' की कोई समस्या नहीं है, किन्तु 'क' कहाँ से आ गया। किसी भी तरह से इसका समाधान नहीं हो रहा था। एक शिक्षाग्रथ में यह सकेत मिला कि पुराने जमाने में कुछ प्रदेशों के लोग 'त्न' का ठीक उच्चारण नहीं कर पाते थे वे 'त्न' को 'त्कन' बोलते थे। इस सकेत के प्रकाश में अनुमान यह लगता है कि इस उच्चारण-दोष ने ही 'त्न' का 'त्कन' कर दिया फिर त् के लोप और क् न् के बीच 'अ' के आगम से 'सौकन' या 'सौकण' बन गया।

नीचे दो शब्दों ('तुम' और 'आप') की व्युत्पत्ति पर कुछ विस्तार से विचार किया जा रहा है।

तुम

तुम शब्द विभिन्न भाषाओं और बोलियों में विभिन्न रूपों (वाँगर तम, तम्ह, थम, कौरवी तुम, तम, ताजुज्वेकी तम; ब्रज तुम, कनौजी तुम, तुम्ह, बुन्देली तुम; निमाड़ी तुम; अवधी तुम, तुम्ह, बघेली तुम्ह; छत्तीसगढ़ी तुम; दक्खिनाई तुम, राजस्थानी तुम, तम, पहाड़ी तुम, तुमूँ, तिमि; जिस्सी तिमी; गुजराती तमे, तम; मराठी तुम, बंगाली-आसामी तुमि; उडिया तुम्ह आदि) में मिलता है। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में बहुत विवाद है। कामता प्रसाद गुरु स० त्वम् > प्रा० तुम्ह से इसे व्युत्पन्न मानते हैं। श्यामसुन्दर दास इसे स० त्वम् > प्रा० तुम से मानते हैं। पिशेल ने इस प्रसग में 'यूयम्' के स्थान पर संस्कृत में 'तुम्हे' की कल्पना की है। तेसितोरी, सुकुमार सेन, वीरेन्द्र वर्मा तथा उ० ना० तिवारी आदि सभी इसी से 'तुम' को विकसित मानते हैं।

मेरे विचार में तुम की व्युत्पत्ति में 'त' की समस्या इतनी सामान्य एवं सीमित नहीं है, जितनी उसे प्राय विद्वानों ने माना है। ऐसी स्थिति में इस प्रश्न को थोड़े विस्तार से देखना अपेक्षित है। वस्तुत 'तुम' के अपभ्रंश, प्राकृत तथा पालि में प्रयुक्त पूर्ववर्ती रूपों की प्राप्ति में कोई कठिताई नहीं है। इसका विकास पालि 'तुम्हे' प्राकृत, अपभ्रंश 'तुम्हे', परवर्ती अपभ्रंश या अवहट 'तुम्ह' से स्पष्ट है। वास्तविक कठिनाई है पालि के 'तुम्हे' के पूर्ववर्ती रूप की प्राप्ति में। वैदिक संस्कृत तथा संस्कृत में प्रथमा वहुवचन में रूप या 'यूयम्'। वस्तुत 'यूयम्' रूप भी कदाचित उत्तम पुरुष वहुवचन से प्रभावित वाद का रूप या। जैसा कि मूल 'युप्मद्' तथा वहुवचन के अन्य रूपों 'युप्मान्', 'युप्मामि.',—'युप्मम्यम्', 'युप्मत्' 'युप्माकम्' तथा 'युप्मानु' से स्पष्ट

बुद्ध सोगी ने 'हामन जामन' नाम का प्रयोग नी इस प्रकार वौ मुत्पत्तियों के लिए दिया है। इस शब्द वौ कहानी बड़ी चित्तचरण है। प्रद्रव्य सिफाहिया ने भारत म आन पर मुहरम म पहले पहल जब गिया मुसलमानों वौ हसन हुसन चिल्लाते मुना तो उनकी समझ म बुद्ध न आया। बाद म इनि साम्य वे बारण उठाने यह सोचा वि प लोग कांचित हामन जामन चिट्ठा रहे हैं। परिणामत उनके लिए हसन हुसन हामन जामन बन गया। इस प्रकार 'हामन जामन आमद' 'मुत्पत्ति वा अच्छा उदाहरण है। इस प्रणाम म मुझे अपने बचपन वौ एक धटना या आ रही है। एक बार एक अनपड़ दूर्जने ने भाष्ट्रप्रदेश का नाम मुनकर मुझ से पूछा वि क्या मन्द्या वया यहाँ इगादातर सोग 'आम' (=अधि) हैं जा उसका यह नाम पड़ा है। भोजपुरी म 'आम' का अथ अधा होता है। उस दूर्ज की समझ म आम तो आया नहीं। उसने समझा वि आधि कलाविन उसकी अपनी बोली का पाहर ही है और उसकी बाती म आहर का अथ अधा था भत उसन आधि प्रभेण को 'आ हर प्रदेश अर्थात् अधो का प्रदेश' समझ लिया। इस तरह उसा अपन ढग से 'आधि प्रभा' की व्युत्पत्ति कर डाली।

हिन्दी का एक मल्पप्रचलित शब्द है हाथीचक। यह एक पीथे का नाम है जो दवा का काम आता है। मूलन यह शब्द अरबी का है जो इतालवी भाषा म आकर Articicioceo तथा अंग्रेजी म Arti Choke हो गया। अपनों के माय भारत म आरो पर इसका प्रचार कदाचित बगला म सबप्रथम हुआ। वहाँ इसका नाम एक अपरिचित और अस्पष्ट शब्द था भत लोगों ने शार्टी को हाथी कर दिया तथा 'चोक' को चोग। 'हाथी और चोक बैगला म सामने हैं। इसी तरह बगाली म आमक व्युत्पत्ति के कारण यह शब्द हाथी चोग हो गया। हिन्दी म यही 'हाथी चक' है। भोजपुरी प्रदेश म इसे 'हाथीचिघार अर्थात् 'हाथी की चिघाड़' कहते हैं। चिघाड नायद चोक को चोवरना (भोजपुरी म चिघाडना को 'चोवरना भी कहते हैं) समझ लने मे बारग हुआ।

इस प्रकार एक अच्छा उदाहरण 'हीराकुण्ड' है। उहीमा का प्रमिद वौप है हीराकुण्ड। उठिया भाषा म दूर्ज का अथ है 'तरी द्वारा घिर स्थान'। यह स्थान नरी द्वारा घिरा है, तथा यहाँ कभी हीरो की राज हुई थी भत इसका नाम हीराकुण्ड पड़ा। मह शब्द जब हिन्दा की पत्र पत्रिकाओं म भाषा ही लोगों (पनपड लोग नहीं पत्रे निसे सम्पादका एव नामरो) न सोचा वि 'हारा' तो टीक है जिन्ह यह दूर्ज क्या है? राम्भव है यह 'कुण्ड' हो। अथ यह सोचना

या, इसका नाम हिन्दी पन्थ-पत्रिकाओं में 'हीराकुण्ड' हो गया। अब भी हिन्दी में इसे हीराकुण्ड ही कहते और लिखते हैं। इस प्रकार गव्व भ्रामक व्युत्पत्ति के गिकार सर्वदा अनपढ़ों के हाथ ही नहीं, कभी-कभी पढ़े-लिखे लोगों के हाथ भी हो जाते हैं।

पुलिस और सेना के सिपाही अब तो काफी पढ़े-लिखे होते हैं किन्तु पहले यह स्थिति नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि अनेक अंग्रेजी शब्द उनकी बोलचाल में भ्रामक व्युत्पत्ति के चक्कर में पड़कर कुछ से कुछ हो गए। खजाने पर पहरा देने वाले सिपाही के पास यदि आप १६५० के पूर्व रात में जाते तो वह जोर से कहता 'हुकुम सदर'। वस्तुत उसको सिखाया गया था 'हू कम्स देयर' (कौन आ रहा है), किन्तु अंग्रेजी न जानने के कारण उसके लिए 'हू कम्स देयर' निर्यक था अत उसने इसे 'हुकुम सदर' समझा और यही कहने लगा। 'हुकुम सदर' अर्थात् 'सदर का हुकुम है' कि न आइए। इसी प्रकार सेना में 'स्टैन्ड एट ईंज' को 'ठन्डा टी' कहते रहे हैं। 'ठन्डा टी' अर्थात् 'ठंडी चाय' की तरह अर्थात् शान्त।

वनारस के रिक्षे वाले तथा मजदूर आदि हिन्दू यूनिवर्सिटी के 'आर्ट कॉलेज' को 'आठ कॉलिज' कहते रहे हैं। 'आर्ट' उनके लिए अपरिचित और अस्पष्ट था अत उसे 'आठ' कर लिया। इसी आवार पर 'आर्ट कॉलिज' से आगे स्थित 'साइन्स कॉलिज' उनकी भाषा में 'नौ कॉलिज' (जो आठ के बाद आए) कहलाता है। एक बार मैंने एक रिक्षे वाले से वनारस स्टेशन पर कहा मुझे हिन्दू विश्वविद्यालय ने चलो। उसने तुरन्त पूछा कहाँ जायेगे वावूजी 'आठ कॉलिज' या 'नौ कॉलिज'। मैं उसके प्रश्न को बिलकुल न समझ सका। किर किमी स्वानीय व्यक्ति ने हमारे-उसके बीच दुभायिए का काम करके समस्या मुलझाई।

'आँनरेरी मैजिस्ट्रेट' का 'आँनरेरी' गव्व कुछ भोजपुरी लेव्रो में 'अन्हेरी' हो गया है। 'आँनरेरी मैजिस्ट्रेट' को लोग 'अन्हेरी के साहब' कहते हैं। यहाँ घनि और अर्थ दोनों साम्य, भ्रामक व्युत्पत्ति की पृष्ठभूमि में काम कर रहा है। 'अन्हेरी' आँनरेरी में घनि साम्य है ही, अर्थ साम्य यह है कि आँनरेरी मैजिस्ट्रेट वैतनिक तो होते नहीं अत उनके यहाँ रिवत का बोनवाला होता होता है और भोजपुरी में 'अन्हेरी' का अर्थ होता है 'अन्याय'।

कही कही आँनरेरी मैजिस्ट्रेट के 'आँनरेरी' गव्व को लोगों ने 'अनाडी' भी कर दिया है। यहाँ भी घनि तथा अर्थ दोनों नाम्य हैं। अर्थ साम्य इसलिए है कि आँनरेरी मैजिस्ट्रेट कायदे-कानून की नियमित गिक्षा न पाने के कारण

इन मामलों में कुछ भ्रष्टाचारी को छोड़कर, प्राय 'अनादी' से ही होने हैं।
रहीम ने लिखा है —

रहिमन याचकता गहे वड थोट है जात ।
नारायण हूँ को भयो बावन भाँगुर गात ॥

इसमें बावन भाँगुर गात' घ्यान देने योग्य है। हिंदी तथा उसकी बोलियां में बहुत ठिकने व्यक्ति को 'बौना' 'बावन' या 'बावण' आदि कहते हैं। उसे बावन आदि क्यों कहते हैं यह लोगों को स्पष्ट नहीं था। घर लोगों ने यह सोचा कि ५२ भागुल लम्बा होने के बारण यह 'बावन' या 'बौना' कहलाता है। रहीम जरे बिदान् भी इस भ्रामक व्युत्पत्ति के भ्रम से नहीं बच पाये। बस्तुन बावन या 'बौना' वा सम्बात ५२ में बिलकुल नहीं है। 'बावन' सहृदय वामन तथा बौना सहृदय 'वामनक' के तदभव रूप हैं।

ऐसी प्रवत्ति विश्व की सभी भाषायों में मिलती है। मद्रास प्रात में कभी एक बलकर आए थे जिसका नाम 'कालटपट (Collectipan)' था। ये कुछ मार्ग थे। वहुन जल्द ही वहाँ की जनता में इनका नाम 'कालापेटी' प्रसिद्ध हो गया। 'कालापेटी' तामिल भाषा का गल्ल है जिसका अर्थ है 'खहा' या 'कूर'। इस प्रकार इन्हि अर्थ दोनों में साम्य होने के बारण यह परिवर्तन हो गया।

फटक में इसी प्रवार वा एक 'मकट बाजार' है। इसमें 'मकट' 'मार्केट' है। उा बाजार का नाम पहले काई मार्केट था। 'मार्केट' 'पार' अस्पष्ट या घर उसे लोगों ने मिलती-जुलती इनि बाला उडिया शब्द मकट (=बदर, अनाचित वहाँ बदर भी रह ही) थाना दिया। बाजार वह ही ही, घर ही गया 'मकट बाजार'। जिसका अर्थ ऊपर से देखने में लगता है 'बदर बाजार' किन्तु वास्तविक अर्थ है 'बाजार-बाजार'।

अनेक भारतीय शास्त्र भी प्रदर्शों में जाकर भ्रामक व्युत्पत्ति के बदर में कुछ संकुच हो गये हैं। उदाहरणाय अद्येत्यी म एक शास्त्र है बॉबर (Bobbery) जिसका अर्थ होता है — 'शोरगुल बरती हुई डनार' (संस्कृत दिक्षातरो १११० प० ११५)। यह मुनकर कितना भाष्यकर होता है कि मूरत यह हिन्दी गल्ल 'बाप रे है। इसमें भ्रामक व्युत्पत्ति ठीक उस रूप में ता नहीं काम कर रही है किन्तु बापरे अद्येत्यी 'पार' एक रूप के अमूर्ख है। अत अद्येत्यी के 'बाप र' सुन उसे न समझने के कारण 'बॉबरे' कर लिया।

इसी तरह 'गहु गुआउलमुल्ल (ताम) अद्येत्यी में 'वा गुगर मिला (चाय कीनी दूर इहियन बड म इन इगलिरा १६५४ प० ४८) हो गया है।

पटना में एक वाग का नाम सुना है 'गर्दनिया' वाग है। यह 'गर्दनिया' शब्द असल में 'गार्डन' का आमक व्युत्पत्ति के कारण परिवर्तित रूप है। 'गार्डन' का अर्थ है 'वाग'। वाग का पुराना नाम किसी अँग्रेज के नाम पर कोई गार्डन था। 'गार्डन' अस्पष्ट एवं अपरिचित था अतः मिलता-जुलता शब्द गर्दनिया (गर्दन का भोजपुरी आदि में प्राप्त रूप) उसके स्थान पर आ गया और वाग था ही, अतः वाग जुड़ गया और हो गया 'गर्दनिया वाग' अर्थात् 'वाग-वाग'।

'पाउ रोटी' शब्द भी ऐसा ही है। 'पाउ' पुर्तगाली भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'रोटी'। पाउरोटी भारत में सर्वप्रथम पुर्तगाली ले आए और उन्होंने उसे 'पाउ' कहा। स्पष्टता के लिए लोगों ने इसके साथ 'रोटी' जोड़कर इसे 'पाउरोटी' बनाया। पर 'पाउ' शब्द अस्पष्ट था। रोटी बड़ी थी ही। यह सोचकर कि यह 'पाउ' शायद पाव ($1/4$ सेर) हो, पाव भर की एक रोटी, उसका आमक व्युत्पत्ति प्राप्त रूप 'पावरोटी' हो गया। इधर अँग्रेजी 'डबल' ने 'पाव' को हटा दिया और 'पावरोटी' शब्द अब 'डबलरोटी' हो गया है।

कुछ दिन पूर्व तक 'अँगरेज' को हिन्दी प्रदेश के अनेक क्षेत्रों की जनता 'रगरेज' कहती रही है। यहाँ भी वही बात है। अँगरेज उनके लिए प्रारम्भ में अपरिचित शब्द था किन्तु उससे ध्वनि साम्य रखने वाला 'रगरेज' परिचित था अतः लोग 'अँगरेज' के स्थान पर 'रँगरेज' मान वैठे। अनेक लोक गीतों में अँगरेज के स्थान पर 'रगरेज' मिलता भी है।

देसवा के कइलस वर्बाद रँगरेज वेइमनवा (भोजपुरी)।

इसी तरह 'ऐक्टिंग रजिस्ट्रार' को कही-कही 'एक टाँग रजिस्ट्रार' कहा जाता रहा है। यहाँ भी ध्वनि और अर्थ दोनों साम्य है। अर्थ साम्य इसलिए कि स्थायी व्यक्ति ही दोनों टाँगों से टिक सकता है, अतः 'ऐक्टिंग' निश्चय ही 'एक टाँग' (अर्थात् एक पैर का) कहलाने का अधिकारी है।

'व्रेकवान' का वृक्खभान, चेम्सफोर्ड (वाइसराय का नाम) का कुछ भोजपुरी क्षेत्रों में 'चिलमफोड' (यह कहा जाता है कि वह धूम्रपान का विरोधी थी और उसने चिलम फोड़ दी थी), 'कैम्पवेल' का 'कम्बल', 'चार्ज शीट', का 'चार शीट' (जो चार शीट का गज पर लिखी हो), 'लाइव्रेरी' का 'राय वरेली' (एक शहर के प्रचलित नाम के आधार पर), 'सिगनल' का 'सिकन्दर', 'अस्सरै नौ' का 'साढ़े नौ'; अरवी 'इतिकाल' का हिन्दी 'अतकाल' (अतिम समय=मृत्यु), अँग्रेजी 'ऐडवांस' का भोजपुरी में 'अठवांस' (आठवाँ अश); 'बनर्जी' का 'वानर जी' (हावसन-जावसन कोश में), 'ऐडरसन' (नाम) का मराठी में

‘इंद्रसत्’, जानमाले’ नाम का कुछ हिंदी शब्दों में जैन भारत, मैकेनी नाम का मक्कवनजी, बवाटर गाड़ का कोतवारारद तथा भगवता शब्द ‘टंडम’ (Tand m, एक सवारी का नाम) का हिंदी में ‘टमटम’ (उसका भौंपू टमटम बजता था किंतु इसी कारण यह परिवर्तन हुआ) कुछ आज उदाहरण हैं।

भाषक घुटपति सहज प्रक्रिया है। या कभी-कभी पढ़े लिखे लोग जान बूझ वर विदेशी गवां का स्वदीर्घ रूप देते हैं। इस प्रक्रिया का परिणाम भी वही होता है जो भाषक घुटपति का। अतर क्वल यह है कि यह सहज न होकर सप्तवास होना है। मवममूलर’ का ‘मोक्षमूलर’ अभ्यासित्तान का ‘आवागमनस्थान’ (प्रथम भाग से बाहर जाने और फिर भारत में लौटने का स्थान), जापान’ का जपप्राण ‘अलेक्सोडर का ‘आराथोड्र मिस्टर’ का ‘मिच ‘चीर’ का च्यदन दश ‘कास्ट का बृथण तथा स्कडेविपन’ का ‘स्कष्पनिवासी’ आदि उदाहरण इसी अणी के हैं।●

अध्याय ६

नाम-विज्ञान

नामविज्ञान शब्दों के अध्ययन या शब्द-विज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है जिसमें नामों का अध्ययन होता है। अंग्रेजी में इसके लिए तीन नामों (onomatology, onomasiology, onomastics) का प्रयोग होता है। नाम, वह शब्द या शब्दों का समूह है जिससे किसी व्यक्ति, वस्तु या सत्ता आदि का वोध होता है। कोई आवश्यक नहीं कि व्यक्ति, स्थान या वस्तु आदि का उनके नाम से सार्वक सर्वंघ हो। 'सुन्दरलाल' नाम का व्यक्ति महा असुन्दर हो सकता है और 'धूरेलाल' कामदेव के अवतार हो सकते हैं। 'सोनवरिमा' (जहाँ सोना वरसे) नाम के गाँव में धूल उड़ सकती है और 'सूखेपुर' (जहाँ की घरती सूखी ही सूखी हो) में लहलाते खेतों की सरसता दृष्टिगत हो सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि नाम सकेत या प्रतीक होता है। वह सकेत यादृच्छिक भी हो सकता है जैसे जिस घर में फूटी कौड़ी भी न हो, उस घर के लड़के का नाम अगर्फीलाल या करोडपति के लड़के का नाम छक्कीड़ीमल, और दूसरी और सार्वक भी हो सकता है, जैसे मातावदल, कनछेदी, नकछेदी, वेचू आदि। उल्लेख्य है कि कुछ क्षेत्रों में जिस व्यक्ति के लड़के मर जाते हैं वे अविश्वासवश पुत्र पैदा होते ही मा वदल देते हैं, अर्थात् दूसरी स्त्री (मा) को दे देते हैं (मातावदल), कुछ लोग उसके कान (कनछेदी) या नाक (नकछेदी) या दोनों छोट देते हैं और कुछ आने दो आने में टोना-टोटके स्वरूप उसे बैच (वेचू) देते हैं, और तदनुसार नामकरण कर देते हैं। नाम बहुत छोटे भी होते हैं जैसे शिव, लाला (गाँव का नाम) तथा बहुत बड़े भी होते हैं, जैसे उदयप्रताप वहादुर सिंह, मोहनदास करमचन्द गाँधी। ग्रेट ब्रिटेन में एक रेलवे स्टेशन का नाम ५८ वरर्ड (Leanfairpwllgwngyllgogerychwyrndrob-wllllantysiliogogogoch) का तथा आस्ट्रेलिया में एक झील का नाम ३६ (Kardivilliwarra kurriie apparlarnloo) वरर्डों का है।

ताम तिगां य विं रामा का प्रभवा हुआ है वे व्यक्तिगत चरण है। इसमें ध्वनियों के राम या उराम जानकारी के नाम (पालनू जन दरा का) गोग एवं भी-नभी राम का देखा है जहा कृष्ण का नाम सावू शासू टाइ गर रामिं थारि इसी प्रकार हापी थाएँ थार विली, रार थोत थारि के भी नाम हाएँ हैं। इहांपर म गोर जानकारा के इस प्रकार के नाम होते हैं। पीयो के नाम (गो थारि के जैन धार्माराम निराकार, रामू थारि) भोगार्तिर नाम (महातामगर गागर गाढ़ी नाम भी र लालाय, महादीप द्वीप प्रतरोप प्रायोप तेजा के संपर्क द्वा प्राया का ग्रोडा दिविजान रामार्डिविजान कविद्विनरी, शिला लहरीन, पराना रागर वर्ता, श्राव शुभ्लन, स्टेन गदा गती घोराग निराहा थारि के) सातों के महानों व बहनों के नाम, गुलामा के नाम एवं निरामा के नाम सेव विजा वहांती नाम रेतार्तिर, तथा गतिविद के शीदव जानि परम गोत्र के नाम खोजूरों के नाम, सह्यामा के नाम द्वापनाम (जो धशोक (डॉड) सनलाइट (साबुन) रोतारोता (वेद) डासडा (वनस्पति धी), द्रुष्योड (चाय) नम (कारी), पावर (कलम) मरडी थारि) अनुपमा भहीनों तिवियो दिना के नाम लारा यह उपर्युक्त रामि के नाम, भाषा उपभाषा बोती-उरबोती के नाम, कहने का भाषण यह रिं सभी तरह के नाम याने हैं।

इस नामों का वर्णनरण के भाषाओं पर नामविज्ञान का कभी दो (व्यक्तिनामविज्ञान तथा स्थाननामविज्ञान) वभी तीन (व्यक्तिनामविज्ञान रामूहिन नामविज्ञान (जहा गाति, धर्म, साहस्रद गोत्र थारि के नामों का अध्ययन), भोगो लिङ्गनामविज्ञान) तथा कभी और ग्रन्थिक रामामा म बोटा गया है। वस्तुत उपर्युक्त नामों का ठीक-ठीक वर्णनरण वापरी कठिन है इसी बारण कभी तर पर सबसम्मति मा बहुसम्मति से नामविज्ञान की रामामा प्रालामा के नाम स्वीकृत नहीं हुए हैं। यो माटे हप से व्यक्तिनाम, स्थाननाम रामूहिननाम तथा भाष्य नाम—ये चार वर्ग मान गा सकते हैं।

नामविज्ञान के शाम म विदेशी म पर्याप्त काम हुआ है। अमरजी वाडमय इस दृष्टि से वासी राम्यन है। गार्डिनर की 'द प्लूरी थाफ़ प्रापर नेम्स' एक्सेट (Exwell) की द कामाइस थावसफाइ डिकानरी थाफ़ इगलिं एक्सेट लम्बा' तमा ऐले एवं भाष्य लोगों की 'द ग्रोरिजन थाफ़ इगलिं प्लेट रम्बा' इस क्षेत्र म उल्लङ्घ्य हैं। लदन की गलियों के नामों पर भी काम हो चुका है।

भारत म, नामविज्ञान रूप म भाषाविज्ञान की यह शाखा अभी अपनी

शैशवावस्था में है, किन्तु नामों के अध्ययन के प्रयास अत्यन्त प्राचीन काल से होते रहे हैं। सस्कृत वाडमय में अनेक ग्रथों में यत्र-तत्र स्थान या व्यक्ति नामों की व्युत्पत्ति देने के प्रयास हुए हैं। इस दृष्टि से यास्क का निरुक्त प्राचीनतम उल्लेख्य ग्रंथ है। उसमें पृथ्वी, अग्नि, आदित्य, वैश्वानर आदि अनेक देवी-देव-ताओं तथा कम्बोज आदि कई स्थान नामों की व्युत्पत्तियाँ दी गई हैं। पाणिनि के अष्टाद्यायी, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि में भी यत्र-तत्र अच्छी सामग्री है।

आवृन्दिक काल में अग्रे जो के आने के बाद इस दृष्टि से ठोस प्रयास हुए हैं। इस दिशा में सर्व प्रमुख उल्लेख्य ग्रंथ विभिन्न जिलों के गजेटियर हैं जिनमें नगरो, कस्वो आदि के नामों पर काफी सामग्री है। कुछ अन्य प्रकार के ग्रथों (जैसे ग्राउज का 'मथुरा मेम्बॉयर' या प्रयाग, काशी, अयोध्या आदि तीर्थों पर धार्मिक दृष्टि से लिखी गई परिच्यात्मक पुस्तिकाएं) में भी कुछ सामग्री मिल जाती है। इसी प्रकार भाषाओं के इतिहास पर लिखी गई पुस्तकों में भी स्थानों और कहीं-कहीं व्यक्तिनामों की व्युत्पत्ति पर थोड़ी बहुत सामग्री (जैसे सुनीति कुमार चटर्जी के 'ओरिजिन एड डेवलपमेंट आफ बेगाली लैंगिज' या बानीकात काकती के 'असमीज इट्स फार्मेंगन एड डेवलपमेंट' में) है।

हिन्दी में नामविज्ञान के क्षेत्र में धीरेन्द्र वर्मा का लेख 'अवघ के जिलों के नाम' (उनकी पुस्तक 'विचारवारा' में सकलित) प्रथम व्यवस्थित अध्ययन है। बाद में उन्हीं के निर्देशन में कार्य करके विद्याभूपण विभु ने हिन्दी प्रदेश के हिन्दी पुरुषों के नाम पर प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि ली। ग्रंथ 'अभिधान अनुशीलन' नाम से छप चुका है। राहुल साक्षात्यायन ने एक लम्बा लेख 'जिला आजमगढ़ के नामों का इतिहास' सम्मेलन पत्रिका (भाग ४३ सख्त्या १) में प्रकाशित किया था। सरयूप्रसाद अग्रवाल ने 'अवघ के स्थान नामों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन' पर लखनऊ विश्वविद्यालय से डी० लिट० तथा श्री प्रवाश कुर्ल ने सहारनपुर जिला के स्थान-नामों (a socio-linguistic study of District Saharanpur place-names) पर एवं लक्ष्मीनारायण शर्मा ने 'ब्रज के स्थान-अभिधानों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन' पर आगरा से पी०-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। श्री शर्मा जी ने एम० ए० के लिए लघु-शोधप्रवन्ध भी इसी विषय (आगरा मुहल्ले के नामों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन) पर प्रस्तुत किया था। प्रस्तुत पत्रिकों के लेखक ने भी 'अमृत पत्रिका' (प्रयाग से प्रकाशित हिन्दी दैनिक जो अव वन्द हो चुका है) के कुछ अंकों में इस विषय पर कुछ लेख लिखे थे। इसी प्रकार प्रस्तुत लेखक की पुस्तक 'भाषा

'विषाणु वोग' में विद्युत की प्रमुख भावामा के परिक्षय में बहुतों के नाम पर गोपेष में विचार किया गया है। लगातार की दूसरी पुस्तक 'हिन्दी नामों में हिंदी उद्दूसार' नामों पर पाठी किस्ति तथा हिन्दा प्रत्येक की प्रमुख गोपियों के नामों पर संक्षिप्त नामधोरी भी गई है। या हिन्दी में एक कार्यों का अभी थीरण्डोग ही हृषी है और दाढ़ी काय शब्द है।

नामों पर ज्ञाने काय में एक मनोरनन्द धर्मयन तो है ही और इसमें नामों पर वारे में हमारी जिजारा की गाति तो होती है साय हाँ इसमें हमारे धर्म विद्यास प्राचीन रतिहास और सहृदयि जाति मिथ्रा तथा मनोजिता आदि पर भी प्रवारा पड़ता है।

भारत एक प्रमुख प्रधारा देव है। इसीतिए पर्याय यज्ञिनामों में लगभग ८० प्रतिशत नाम धम और दग्नि पर आधारित हैं शेष में धाय प्रकार के नाम हैं। स्यान नामों की आवश्यकता तो कभी-कभार ही पड़ती है भ्रत उन पर तो ममय का प्रभाव बहुत अधिक नहीं पड़ता किंतु व्यक्तिनामों की आवश्यकता तो शोड़ पड़ती है भ्रत उन पर बहुत अधिक हटिगत होता है। हमारे नाम समय के साथ बदलते रहे हैं। वदिक काल से लेनेर धव तक वे नामों पर एक दृष्टि द्वान् तो यह बात स्पष्ट हुआ बिंदा नहीं रहती। प्राचीन वदिक नाम बहुत अधिक धम प्रधारा नहीं हैं किंतु परबर्तीकाल में जसे जैसे धम के प्रति धर्म आन्धा दाती गई धार्मिक नाम बनने गए। बौद्ध और जन धम आए तो उनके आधार पर भी नामवरण किया जाने लग (अमिताभ गौतमबुद्ध सिद्धार्थ राहुल बृद्धदेव धृष्णु तिनश्वर जनार्द सुपाद्म)। आगे चलकर मुसलमानों के धारण में इसी एकार के नामों की सम्मिलित प्रवत्ति विशेष रूप से घटती रही। मुसलमानों वे धारण में धाय काया की भाति नाम पर भी प्रभाव छाता और राम गुलाम राम इक्याल इरजत सिंह, उलफत राय मुरादीनाल खुशीगम हुरमत खुगवहा, मुग्नीराम बहराम, हक्कुर्रातिह मुहराव रस्तम खुराम जसे नाम टिंडुओं में काफी प्रवत्तित हो गए। अंग्रेज भारत में राजा तो रह किंतु वे हमारी सस्कृति में प्रवेश न कर सके। इसी कारण स्वीटी बेबी रवा, लिंगी डाली जस कुछ ही नाम विशेष मिलते हैं। इनमें भी प्राय चास्तविक नाम त होकर पुकारने के नाम होते हैं। हाँ डिप्टी मिह कप्तानसिह जसे कुम नाम धरवश्य हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती के आय समाज आदालत त भी नामों को बहुत अधिक प्रभावित किया गया देवा, औपवती, धोपप्रकाश वेदपान वेदप्रकाश वेदमित्र बन्द्रवन वदमणि। देव की आजादी के लिए सघन और स्वरात्म की प्राप्ति त भा नामों पर मणी

नाम-विज्ञान

चाप छोड़ी है । देशराज, देशरत्न, भारत भूषण, भारत मित्र, स्वदेशीलाल, क्रातिकुमार, स्वतत्रनारायण, स्वराज्यपाल, सुदेशचंद ।

ब्यक्ति नामों में सबसे मनोरजक सामग्री अधविश्वास पर आधारित नामों में मिलती है । पीछे मातावदल, छेदी, वेचू का उल्लेख किया जा चुका है । ऐसे नाम अनपढ़ या कम पढ़े-लिखे निम्न श्रेणी के लोगों में विशेष रूप से गिलते हैं । कुछ नाम हैं । खदेन, दखेल, पवारू, घुरफेकन, फेकू, लुटई, बदलू, घसीदू, घसीटेलाल, खचेहू, छेदी, कनछेदी, छिदन, नत्थू, नथुनी, जोखू, तुल्लू, फेलू, लौदू, विवकू, विकाऊ, वेचन, वेचई, वेचू, सौदू, मोलू, विसाऊ, मागू, मगतू, घुरहू, अलियार ।

ये सारे के सारे मूलतः अधविश्वास पर आधारित हैं । एक सबसे बड़ा अधविश्वास तो यह है कि जैसे अच्छी चीज सबको पसन्द आती है, वैसे ही अच्छा नाम रखने से वह सबको पसन्द आएगा, अतः नाम पर नजर लग कर उस पर भी लग जाएगी, और दूसरे वह भगवान को भी पसन्द आ जाएगा, अर्थात् मर जाएगा । इस कारण वहुत से अनपढ़ भारतीय अच्छे नामों की तुलना में बुरे नामों को पसन्द करते रहे हैं ।

उपर्युक्त नाम मूलतः इस अधविश्वास पर आधारित है कि वच्चे को यदि पैदा होते ही घर से निकाल (खदेन, खदेडू) या बाहर फेक (पवारू, फेकू) दें, घूरे पर फेक दे (घुरफेकन), लुटा या किसी और के वच्चे से बदल दे (लुटई, फेलू, बदलू) जमीन पर घसीट दे (घसीदू, घसीटेलाल, खचेहू—जो खीचा गया हो), कान या नाक या दोनों छेद दे (छेदी, कनछेदी, नकछेदी, नत्थू—जो नाथ दिया गया हो, नथुनी—नथ), पैदा होते ही तराजू पर तील या वेच दे (जोखू, तुल्लू, वेचऊ, सौदू, मोलू, विकाऊ, विवकू) या बदल दे (बदलू) तो वह दीर्घियु होता है । वहुत से लोग, जिनके वच्चे बार-बार मर जाते हैं, ऐसा करते रहे हैं, और इसी आधार पर ऐसे नाम रखते रहे हैं । बाद में परपरा चल जाने पर ऐसी कोई क्रिया न करने पर भी लोग ऐसे नाम रखने लगे होंगे । अब शिक्षा के प्रचार के साथ ऐसे नाम कम होते जा रहे हैं, और शायद जीघ्र ही वह समय आएगा जब ये इतिहास की चीज बन जाएँगे ।

पुराकालीन नामों का अध्ययन अपार सभावनाओं से भरा है । रामायण और महाभारत के बारे में परपरागत विश्वास यह है कि ये सारी-की-सारी घटनाएँ ऐतिहासिक हैं और इन दोनों काव्यों के सभी पात्र ऐतिहासिक हैं । किन्तु इनके नामों के अध्ययन से विचित्र संकेत मिलता है । कौरवों के नाम दुर्योधन, दुश्सन, दुस्सह आदि हैं । कौन वाप अपने लड़के के ये नाम रखेगा ?

इसी प्रकार रामायण में रावण पक्ष के नाम कु भरण, मध्यनाद, शूपण्डिता भादि भी वही बात वह रह हैं। तो क्या ये कल्पित हैं?

महाभारत के कुछ पाठों का अध्ययन कुछ विद्वानों ने किया है जिसमें यहे भाइचयनक परिणाम निकलते हैं। यहाँ विस्तार से इस प्रस्तुति के नहीं उठाया जा सकता। किन्तु निष्पत्ति स्वरूप यह कहा जा सकता है कि पाँचों पाठव यस्तुत ऐसे नाई नहीं थे। अजून जानि के प्रतीक अजून वक जाति के प्रतीक नीम, योग्य जाति के प्रतीक युधिष्ठिर तथा मद्र जाति के प्रतीक नमुल और सहदेव थे। इन चारों जातियों ने मिलकर पुरु और भरत जातियों के मिश्रण कोरमें से पुढ़ किया था (विस्तार के लिए देखिए महा भारत एवं एतिहासिक अध्ययन—पुढ़ प्रकाश इताहायाद, १६५६)।

यह कम तोगा दो ज्ञात है कि विनोदा भाव का वास्तविक नाम विनायक भाव है। वे जब पहले पहले गाँधी जी के माथ्रम म गए तो वहाँ पहले से एक पजोड़ा नाम के सज्जन रहा करते थे। गाँधी जी ने पजोड़ा के सादृश्य पर इन घोषणाओं कहना प्रारम्भ किया और 'विनायक भाव' विनोदा भावे बन गए।

अब तब हम तोग 'यक्षियों के नामों पर विचार कर रहे थे। स्थान नामों का अध्ययन भी कम उपयोगी और मनोरञ्जक नहीं है। नीच वद्य नामों पर संक्षिप्त में विचार किया जा रहा है।

विहार प्रान का नाम यहाँ पर बोढ़ विहारा के आधिक्य के कारण पड़ा है। भड़मान द्वीप का पुराना नाम भगमान (भग, बग का उल्लेख मिलता है) माना जाता रहा है। अब लोगों द्वारा विचार है यह नाम 'हुमान' का विकसित रूप है। समझ है पहले यहाँ 'वानर' जाति के लोग रहते हो। उल्लेप है कि राम के साथ सेना वादरा की नहीं थी यह वानर नामक आदिवासियों की थी। वानर की पूजा के बारण या कुछ-कुछ बन्दर सा होन के कारण उह वदाचित यह नाम दिया गया था। मध्य एण्डिया स्थित 'बुधारा' नगर का नामकरण यहाँ पचीन बाल में बोढ़ विहारों के बाहरी भाग के बारण पड़ा है। इतिहास के विद्यार्थी इस बात से भली भांति परिचित हैं कि बोढ़ घम किसा समय में वहाँ तक फैला था। प्रस्तुत पक्षियों के नवक को अपनी तुवारा यात्रा में वहाँ बाढ़ी भग्नावशय दखने की मिल जो भारतीय सम्पक के प्रमाण थे। एक प्राचीन संडहर पर स्वस्तिक भा विहृ नी मिला।

आसाम में मिटटी के तेल का प्रसिद्ध केंद्र है डिगबोई। इस नाम का मूल बड़ा अजीव है। कहा जाता है कि असम रेनक्स एड ट्रैडिंग कम्पनी निमिटे

को डिग्गूगढ़ से आगे रेलवे लाइन बनाते समय उबर मिट्टी का तेल होने का संकेत मिला। तेल के लिए खुदाई एक अग्रेज की देख-रेख में शुरू हुई। खोदने वाले मजदूरों से वह अग्रेज 'डिग व्याय' डिग व्याय' (खोदते जाओ, खोदते जाओ) कहता था। यह 'डिगव्याय' मजाक-मजाक में वहाँ के मजदूरों की जावान पर चढ़ गया और वह स्थान डिगव्याय के आधार पर 'डिगवौई' कहलाने लगा।

प्राचीन काल में नगर, ग्राम, मुहल्ले आदि के नामों के साथ ग्राम, पल्ली, क्षेत्र, प्रस्थ, स्थल, हट्ट, पुर, नगर, पट्टन, मंडप, चत्वर, चतुष्पक आदि का प्रयोग होता था। मुस्लिम काल में कटरा, वाजार, वाड़ा, कूचा, गली, वाग, वस्ती, दरवाजा, मोहल्ला, दरीवा, गंज आदि प्रयोग शुरू हुए। अग्रेजों के समय में रोड, गार्डन, मार्केट, सिटी, गेट आदि जोड़े जाने लगे। इस श्रेणी के कुछ नाम घोड़े दिलचस्प हैं। मुसलमानों के काल में भारत में 'गुलामो' की विक्री होने लगी थी। घोड़े का प्रचार भी बहुत अधिक बढ़ गया था, जिस का परिणाम यह हुआ कि हर अच्छे नगर में घोड़ों और गुलामों के वाजार लगा करते थे। अरबी भाषा में एक शब्द है 'नखास' जिसका अर्थ होता है जानवर या गुलाम बेचने वाला। भारतीय नगरों में वे स्थान जहाँ गुलाम और घोड़े बेचे जाते थे इसी आधार पर नखास कहलाए। आज भी गाजीपुर, बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा, फूर्खाबाद आदि अनेक नगरों में नखास, नखास कोना या नखास मुहल्ला नाम के स्थान हैं। यों अब लोग भूल चुके हैं इनका अर्थ, किन्तु इनका विश्लेषण स्पष्ट करता है कि ये स्थान कभी गुलामों और घोड़ों आदि के विक्रय-स्थल थे।

इसी प्रसग में दिल्ली के मुहल्ले 'मोरी गेट' का नाम लिया जा सकता है। यह मुहल्ला मुसलमानी काल का है, और उस समय इसका नाम 'मोरी दरवाजा' था। 'मोरी' तुकी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'घोड़ा'। इस शब्द के अर्थ का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि तुकी के जमाने में इस स्थान पर घोड़े बिका करते थे। इसी प्रकार दिल्ली के 'उदूँ वाजार' को सामान्यतः लोग 'उदूँ का वाजार' समझते हैं। वस्तुत उदूँ का मतलब है 'फौजी घिविर'। उदूँ वाजार मूलतः सैनिकों के लिए वाजार होने के कारण इस नाम से अभिहित हुआ था।

यहाँ तक हमने स्थान नामों पर कछु, फुटकल हृप से विचार किया। स्थान नामों का पूरा और विस्तृत अध्ययन विस्तार में भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यहाँ उत्तर प्रदेश के एक छोटे ने नगर गाजीपुर के नाम का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

—सी प्रकार रामायण में रावण पक्ष के नाम कु भक्त, मंथनाद शूपणस्त्रा आदि भी वही बात कह रह हैं। तो क्या मेरे कलिपत्र हैं?

महामारत के कुछ पात्रों के नामों का अध्ययन कुछ विद्वानों ने किया है जिससे वडे धाइचपजनक परिणाम निकलते हैं। यही विस्तार से इस प्रश्न को नहीं उठाया जा सकता। किन्तु निष्क्रिय स्थरुण पृष्ठ कहा जा सकता है कि पाचों पाढ़व वस्तुत सब भाई नहीं थे। अजन जाति के प्रतीवा अमृत, वक जाति के प्रतीक नीम, योवय जाति के प्रतीक सुधिचिर तथा मद जाति के प्रतीक नकुल और सहृदव थे। इन चारों जातियों ने मिलकर पुरु और भरत जातियों के मिश्रण कीरबों से युद्ध किया था (विस्तार के टिए देखिए महा मारत एक ऐतिहासिक अध्ययन—युद्ध प्रकाश, इताहावाद, १६५६)।

यह कम लोगों को जात है कि 'विनोबा भावे' का वास्तविक नाम विनायर नावे है। वे जब पहले पहले गाँधी जी के धार्थमें गए तो वहाँ पहल से एक पजोवा नाम के सज्जन रहा बरते थे। गाँधी जी ने पजोवा के सादृश्य पर इन का विनाया बहुता प्रारंभ किया और विनायक भाव विनोबाभावे बन गए।

यद्य तब हम तोग व्यक्तियों के नामों पर विचार कर रहे थे। स्थान नामों का अध्ययन भी कम उपयोगी और मनोरञ्जन नहीं है। नीचे कुछ नामों पर संशिप्त में विचार किया जा रहा है।

'विहार' प्रान का नाम यहाँ पर बोढ़ विहार के धार्थिय के कारण पड़ा है। अडमान द्वाप का पुराना नाम अगमान (अग, वग का उल्लेख मिलता है) माना जाता रहा है। अब लोगों का विचार है यह नाम हनुमान का विक्रित रूप है। समव है पहल महां बानर जाति के लाग रहते हाँ। उच्चेष्य है कि राम के साथ सना बादरा की नहीं थी मह बानर नामक शादिवासियों की थी। बादर की पूजा के बारए या कुछ-कुछ बन्दर मा होने के कारण उह पदाचिन मह नाम लिया गया था। मध्य एशिया स्थित 'बुआरा' नगर का नामहरण वही प्रचीन बाल म बोढ़ विहार के बादूत्य के कारण पड़ा है। इतिहास के विद्यार्थी इस बात से भली भीति परिचित है कि बोढ़ घर्मे दिनी समय म वही तक पहुँचा था। प्रस्तुत पत्तिया के सख्त की मापनी बुआरा-पात्रा म वही कात्रा नामावशेष दरपत्र का मिल जा भारतीय सम्पर के प्रयाण म। एक प्राचीन राजहर पर स्थस्तिक का चिह्न नी मिला।

भ्राताम म मिट्टा के तल का प्रविष्ट कार्य है दिग्बोइ। इस नाम का मूरा बड़ा अजीब है। वहा जाता है कि धरम रेतवेय एवं द्रेविंदा रमनी चिदिव

को डिग्रूगढ़ से आगे रेलवे लाइन बनाते समय उधर मिट्टी का तेल होने का सकेत मिला। तेल के लिए खुदाई एक अग्रेज की देख-रेख में शुरू हुई। खोदते वाले मजदूरों से वह अग्रेज 'डिग व्याय' डिग व्याय' (खोदते जाओ, खोदते जाओ) कहता था। यह 'डिगव्याय' मजाक-मजाक में वहाँ के मजदूरों की जबान पर चढ़ गया और वह स्थान डिगव्याय के आधार पर 'डिगवोई' कहलाने लगा।

प्राचीन काल में नगर, ग्राम, मुहल्ले आदि के नामों के माथ ग्राम, पल्ली, क्षेत्र, प्रस्थ, स्थल, हट्ट, पुर, नगर, पट्टन, मंडप, चत्वर, चतुष्क आदि का प्रयोग होता था। मुस्लिम काल में कटरा, बाजार, बाड़ा, कूचा, गली, बाग, वस्ती, दरवाजा, मोहल्ला, दरीवा, गज आदि प्रयोग शुरू हुए। अग्रेजों के समय में रोड, गार्डन, मार्केट, सिटी, गेट आदि जोड़े जाने लगे। इस श्रेणी के कुछ नाम घडे दिलचस्प हैं। मुसलमानों के काल में भारत में 'गुलामो' की विक्री होने लगी थी। घोड़े का प्रचार भी बहुत अधिक बढ़ गया था, जिस का परिणाम यह हुआ कि हर अच्छे नगर में घोड़ों और गुलामों के बाजार लगा करते थे। अरवी भाषा में एक शब्द है 'नखास' जिसका अर्थ होता है जानवर या गुलाम बेचने वाला। भारतीय नगरों में वे स्थान जहाँ गुलाम और घोड़े बेचे जाते थे इसी आधार पर नखास कहलाए। आज भी गाजीपुर, बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा, फरूखाबाद आदि अनेक नगरों में नखास, नखास कोना या नखास मुहल्ला नाम के स्थान है। यो अब लोग भूल चुके हैं इनका अर्थ, किन्तु इनका विश्लेषण स्पष्ट करता है कि ये स्थान कभी गुलामों और घोड़ों आदि के विक्रय-स्थल थे।

इसी प्रस्तुति में दिल्ली के मुहल्ले 'मोरी गेट' का नाम लिया जा सकता है। यह मुहल्ला मुसलमानी काल का है, और उस समय इसका नाम 'मोरी दरवाजा' था। 'मोरी' तुर्की भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'घोड़ा'। इस शब्द के अर्थ का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि तुर्कों के जमाने में इस स्थान पर घोड़े विक्रा करते थे। इसी प्रकार दिल्ली के 'उदूँ बाजार' को सामान्यतः लोग 'उदूँ का बाजार' समझते हैं। वस्तुत उदूँ का मतलब है 'फौजी शिविर'। उदूँ बाजार मूलत सैनिकों के लिए बाजार होने के कारण इस नाम से अभिहित हुआ था।

यहाँ तक हमने स्थान नामों पर कछु फुटकल रूप से विचार किया। स्थान नामों का पूरा और विस्तृत अध्ययन विस्तार से भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यहाँ उत्तर प्रदेश के एक छोटे से नगर गाजीपुर के नाम का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

'गाजीपुर' या इसमें मिलते युक्त नाम में 'गाजीपुर' नगर वा काई पुराना उल्लेख हम नहीं मिलता। प्रसिद्ध चीजों याकी काहाने परना से बनारस इधर से ही गया होगा कि तु बरने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। काहाने के प्राय २०० वर्ष बाद होनेसाग यहीं गया था। उसके अनुसार इस प्रकैश का नाम 'चेन चू' पा। इहने की आवश्यकता नहीं कि चीजों भाषा में व्यक्तिवाक्य नाम। वा भी अनुवाद पर लिया जाता है। 'चेन चू' का शाकिंचि अथ 'युद्ध' के स्वामी वा राज्य होता है। इस आधार पर लोगों का अनुमान है कि उस समय इसका नाम बाहिरित 'युद्धपतिपुर' था। बनिधम में 'चेन चू' के आधार पर उस स्थान का नाम 'गजपतिपुर' या 'गजपुर' होने का अनुमान लगाया है और 'गाजीपुर' इस विचार से गजपतिपुर या गजपुर वा विगड़ा रूप है। पलीट ने भी इस मत का समर्थन किया है। किंतु परवर्ती विद्वानों ने प्राय इस भगुद्ध माना है। नदीताल छै न भी अपने भौगोलिक रौप्य में इसे भगुद्ध घोषा है। डा० होई भी इसी मत के है। नेविल के मनानुसार होनेसाग वा 'चेन चू' गाजीपुर जिले का 'उधरनपुर' है जिसका उस समय अनुमानित नाम 'युद्धरनपुर' रहा होगा। भाज का 'उधरनपुर' 'युद्धरनपुर' का हा विगड़ा या विभित रूप है।

'गाजीपुर' के नाम के सम्बन्ध में दूसरा अनुमान वहीं के एक बड़े टीने पा बाट से लगाया जाता है। 'गाजीपुर' नगर से बिलकुल तगा एक बहुत ऊचा टीला है जिस लाग राजा गाधि का टीला बहत है। इस अनुमान पर लोगों का कहना है कि महर्षि विश्वामित्र के दिना राजा गाधि का यहाँ विला था और उहाँके नाम पर इस नगर का प्राचीन नाम 'गाधिपुर' था। इस आधार पर 'गाजीपुर' गाधिपुर का ही विकसित रूप ठहरता है। एक 'गाधिपुर' नाम वा उल्लेख पुराणा नहीं है किंतु वह कदाचित बानीज के नाम था। बुद्ध लोगों के अनुसार बानीज का ही पुराना नाम 'गाधिपुर' था।

'गाजीपुर' नाम के सम्बन्ध में एक और जनवृत्ति भी है। कहा जाता है कि माधाता नाम के राजा एक बार जगन्नाथपुरी ता रह रे। रामन म गाजीपुर जिले के बठौत गाँव के एक तालाब में स्नान बरने से उनका इच्छा पूरा हो गई। इसके फलस्वरूप माधाता वहीं रक्त गए और एक बिला बनावर रहने लग। उनके परिवार में किसी ने एक मुसलमान की लड़की पकड़ली और एत स्वरूप उसकी पिथवा माँ ने उस समय के मुसलमान बालाह के यहाँ प्राप्तना पत्र दिया और राजा के यहाँ से चालीस शाजियों वा एक समूह माथा और राजा को मार डाला। गाजियों के इस समुदाय ने नेता सईद मस्तूर ने यहाँ के

गी हिन्दुओं को बुरी तरह पीसा, जिसके फलस्वरूप उसे मलिक-उस-मदत-गाजी की पदबी मिली। उसने इस 'गाजी' उपाधि के उपलक्ष्य में ही 'गाजीपुर' न शहर बसाया।

यह जनश्रुति कुछ साधार मालूम होती है। 'गाजीपुर' नाम निश्चित ही किसी मुसलमान का बसाया या कम-से-कम उसके नाम पर रखा जात होता है। 'गाजी' शब्द किसी पुराने सस्कृत शब्द का (जैसे गाधि का) विगड़ा रूप नहीं हो सकता। विगड़े रूप में 'ग' और 'ज' जैसी विदेशी ध्वनि आने की प्रवृत्ति नहीं मिलती। यहाँ एक और बात की ओर भी ध्यान जाता है। ह्वेनसाग के अनुसार इसका नाम 'चेन चू' था जिसका अर्थ 'लडाई के स्वामी का प्रदेश' या 'लडाई करने वाले का प्रदेश' है। आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है 'गाजी' भी शाविद्क अर्थ यही है। 'गाजी' शब्द अरबी का है। इसका सम्बन्ध अरबी शब्द 'गज्युन' से है जिसका अर्थ 'लड़ना' होता है। अरब में इसी आधार पर बड़े धर्मयुद्धों को 'जावा' तथा छोटे को 'सरिया' कहते थे। इसका अर्थ यह होता है कि ह्वेनसाग के समय में भी इसका नाम 'गाजीपुर' ही था। अर यह सभव नहीं लगता। उसका समय ख्री सदी है और इस प्रकार की घटना घटने का समय एक हजार ईसवी के पूर्व। अत यह अर्थक्य आकस्मिक हो सकता है।

यो एक सभावना यह भी हो सकती है कि इसका पुराना नाम भी इसी प्रकार का कुछ रहा हो, और मुसलमानी काल में यह नया नाम दे दिया गया हो या उसी का मुसलमानीकरण कर दिया गया हो। आश्चर्य है कि इसे गाजियावाद (गाजी आवाद) नहीं कहा। वस्तुतः मुसलमानी काल में मिश्रित नाम भी काफी रखे गए थे—वादशाहपुर, वेगमपुर, सुलतानपुर।

नामों के अध्ययन से तरह-तरह की सूचनाएँ मिलती हैं। 'वृन्दावन' कहता है कि कभी वहाँ जगल था। ब्रज का महावन स्थान भी अपने बारे में यही सकेत करता है, यद्यपि अब वहाँ वन विलकुल नहीं हैं। 'मिर्जिपुर' स्पष्ट ही मुसलमानी शासनकाल का नाम है। इधर भारतीय सस्कृति के बहुत से तथाक्यित प्रेमी उसे 'मीरजापुर' कहने और लिखने लगे हैं। उनका कहना है कि 'मीर' का अर्थ है 'समुद्र' और 'जा' का अर्थ 'उत्पन्न'। अर्थात् यह 'मिर्जी' नहीं है, अपितु 'मीरजा' अर्थात् 'लक्ष्मी' है और इस तरह 'मीरजापुर' का अर्थ है 'लक्ष्मीपुर'। कहना न होगा कि यह शब्द इन प्रयोक्ताओं के मनोविज्ञान का अच्छा उद्धाटन कर रहा है। 'वनारस' का 'वाराणसी' या 'अलक्जेडर' का 'अलक्षेन्द्र' कर देने वालों का मनोविज्ञान भी इसमें बहुत भिन्न नहीं है।

वागणसी नाम स्पष्ट यहता है कि मूलत यह नगर यागा के भक्तों द्वारा तथा वरेण्या की बीच में स्थित था।

अब म दो शब्दों की वहानी दग पर हम यह प्रबरणा भगाप्त करेंगे।

सिनहा

हिन्दी पा एक चहून प्रबलित शब्द है 'सिनहा' जिसे कुछ कायस्य भपने नामा वे साथ लगाते हैं। मूलत यह शब्द सस्तृत भाषा का हित 'श' है जिसका सम्बन्ध हिस पात्रु से और जिसका अर्थ है 'खूतार' या 'हिंसा करने वाला'। आगे चलकर वाक्यिपद से यही 'श' 'सिंह' बन गया (र का लोप) जो सेर वा सस्तृत पर्याय है। सिंह भपनी बीरता के निए प्रसिद्ध है अत प्रारम्भ म शत्रिया न प्रतीक स्वरूप इसका प्रयोग भपने नामा के साथ आरम्भ विद्या और धीरे धीरे यह शब्दियों या गजामा के नाम के साथ प्रयुक्त होने लगा। साहित्य म प्राप्त इसका प्राचीनतम प्रयोग भर्तर्सिट के भर्तरकोश म 'आकर्यसिंह' रूप म भिलता है जिसका अर्थ यह हुआ कि पहली ईसी के प्राप्त पास यह प्रयोग म था खुदा था। आगे चलकर मह देवत क्षत्रियों तक सीमित नहा रहा कोई भी राजा, जाट, गूजर, अहीर आदि तथा यो भी भपने को धीर समझने वाले इसका प्रयोग बरने लगे। राजस्थान के बहुत स ग्रामण भपने नाम के साथ सिंह लगाते हैं। भपने इसी प्रचार मे यह कायस्थों वे नामों क साथ भी प्रयुक्त होने लगा। अप्रेजी भाषा के प्रचार के बाद कुछ सिंह लोगों न भपन 'सिंह' को बननी अप्रेजी मे SINHA की जिसे इस श' से अपरिचित अप्रेजी भी अर्थ लोगा न सिनहा पढ़ा। प्रारम्भ मे ऐसा कदाचित अप्रेजों से कायस्थों के नाम के साथ हुआ अत वे ही 'सिनहा' कहलाए। आवश्य है कि 'हित' 'श' वी याका की परिसमाप्ति 'सिनहा' मे हुई है।

हिंदी

'हिंदी', 'हिंड', 'हिंदुस्तान' मूलत हिंडु शब्द से मम्बद्धित हैं। प्रश्न यह है कि इस 'हिंडु' का मूल क्या है?

हमार परम्परावाली सस्तृत पण्डित भूल शब्द 'हिंडु' मानते हैं। इसकी व्युत्पत्ति वई प्रकार से दी जाती है। कुछ लोग 'हिं' (=नष्ट वरना) + 'डु' (=दुष्ट) से हिंडु मानते हैं। अर्थात 'हिंडु' का अर्थ है 'दुष्टी वा विनाश वरने वाला' (हितस्ति दुष्टान्)। 'गवद्वल्पद्वम्' (खण्ड ५, १६६१) म 'हीन + दुष्ट + डु' से हिंडु सिद्ध विद्या गया है। इस दृष्टि से 'हिंडु' का अर्थ हुआ 'हीनी या शोध्यों को दूषित करने वाला हीन दूषयनि)। 'भेदत्र' मे २३वें प्रवाना म 'गद्वुर पावनी से बहते हैं —

हिन्दुधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनः ।

हीनञ्च दूषयत्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये ॥

अर्थात् 'हीनो' को दूषित करने वाला' 'हिन्दु' हे। यहाँ 'हीन' का अर्थ कुछ लोग 'म्लेच्छ' आदि विदेशी मानते हैं। 'मेहत्र' को प्राय. परम्परावादी पण्डित प्राचीन ग्रन्थ समझते हैं, किन्तु वास्तविक स्थिति यह नहीं है। इसमें 'फिरंगी' शब्द का प्रयोग मिलता है जिससे स्पष्ट है कि यह बहुत बाद का ग्रन्थ है और यूरोपीयों के भारत में आने पर लिखा गया है।

'हिन्दु' की एक तीसरी व्युत्पत्ति 'हीन+डु' [हीनो (म्लेच्छो) का दलन या दण्डित करने वाला] से भी मानी गई है। 'हिन्दु' की एक चौथी व्युत्पत्ति है—'यो हिंसाया दूषते, म हिन्दु' अर्थात् हिंसा को देखकर जो दुखी होते हैं, वे हिन्दु हैं।

वस्तुतः उपर्युक्त तीनो व्युत्पत्तियाँ कल्पनाप्रसूत हैं। 'हिन्दु' शब्द 'ह' के साथ सस्कृत शब्द नहीं है। उल्लेख्य है कि किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में इसका प्रयोग नहीं हुआ है। मुझे इसका प्राचीनतम प्रयोग सातवीं सदी के अन्तिम चरण के ग्रन्थ 'निशीथ चूर्णि' में मिला है।

आधुनिक विद्वानों द्वारा स्वीकृत एव प्राय सर्वमान्य मत यह है कि 'हिन्दु' शब्द फारसी भाषा का है। यो फारसी का यह अपना शब्द नहीं है अपितु सस्कृत शब्द सिंघु का फारसी रूपान्तरण है। प्रश्न उठता है कि 'सिन्धु' की व्युत्पत्ति क्या है? सस्कृत के अधिकांश वैयाकरण इसका सम्बन्ध 'स्यन्द' धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है पसीजना, द्रवना, स्वित होना। इसी में, 'य' के सम्प्रसारण, 'दस्य घ', तथा 'उद्' प्रत्यय के योग से 'सिन्धु' शब्द बना है, जिसका अर्थ नदी-विशेष, तथा समुद्र आदि है। हायी के गण्ड-स्थल से मद बहने के कारण उसे भी 'सिन्धु' या 'सिन्धुर' आदि कहा गया है। इस प्रकार इसका मूल अर्थ 'बहना' है।

'सिन्धु' की एक दूसरी व्युत्पत्ति सस्कृत की 'इन्द्र' धातु से मानी गई है। 'इन्द्र' का अर्थ होता है 'ऐश्वर्य होना'। सस्कृत का 'इन्द्र' शब्द भी इसी से सम्बद्ध है। ग्रासमान, रौत्र आदि विद्वान 'इन्द्र' को मूलत 'इव्य' या 'इन्व्य' मानते हैं, यद्यपि वेनफे तथा कुछ और विद्वान् 'इन्द्र' को भी मूलत 'स्यन्द' ने ही निप्पन मानते हैं। 'इन्द्र' या 'स्यन्द' से ही स्लाव शब्द 'जेन्द्रु', स० 'इन्द्र' ग्रेवेस्ता 'जौन्दाह' (जिन्दा, जिन्दगी) आदि सम्बन्धित है। 'सिन्धु' शब्द को 'इन्द्र' या 'इन्व्य' से सम्बद्ध माननेवाले उस नदी में ऐश्वर्य या उसकी जीवन-शक्ति पर धूल देते हैं। मोनियर विलियम्स 'सिन्धु' शब्द को 'सिंव' (=जाना) धातु से निकला होने का अनुमान लगाते हैं।

प्रस्तुत परिचयों का लेखक उपर्युक्त मता से सहमत नहीं है। ये सब पुरानी पातुएँ तो थीं हैं, जिन्हें मेरी निजी राय यह है कि इग ननी विग्रह का तिव्य नाम, मूलत संस्कृत का शब्द नहीं है। जब भाष्य भारत में भाष्य उस समय परिचयमोत्तर भारत में भाष्यतर लोग रहते थे, और ये लोग पर्याप्त सुसमृद्धि थे। ऐसी हितियां में यह स्वामाविक्र है कि तिव्य ननी वा कोई नाम इत भाष्यतर लोगों द्वारा प्रयुक्त होता रहा होगा। भाष्य ऐसा हाता भी नहीं दिया कोई विदेशी जाति विसी देश में भाष्य और वहाँ के सारे के नामों का बदल डाले विनोपत ऐसी स्थिति में जब दिव्य वहाँ के रहने वाले भ्रसम्य न होइर सुमसृद्धि हो। ही नवागतुर एसी नदिया या एस पहाड़ा आदि के नाम तो रख या बदल सकते या लेते हैं, जिनका अधिक लोग नहीं जानते। जिन्हें परिचयमोत्तर भारत वी सबसे बड़ी नदी का सम्बद्ध म, जिनकी घाटा म इन्हीं बड़ा समृद्धि थी, उनको ऐसा करना पड़ा हो या उहोंने ऐसा किया हो, ऐसा मानन का कोई कारण नहीं दीखता। ऐसी स्थिति में बम-से-बम इतना तो बहा ही जा सकता है कि यह नाम मूलत द्रविड़ भाषा का है। यो यह भी इसमें नहीं दिया गया हो तो उहों भी यह नाम आस्ट्रिक आदि विसी भाष्य पुरानी जाति से मिला हो। साथ ही, यह भी सम्भव है कि भाष्यों के आने के समय इस नदी का नो नाम प्रचलित रहा हो भाष्यों ने तिव्य रूप में उसका समृद्धि रूप बना लिया हो। क्योंकि शादा के समृद्धीकरण की परम्परा भाष्यों में प्राचीनकान से मिलती है। उहोंने अनेक देशी विनेशी नामों (एलेज़ाउडर के तिए कोटिल्य के भ्रथागास्त्र में घोषित भाष्या है) एवं गाँओं के साथ ऐसा किया है। 'सिड, सिद, 'सित या चिर' आदि रूपों म, द्रविड़ परिवार की कई भाष्यों एवं बोलियों में एक अत्यन्त प्राचीन घातु मिलती है, जिसका प्रयोग ध्यान करें, सीचने या बहने आदि के लिए होता है। मरा अनुभान है कि द्रविड़ा को यह नाम यदि विसी पुरानी जाति से नहीं मिला था, तो इसी घातु के धाषार पर प्राचीन द्रविड़ों ने इस बड़ी नदी (तिव्य) को सिद या 'मित' नाम दिया। यह नाम इसमें बहते हुए बहुत अधिक पानी के कारण भी हो सकता है या इस कारण भी हो सकता है कि इनकी सम्भता का उस बाल में मूल कान्द्र (सिवु की घाटी) जो था इसी से सीची जाने वाली भूमि पर बसा था। ननी ही ननी मेरे विचार से तो नदी से आधार पर भाषणात्मक प्रयोग का भी तात्त्वातिक नाम कदाचित् सिव या सित ही था। सन् १६२६-२६ म पश्चिमोत्तर भारत में प्राप्त कुछ अभिलेखों से यह पता चलता है कि हड्डियां मोहनजोदहो के लोगों के स्थान का नाम उस कान में मिव या 'सित था।' इससे मेरे उक्त अनुभान वी पुष्ट होती है। एसका अर्थ यह हूँभा कि सहज

में इस नदी या प्रदेश के लिए 'सिन्धु' शब्द वस्तुत संस्कृत शब्द न होकर प्राचीन द्रविड़ शब्द 'सिद्' या 'सित्' का ही संस्कृतीकृत रूप है, जैसा कि ऊपर सकेत किया गया है। ज्ञान की वर्तमान परिधि में 'सिन्धु' शब्द को और पीछे तक ले जाना सम्भव नहीं। किन्तु यह असम्भव नहीं कि भविष्य में और प्रमाणों के मिलने पर इसे आस्ट्रिक या और किसी प्राचीन भाषा का शब्द सिद्ध किया जा सके।

द्रविड़ 'सिद्' या 'सित्' के आधार पर संस्कृतीकरण के द्वारा बने इस 'सिन्धु' शब्द का भारतीय साहित्य में प्रथम प्रयोग 'ऋग्वेद' में मिलता है। 'ऋग्वेद' में इसका प्रयोग सामान्य रूप से नदी (भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने १. १४३. ३. आदि), नदी विशेष (१० ७५) तथा कदाचित् नदी के आस-पास के प्रदेश (२. ८. ६६) के लिए हुआ है। यो जल-देवता आदि अन्य अर्थ भी है जो मूल अर्थ से बहुत दूर नहीं है। प्रदेश विशेष के अर्थ में बाद में यह 'महाभारत' तथा परवर्ती काव्य-ग्रन्थों में भी आता है। 'ऋग्वेद' में 'सप्तसिन्धव' (सात नदियाँ) तथा 'सप्तसिन्धुषु' आदि अन्य ग्रन्थों में भी यह मिलता है।

आर्यों के भारत-आगमन के पूर्व भी भारत से ईरान का सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध रहा है, जैसा कि ज्योतिष, पौराणिक कथाओं तथा अन्य क्षेत्रों में आपसी प्रभावों से स्पष्ट होता है। आर्यों के भारत-आगमन के बाद यह सम्पर्क संग्रन्थीय होने के कारण कदाचित् और अधिक बढ़ गया। ५०० ई०प० के आस-पास दारा प्रथम के काल में सिन्धु नदी के आसपास का प्रदेश ईरानी लोगों के हाथ में था। इन्हीं सम्पर्कों के साथ भारत से ईरान तथा ईरान से भारत में याजक आया-जाया करते थे। शकद्वीप के मग ब्राह्मण (जो भारत में शाकलद्वीपी ब्राह्मण कहलाए) फारस के पूर्वोत्तर भाग से ही आकर यहाँ बसे। कदाचित् याजकों के साथ हमारे 'सिन्धु' और 'सप्तसिन्धव' आदि शब्द भी ईरान पहुँचे। हमारी प्राचीन 'स' व्वनि ईरान की अवेस्ता आदि में 'ह' उच्चारित होती रही है, जैसे स० 'सप्त', अवेस्ता 'हप्त', स० 'अमुर', अवेस्ता 'अहुर' आदि। इसी कारण ये 'सिन्धु' और 'सप्तसिन्धव' आदि गव्व अवेस्ता में 'हिन्दु' (अवेस्ता में महाप्राण ध्वनियाँ नहीं होती अत 'ध' का 'द' हो गया है) और 'हप्तहिन्दव' आदि रूप में मिलते हैं। प्राचीन ईरानी साहित्य में 'हिन्दु' शब्द नदी के अर्थ में तो प्रयुक्त हुआ है, साथ ही सिन्धु नदी के पास के प्रदेश के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। उस समय ईरान बालों के पास भारत की भूमि के लिए केवल वही एक शब्द था, अत धीरे-धीरे ईरानी, भारत के जितने भी भाग से परिचित होते गए, उसे वे इसी नाम से अभिहित करते गये। इस प्रकार

विसी पाप शब्द से भ्रमाव म इस शब्द से शर्व म विस्तार होता गया और 'गिर्यु नरों से लात वी भूमि या वारात' शब्द था जो पीरे पूरे भारत का वाचक हो गया। ईरानी सप्ताह दारा (श्रावीन रूप दारयवहु रा० पारय० वसु) के अभिलेख म आना है। मूसा के राजमहल के अभिलेख म आना है। पिराहा इस यत्न हचा कुण उता हिंदौथ उता हचा हरउतिया अरिय, अर्थात् राजमहल के हाथी दात जिस पर यहाँ वाम दिया गया, कुण (रामबन अवीरीनिया) हिंदू (भारत) और हरहूंती (स० सरस्वती, बदाचित सीमा प्रान) से सापा गया। अवेस्ता प्राप्त वेदोलाद (११६) म हत हिंदू (सप्त गिर्यु) को सोलह पवित्र स्थाना म एक माना गया है। यस्तु' (५७ २६) म भी 'हिंदू' गत भारत के लिए प्रयुक्त हुआ है। प्रावीन ईरानी साहित्य म हिंदू' (यूनानी शब्द Indos यही है) हिंदू' हिंदूवम (स० सिंघु० य०=सिंघुवासी) आदि प्रत्यक्ष भाष्य प्रयोग भी मिलते हैं। हिंदू' गत म धीरे धीरे ध्रथ सम्बन्धी विवास ('पितृ प्रैग स वदवर्त भारत') तो हुआ ही साथ ही इसमें ध्वनिक विवाम भी हुआ और इसमें 'इ' पर वलाधात होने के दारणा अत्य उ' तुष्ट हो गया और इस प्रकार यह शब्द 'हिंदू' से हिंद हो गया। आगे चरकर हिंद गाँड म ईरानी के विशेषणात्मक प्रत्यय 'ई' जुड़ने से 'हिंदीक' शब्द बना जिसका अव था ट्रिंका। इसी हिंदीक का विवाम (क के लुप्त हा जाने के बारण) हिंदी' रूप मे हुआ। इस प्रकार हिंदी का मूल अव है हिंद का या 'भारतीय'। इस अव म 'हिंदी' 'गत' का प्रयोग मध्यवालीन कारसी तथा घरदी भादि म अनेक स्थलों पर हुआ है। उन्नाहरणात्मक अरबों म तमर का अव है 'सूखा यजूर'। 'सते कुछ मिलते जुलते होने के बारण उन लोगों ने 'इमली' को (जिसका परिचय उह भारत से ही प्राप्त हुआ था) तमर हिंदी' या 'तमर ग हिंदू' कहा। विगप्ति के रूप म प्रयुक्त होने के अवतिरिक्त हिंदी शब्द सना रूप म भी बहुत-सी भाषाओं म प्रयुक्त होता रहा है। उन्नाहरणात्मक कारसी तथा अरबी म हिंदा गत का प्रयोग विशेष प्रकार की तत्त्वावार के लिए (जो भारतीय इस्पात वी बनी होती थी या भारत से जानी थी) तथा तत्त्वावार के बार के लिए भी होता रहा है। मिरा म मलमल (जो भारत से जानी थी) के लिए हिंदी गत चतुर रहा है। भारतीया के काला होने वे बारण कारसी म हिंदू का अव काला भी है। कभी भारतीया मे उनकी अनवन भी थी इसी कारण कारसी म हिंदू' के गाँड अव ढाकु आदि भा है।

भाया के नियंत्र हिंदी गत के प्रयोग का इनिहाय भी कारम और अरब ही भारम होता है। घरी सभी ईसकी के कुछ पूर्व म ही ईरान म 'जरान'

ए-हिन्दी' का प्रयोग भारत की भाषाओं के लिए हाता रहा है। इस दृष्टि से कुछ उदाहरण उल्लेख्य हैं। (१) ईरान के प्रसिद्ध वादगाह नौशेरवां (५३१-५७६ ई०) ने अपने दरवार के प्रमुख विद्वान् हकीम वजरोया को 'पञ्चतन्त्र' का अनुवाद कर लाने के लिए भारत भेजा था। वजरोया ने यह काम पूरा किया। 'कर्कटक और दमनक' के आवार पर उसने इस अनुवाद का नाम 'कलीला व दिमना' रखा। इसकी भूमिका नौशेरवां के मन्त्री बुजर्ज मिहर ने लिखी। भूमिका में अन्य वातों के अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि यह अनुवाद 'जवाने हिन्दी' से किया गया है। यहाँ स्पष्ट ही 'जवाने हिन्दी' का प्रयोग 'भारतीय भाषा' या 'संस्कृत' के लिए है। (२) इस पहलवी अनुवाद से इस पुस्तक के अरबी गद्य तथा पद्य में कई नामों से कई अनुवाद हुए। हवी सदी तक के प्राय सभी अनुवादों में मूल पुस्तक को 'जवाने हिन्दी' का कहा गया है। उदाहरणार्थ ७०० ई० के आस-पास में किए गए अबदुल्ला इब्नुल मुकप्फा के अनुवाद में, इब्ने मकना के अनुवाद में, तथा 'जाविदाने खिरद' नाम से ८१३ ई० में इब्ने सुहैल द्वारा किये गए अनुवाद में। (३) 'महाभारत' के भी कुछ भागों का रूपान्तर पहलवी भाषा में ७वी सदी में किया गया था। उसमें भी मूल भाषा को 'जवाने हिन्दी' कहा गया। (४) १२२७ ई० में मिनहाजुस्सिराज भारत आया था। उसने अपनी पुस्तक 'तबकाते-नासिरी' में लिखा है कि 'जवाने हिन्दी' में 'विहार' का अर्थ 'मदरसा' है। स्पष्ट ही यहाँ 'जवाने हिन्दी' का प्रयोग संस्कृत के लिए न होकर या तो सामान्य भारतीय भाषा के अर्थ में है, या फिर भारत के 'सध्य भाग की भाषा' (कदाचित् 'हिन्दुवी' या 'हिन्दी') के लिए। (५) १३३३ ई० में इब्ने वतूता अपने 'रेहला डब्ने वतूता' में तारन नगर के सम्बन्ध में लिखते हुए लिखता है—'किताबत अला वाज अलजदरात विल हिन्दी' अर्थात् कुछ दीवारों पर हिन्दी में लिखा था। भाषा के अर्थ में स्वतन्त्र 'हिन्दी' शब्द का विदेशों में यह कदाचित प्राचीनतम प्रयोग है, यद्यपि यह नाम आज की हिन्दी के लिए न होकर संस्कृत के लिए है। (६) तैमूर लज्ज़ के पोते के काल में (१४२४ ई०) शरफुद्दीन यज्ज्वी ने तैमूर और उसके परिवार के सम्बन्ध में 'जफरनामा' नामक ग्रन्थ लिखा। इसमें एक स्थान पर आता है कि 'राव' हिन्दी शब्द है। विदेशों में 'हिन्दी भाषा' के लिए 'हिन्दी' शब्द का सम्भवत यह प्रथम प्रयोग है।

भारतवर्ष में भी भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग का प्रारम्भ मुसलमानों द्वारा ही किया गया। भारतीय परम्परा में 'प्रचलित भाषा' के लिए प्राचीन काल से ही 'भाषा' शब्द का प्रयोग होता आया है। इसका प्रयोग कम से संस्कृत, प्राकृत तथा वाद में हिन्दी आदि के लिए हुमा। यहाँ

प्रतिष्ठ उत्ताहरण इष्टव्य है— यो देरा के बनमाली शिष्याय भाषा टीका पी है (१४३८ ई० मेरित भास्वती यो भाषानीका) सस्कृत कविरा कूप जल भाषा यहता नीर' (कवीर) भादि भत जस्ति वस्था भहै लिनि भाषा चौपाई कहै (जायसी) भाषा भनति गोर भति थोरी 'भाषा निवद्ध भति मनुज (तुलसीगाम) भाषा योल न जानही जहि के बुल के दास' (केनवदास)। सस्कृत भादि के ग्रन्थों को हिन्दी टीकामो म भाषा-टीका रूप म भी पह '— उगी अथ म प्रदुर्जन हृपा है। रामप्रसाद निरचनी कृत 'भाषा योगवासिण्ड' (१७४१ ई०) १६ परवरी १६०२ को पाट विनियम कारिता द्वारा भाषा मुग्नी' की माँग की स्वीकृति तथा लक्ष्मू लाल को उका कालिज के कागजों म 'भाषा मुग्नी' यहे जाने स पता चलता है जि हिन्दी के लिए भाषा गद्द का प्रयोग भाष्यानिक बात तक चलता रहा है। सस्कृत के टीका ग्रन्थों म ता यह अथ भी चल रहा है। पुरानी पीढ़ी के पण्डित हिन्दी टीका न कहवर भाषा टीका' ही कहते हैं।

मुसलमान पर्ही भाये तो यहीं को भाषा को 'जबाने हिन्दी' कहने सा। उत्का विनेप सम्बन्ध मध्यने से था, अत धीरे घार मध्यदीय बाली के लिए उहाने जबान हिन्दी या हिन्दा जबान या हि दी नाम का प्रयोग दिया। धारम्भ म इस नाम के अत्यन्त पजाबी (कम सम्भव पूर्वी) भी बदाचित थाती थी।

'हि दी' नाम का भारत म प्रयोग कव किसन किया, यह अभी तक अनुसंधान का विषय है। प्राय यही कहा जाता है कि प्रमीर खुसरो की रचना म सबसे पहल हिन्दी शब्द हिन्दी भाषा के लिए मिलता है। मैं समझता हूँ कि भाषा के अथ म खसरो म हिन्दी शब्द का प्रयोग सदिग्य है। उहान हिन्दा शब्द का प्रयोग भारतीय मुमलमाना या भारतीय (इलिमट ३ द ५३६) के लिए हो दिया है। पर्ही बहुत विस्तार से इस विषय को लेना सम्भव नहीं है किन्तु सक्षम म कद्य बातें कही जा सकती हैं। इस सम्बन्ध म सबसे बड़ा तक तो यह दिया जाता है कि खुसरा निखित 'खालिकबारी' म हिन्दा शब्द कई बार याया है। दस्तुत खालिकबारी खुसरा की रचना नहीं है वह खुसरो के बहुत बाद के विसी खुसरो गाह की रचना है। इसके लिए वह खुसरो के बहुत बाद के विसी खुसरो गाह की रचना है। इसके लिए वह खुसरो के बहुत बाद के विसी खुसरो गाह की रचना है। जिनम से प्रमुख यह हैं। (क) प्रमीर खुसरो जम विद्वान की रचना यदि खालिकबारी हाती तो वह पर्याप्त व्यवस्थित होती, जबकि खालिकबारी बहुत हा व्यवस्थित है। अभी कुरसी शब्दों म समानार्थी हिन्दी शब्दानि दिये गए हैं तो कभी वाक्या के समानार्थी वाच्य।

भाषा सीखने की हृष्टि से भी इन वाक्यों या शब्दों में कोई एकरूपता नहीं है। जो गव्वद लिये गये हैं, उनमें सब ऐसे नहीं हैं जिनको भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए आवश्यक समझा जाय। साथ ही, प्रारम्भिक ज्ञान के लिए वहन से अत्यन्त महत्वपूर्ण शब्द छूट भी गए हैं। जो वाक्य दिये गये हैं, वे भी तुक या छन्द वैठाने की हृष्टि से लिये गये ज्ञात होते हैं। भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान की हृष्टि से उनका कोई विशेष मूल्य नहीं है। कारक, काल-रचना आदि की हृष्टि से भी वे महत्व नहीं रखते। (ख) छन्दों का विना किसी योजना के परिवर्तन और कहीं-कहीं उनमें अप्रवाह या दोप भी 'खालिकवारी' को कविवर खुसरों की रचना मानने में व्याघात उपस्थित करते हैं। (ग) बीच में आता है—‘तुर्की जानी ना’। तुर्की का विद्वान् खुसरों यह लिखे कि उसे अमुक शब्द की तुर्की नहीं आती, यह वात कल्पनातीत है। यो सभी शब्दों के लिए तुर्की शब्द दिये भी नहीं गये हैं। अतः ऐसा कथन बड़ा निरर्थक-सा लगता है। यह वात भी 'खालिकवारी' को अमीर खुसरों से सम्बद्ध करने में अडचन डालती है। (घ) शब्दों की गलतियाँ भी हैं। हिन्दी 'काना' के लिए फारसी गव्वद 'कोर' दिया गया है, जबकि 'कोर' का अर्थ 'अन्धा' होता है। 'तिदर्व' 'कुवक' और 'हस' को एक माना है, जबकि तीनों अलग-अलग हैं। 'तीतर' के लिए एक स्थान पर 'दुर्जि' तथा अन्यत्र 'लगलग' दिया गया है। 'खालिकवारी' से इस तरह की अशुद्धियों के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। ऐसी भद्दी गलतियाँ खुसरों नहीं कर सकते और न ऐसी कम योग्यता के आदमी को, जैसा कि 'खालिकवारी' का लेखक लगता है, गयासुदीन तुगलक ग्रपने लड़कों को हिन्दी पढाने के लिए पुस्तक लिखने का आदेश ही दे सकते हैं। (कहा जाता है कि गयासुदीन तुगलक के कहने से अमीर खुसरों ने उनके लड़कों को हिन्दी पढाने के लिए इसे लिखा था।) उपर्युक्त वातों को देखते हुए यह कहना उचित नहीं लगता कि 'खालिकवारी' खुसरों की रचना है। ऐसी स्थिति में 'हिन्दी' शब्द का खुसरों द्वारा प्रयोग 'खालिकवारी' के आधार पर नहीं माना जा सकता। दूसरे प्रमाण के रूप में खुसरों का एक वाक्य उद्घृत किया जाता है जिसमें उन्होंने कहा है कि मैंने फारसी के साथ-साथ हिन्दी में भी चन्द नज़रेक ही है ('जुज्बे चन्द नज़रे हिन्दी नीजे नज़े दोस्ता करदा शुदा अस्त') वस्तुन्। यह वाक्य उनके किसी भी प्रामाणिक संस्करण में मुझे नहीं मिला। 'देवल देवी टिच्च टाँ' मसनथी से कुछ लोगों ने उद्धरण दिये हैं, किन्तु वहाँ भी मूलत 'हिन्दुबी' का प्रयोग है न कि 'हिन्दी' का। इसके अतिरिक्त खुसरों द्वारा भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग का कोई अन्य प्रमाण देखने में नहीं आया। यो भाषा के अव-

पाठों का अध्ययन

कृतिपथ उदाहरण है— रो देव क बनमाली शिख्याय भाषा टीका
की है (१४३८ ई० म लिखित भास्यतो की भाषा-टीका) सस्तुत कविरा कृप
जल भाषा यहता नीर (बबोर) मादि अत जसि कथ्या भ्रहे लिखि भाषा
चोपाई कहै (जायसी) भाषा भनति मोर मति थोरी भाषा निवद मति
मञ्जुल (तुलसीदास) भाषा बोल न जानही जेहि के कुल के दास' (वेशवदास)।
उसी अथ म प्रयुक्त दृष्टा है। रामप्रसाद निरञ्जनी हृत 'भाषा योगवासिष्ठ
(१७४१ ई०) १६ फरवरी १८०२ रो फाट वित्तियम बालिज द्वारा भाषा
मुंगी की माँग की स्वीकृति तथा लल्लू लाल को उक्त कालिज के बागज़ों म
भाषा मुंगी कहे जाने स पता चलता है कि हिंदी के लिए भाषा शा॒ का
प्रयोग आधुनिक काल तक चलता रहा है। सस्तुत के टीका प्रायों मे तो यह
अब भी चल रहा है। पुरानी पीढ़ी के पण्डित हिंदी टीका न बहकर भाषा
टीका ही बहते हैं।

मुसलमान यही भाषे तो यही की भाषा को जबाने हिंदी कहने लगे।
उनका विशेष सम्बन्ध मध्यदेश स पा अत धीरे धीरे मध्यदेशीय बोली के लिए
उ होने जबाने हिंदी या हिंदी जबान या हिंदी नाम का प्रयोग किया।
आरम्भ म इस नाम के अत्यंत पजाबी (कम से-कम पुर्वी) भी कदाचित्
भाती थी।

हिंदी नाम का भारत म प्रथम प्रयोग कब किया यह अभी तक
मनुस-बान का विषय है। प्राय यही वहा जाता है कि अमीर खुसरो की
रचना म सबसे पहल हिंदी शा॒ हिंदी भाषा के लिए मिलता है। मैं
समझता हूँ कि भाषा के अथ म खुसरो म हिंदी शा॒ का प्रयोग सन्तुष्ट है।
उ होन हिंदी शा॒ का प्रयोग भारतीय मुसलमानों या भारतीय (इतिहा-
स ५ ५३६) के लिए ही किया है। यही बहुत विस्तार से इस विषय के
लेना सम्भव नहीं है कि तु सक्षम म बद्य बातें कही जा सकती हैं। इस सम्बन्ध
म सबसे बड़ा तक तो यह किया जाता है कि खुसरो लिखित सालिकबारी म
हिन्दी' शा॒ कई बार आया है। दस्तुत सालिकबारी खुसरो की रचना नहीं
है वह खुसरो के बहुत बाद के विसी खुसरो शाह की रचना है। इसके लिए
कई तक दिये जा सकते हैं जिनम स प्रमुख ये हैं। (३) अमीर खुसरो जम
विद्वान बी रचना यदि सालिकबारी होती तो वह पर्याप्त व्यवस्थित होनी,
जबकि सालिकबारी बहुत ही अध्यवस्थित है। कभी प्रारसी शा॒ के
समानार्थी हिंदी शा॒ दि दिय गए हैं तो कभी बाष्पा के समानार्थी बाष्प।

भाषा सीखने की हृष्टि से भी इन वाक्यों या शब्दों में कोई एकरूपता नहीं है। जो शब्द लिये गये हैं, उनमें सब ऐसे नहीं हैं जिनको भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए आवश्यक समझा जाय। साथ ही, प्रारम्भिक ज्ञान के लिए वहुन् से अत्यन्त महत्वपूर्ण शब्द हृष्टि भी गए हैं। जो वाक्य दिये गये हैं, वे भी तुक या छन्द बैठने की हृष्टि से लिये गये ज्ञात होते हैं। भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान की हृष्टि से उनका कोई विशेष मूल्य नहीं है। कारक, काल-रचना आदि की हृष्टि से भी वे महत्व नहीं रखते। (ख) छन्दों का विना किसी योजना के परिवर्तन और कही-कही उनमें अप्रवाह या दोप भी 'खालिकवारी' को कविवर खुसरों की रचना मानने में व्याधात उपस्थित करते हैं। (ग) वीच में आता है—‘तुर्की जानी ना’। तुर्की का विद्वान् खुसरों यह लिखे कि उसे अमुक शब्द की तुर्की नहीं आती, यह वात कल्पनानीत है। यो सभी शब्दों के लिए तुर्की शब्द दिये भी नहीं गये हैं। अत ऐसा कथन बड़ा निरर्थक-सा लगता है। यह वात भी 'खालिकवारी' को अमीर खुसरों से सम्बद्ध करने में अद्वचन डालती है। (घ) शब्दों की गलतियाँ भी हैं। हिन्दी 'काना' के लिए फारसी शब्द 'कोर' दिया गया है, जबकि 'कोर' का अर्थ 'अन्धा' होता है। 'तिदर्व' 'कुवक' और 'हस' को एक माना है, जबकि तीनों अलग-अलग हैं। 'तीतर' के लिए एक स्थान पर 'दुर्जि' तथा अन्यत्र 'लगलग' दिया गया है। 'खालिकवारी' से इस तरह की अशुद्धियों के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। ऐसी भद्दी गलतियाँ खुसरों नहीं कर सकते और न ऐसी कम योग्यता के आदमी को, जैसा कि 'खालिकवारी' का लेखक लगता है, गयामुद्दीन तुगलक अपने लड़कों को हिन्दी पढाने के लिए पुस्तक लिखने का आदेश ही दे सकते हैं। (कहा जाता है कि गयामुद्दीन तुगलक के कहने से अमीर खुसरों ने उनके लड़कों को हिन्दी पढाने के लिए इसे लिखा था।) उपर्युक्त वातों को देखते हुए यह कहना उचित नहीं लगता कि 'खालिकवारी' खुसरों की रचना है। ऐसी स्थिति में 'हिन्दी' शब्द का खुमरों द्वारा प्रयोग 'खालिकवारी' के आवार पर नहीं माना जा सकता। दूसरे प्रमाण के स्प में खुसरों का एक वाक्य उद्घृत किया जाता है जिसमें उन्होंने कहा है कि मैंने फारसी के साथ-साथ हिन्दी में भी चन्द नज़ेर ही है ('जुज्ज्वे चन्द नज़ेरे हिन्दी नीज नज़ेरों स्तोता करदा शुदा ग्रस्त') वरन्तु यह वाक्य उनके किसी भी प्रामाणिक सस्करण में मुझे नहीं मिला। 'देवल देवी शिज्ज छाँ' ममनवी से कुछ लोगों ने उद्धरण दिये हैं, किन्तु वहाँ भी मूलतः 'हिन्दुबी' का प्रयोग है न कि 'हिन्दी' का। इसके अतिरिक्त खुसरों द्वारा भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग का कोई अन्य प्रमाण देखने में नहीं आया। यो भाषा के अर्थ

म 'हिंदुओं या हिंदुई' सब्द का प्रयोग शुश्रावे म वर्द्ध स्पष्टता पर मिलता है। एक स्वरूप पर यह कहा। ही—तुर रि इन्डियम मन हिंदुओं गोपन जदाव द्वारा ही हिंदुओं तुर है हिंदुओं म वाद नहीं है। उनकी ममतविद्या म भी यह घन अकाधिक इसमें पर आया है। इस प्रवार शुश्रावे के द्वारा हिंदु भाष्य के प्रयोग की याद यहाँ प्रामाणिक तरीं भाव होती। ही यह प्रवार है कि इनका कुछ ही वाद इस वाद का भावाव के प्रयोग हो गया था।

यह प्राय वहाँ जाता है कि हिंदू और हिंदुओं वाले एक ही भाष्य रखते थे और एक ही भाष्य में प्रयुक्त होता था। किंतु मुझे यह बात ठीक नहीं जात होती। एक ही भाषा में तिन विना किसी विवरण करते ही तीन भाषाएँ वाले जाय जल्लान होता थोर विलम्बित एक ही भाष्य में चलना कुछ जवाब नहीं। मुझे एक जागता है कि प्रारम्भ में ये दावा शब्द भिन्नार्थी थे। उपर यहाँ गया है कि शुश्रावे में हिंदू शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानों के लिए किया है और 'हिंदुओं' याद का प्रयोग मध्यभौमीय भाषा में लिए। यह हिंदुओं शब्द परम्परा 'हिंदुओं' या हिंदुई है। हिंदू+इ=मर्यादित हिंदुओं की भाषा। हिंदुओं याद के प्रयोग में कुछ दिन बाद हिंदी' (मर्यादित भारतीय मुसलमानों) की भाषा में लिए वदाचित् हिंदी याद चल पड़ा। हिंदुओं या हिंदूओं को बहु भाषा थी जो 'गोरसनी' प्रभाषण से विस्तित हुई थी और मध्यप्रदेश में सहा रूप से प्रयुक्त हो रही थी। हिंदू भाषाति भारत के मुसलमानों ने भी इसे प्रयन्त्रया, कि तु रवभाषत परमिक तथा मास्टकिक (पान पान रहने सहन पड़ा जाता) वारस्तों से उनकी भाषा में गरबी कारसी तुर्की के गव्व भाषिक थे। इसी भाषा के लिए प्रारम्भ में वदाचित् हिंदी याद चला। इस प्रवार 'हिंदूओं' याद पुराना है और हिंदी अपेक्षाकृत बाद या। राय ही मूलत दावा में कुछ अंतर भी है। मुझ हिंदी में लिखने वाले पुराने अविद्यों तथा संस्कृतों ने सम्भवत इसी वारसा पर्यन्ती भाषा को प्राय हि इवा हो रहा है— तुरकी गरबी हिंदूओं भाषा जेतो आहि। जाम मारण प्रम का सदे सराहें ताहि॥ (जायसी)। श्रीपरकासदास (१६६६ ई०) के प्रमवेर के दीवान को लिखे गए पर, तुरकी के फारसी पञ्चनामे, जटमल वो गोरा बादल की वजा तथा इशा अल्ला सौ बी 'रामी कतकी बी बहानी म भा हिंदूओं याद हा मिलता है हिंदी' नहीं।

किंतु ऐसा लगता है कि यह भेद भविक दिनों तक चला नहीं। गरबी कारसी-तुर्की के बहुत से भाषण फहम गव्व हिंदूओं में आ गये, और इसपर और हिंदुओं एक भारतीय बातावरण के प्रभाव से पर्याप्त भारतीय गव्व मुश्य

लमानों की भाषा में भी गृहीत हो गये तथा हिन्दी-हिन्दवी दोनों ही शब्द प्राय (किन्तु पूरणत नहीं) समानार्थी हो गये। यो कुछ विशेष प्रयोगों में इन शब्दों के मूल अर्थ भी लगभग १८वीं सदी उत्तरार्द्ध तक या उसके भी बाद तक चलते रहे। हातिम (१८ वीं सदी उत्तरार्द्ध) ने 'दीवानेजादे' के दीवाचे में लिखा है— 'जगन हर दयार ता वहिन्दवी, कि आरा भाका गोवन्द...'। इसमें स्पष्ट है कि 'हिन्दवी' और भाषा प्राय एक थी। उसी के कुछ दिन बाद 'तजकिर· मखजन उल्गरायव' में लिखा मिलता है—'दर जवाने हिन्दी कि मुराद उर्दू अस्त' अर्थात् हिन्दी में जिससे मनलव उर्दू है। किन्तु जैसा कि संकेत किया गया है तथा आगे भी कुछ उदाहरणों से स्पष्ट होगा, इस प्रकार का अन्तर सर्वत्र नहीं किया गया है। श्री चन्द्रवली पाण्डेय ने यह दिखाने का (उर्दू का रहस्य, पृष्ठ ४०-४८) प्रयास किया है कि 'हिन्दवी' हिन्दुओं की भाषा नहीं थी। इसी आधार पर डॉ० उदयनारायण तिवारी (हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, प्रथम सस्करण, पृष्ठ १८४) ने भी कदाचित् इसे स्वीकार कर लिया है, किन्तु पाण्डे जी के तर्क वस्तुत उनके मत को प्रमाणित करने में समर्थ नहीं दीखते।

'हिन्दी' शब्द का प्रयोग, जब भी और जिसके भी द्वारा हुआ हो, इसके अविच्छिन्न प्रयोग की प्राचीन परम्परा 'दक्षिणी हिन्दी' के कवियों एवं गद्यकारों में ही मिलती है उदाहरणार्थ (१) जाही मीराजी (१४७५ ई०)—'यो देखत हिन्दी बोल', (२) गाह बुहनुदीन (१५८२ ई०)—'ऐव न राखे हिन्दी बोल' ('इशादनामा') में, (३) मुल्ला बजही (१६३४५ ई०)—'हिन्दोस्तान में हिन्दी जवान सो' ('सवरस' की भूमिका में), (४) जुनूनी (१६६० ई०)—'मै इसको दर हिन्दी जवाँ इस वास्ते कहने लगा' (मीलाना रूम के 'मोजजा' के अनुवाद में)। इसके साथ-साथ 'हिन्दवी' शब्द भी प्रयुक्त हो रहा था। १७ वीं सदी में 'हिन्दी' शब्द उत्तर भारत में भी अविच्छिन्न रूप से मिलते लगता है। उदाहरणार्थ दाफी दाँ के 'मुन्तखबुल्लवाव' (१७ वीं सदी उत्तरार्द्ध), मिर्जा दाँ के 'तुहफनुल हिन्द' (१६७६ ई०), वरकतुल्ला पेमी के 'अबारफे हिन्दी' (लगभग १७०० ई०) तथा 'मग्रासिल उमरा' (१७४२-१७४७) आदि में। हिन्दी कवियों में १७१३ ई० में मूफी कवि नूर मुहम्मद ने लिखा है—'हिन्दू मग पर पाँव न राख्या। का जो बहुतै हिन्दी भाख्या॥' इससे संकेत यह मिलता है कि इम काल तक आते-आते 'हिन्दी' शब्द हिन्दुओं की भाषा की ओर झुक गया था और इसमें से हिन्दुओं की शब्दावली निकालकर, फारमी शब्दों के आधार पर उर्दू की नीव पड़ रही थी। १८०० ई० के लगभग मुरादगाह लिखते हैं—

निभाइ पारमी के उल्लङ्घन को
रिंग पुर मारवत रिंगी जबो का
प्रगाइ पारमी का जब निरानी
पारमा धरम हिंनी के ढासा।

इस प्रश्न जगा रिंग पागे दोगे हिंने पाहन का प्रयोग इतार विश्व
गामार मध्यों में तमगंगा १६ वीं राई के मध्य तक मिलता है।

यह स्पष्टात्मक है कि हिंनी का प्रयोग यद्यपि मध्येंग की
जा भाषा के तिंग पर रहा या और यह उत्तर भारत से दक्षिण भारत में भी
जा पूर्णा का नितु जगरा स्थीरत भाषामात्र में प्रवर्तन के बान तक नाम नहीं
मिलता। अमीर रुसरों के प्रपने प्रथा 'तुंसिपर' में उस काल की प्रतिकृ
भाषार नामार्थों (जिन्हीं जाहोरों पास्तीरी यगाती गोड़ी गुजराती तिलगी
भाषारी (बालणी) भूम्य समुद्री, यवधी देहलवी) का उल्लेख किया है जितु
इनमें हिंनी का रिंनी नहीं है। मवुलफजल की भाइन मववरी' में दी
गई वारह भाषामात्रों (देहलवी यगाली मुलतानी मारवाड़ी गुजराती तिलगी
मरहटी बनगिवी, तिंगा, मणगानी, बसूचिस्तानी बासमीरी) में भी इसका
नाम नहीं माता। ही एक यात्र प्रवर्तन विचार है। खुसरो और मवुलफजल
दोनों ही न देखते का उल्लंघन किया है और मध्यप्रदेश की कोई भाषा नहीं
ली है। इसका आप्य पह हुआ रिंग पुरारो से लकर मवुलफजल के बाल तक
इस भाषा का प्राचीनतम नाम शायद देहलवी ही था। हिंदवी हिंनी नाम
क्षमाचित् ऐवल साहित्य तक ही सीमित थे।

कपर यह सर्वेत किया जा चुका है कि 'हिंदी' गहन मूलत मुसलमानों की
हिंनी के निए प्रयुक्त होकर, किर हिंदुओं की भाषा की ओर भा रहा था।
जितु १६ वीं राई के मध्य के प्रव तक उदू के लख्नवी में प्राप्य इसका प्रयोग
उदू या रेल्ला के समानार्थी हृष म चल रहा था। हातिम (१६वीं राई
उत्तरार्द्ध) नागिल, सोना (१७१३ १७५० ई०) भोर (१७१६ १७५८ ई०)
भादि ने एकाधिक बार प्रपने शेरों को हिंनी शर कहा है। गालिव मे
प्रपने हातों में उदू 'हिंदी' रेल्ला को कई स्थलों पर समानार्थी गों के रूप
में प्रयुक्त किया है। १८०३ ई० म लिपित तज़िर भलाजन उलग्गरायब म
आता है— दरख्तवाने हिंनी कि मुराद उदू भरत। फोट विलियम कालेज के
हि ने अध्यापक गिलविस्ट के तातों से पता ललता है कि वे हिंनी, हिंदुस्तानी
उदू तथा रेल्ला भादि को समानार्थी समझते थे। जितु उनको हृषि में इनका
परिनिवित्त रूप भरवी कारबी मिलत था, भर्यात् उनकी हिंनी भाज की
हृषि से उदू थी। १८२० में उनकी एक विताव निकली, जिसका नाम

या—‘कवानीने-सर्फ व-नह्वे हिन्दी’। पुस्तक पर ग्रंथेजी मे लिखा था—Rules of Hindoo Grammar। पुस्तक के भीतर सर्वत्र ही ‘हिन्दी या रेखते’ शब्द का प्रयोग है, किन्तु व्याकरण उर्दू का है। इसकी भाषा भी अरवी-फारसी शब्दों से लदी है, जैसा कि नाम (कवानीने-सर्फ) से भी स्पष्ट है। आशय यह है कि सन् १८०० के आसपास ‘हिन्दी’ शब्द का प्रयोग ‘उर्दू’ तथा ‘रेखता’ के लिए हो रहा था।

‘हिन्दी’ के आधुनिक अर्थ मे प्रयुक्त होने का इतिहास बड़ा विचित्र है। पीछे के नूर मुहम्मद तथा मुरादशाह के उद्धरणों से इस बात का कुछ सकेत मिलता है कि कभी-कभी उसका प्रयोग हिन्दुओं की भाषा या अरवी-फारसी के कठिन शब्दों से रहित मध्यदेशीय भाषा के लिए होता था, किन्तु ऐसे प्रयोग प्राय अपवाद स्वरूप है। प्राय ‘हिन्दी’ का प्रयोग उस भाषा के लिए मिलता है, जो अरवी-फारसी से भरती जा रही थी, या जो वह भाषा थी, जो बाद मे विकसित हो कर ‘उर्दू’ कहलाई। जनता मे १६ वीं सदी के प्राय मध्य तक कुछ अपवादों को छोड़कर ‘हिन्दी’ का इसी अर्थ मे प्रयोग मिलता है।

आधुनिक अर्थ मे ‘हिन्दी’ शब्द के व्यापक प्रयोग का श्रेय मूलतः अग्रेजो को है। १८०० ई० मे कलकत्ते मे फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। वहाँ गिलक्रिस्ट हिन्दी या हिन्दुस्तान के अध्यापक नियुक्त हुए। यदि गिलक्रिस्ट ने मध्यप्रदेश की वास्तविक प्रतिनिधि भाषा को, जो न तो अधिक अरवी-फारसी की ओर भुकी हुई थी और न सस्कृत की ओर, अपनाया होता, तो आज हिन्दी-उर्दू नाम की दो भाषाएँ न होती और हिन्दी भाषा एव उसके साहित्य का नक्शा कुछ और ही होता। किन्तु उनकी हिन्दी (जैसा कि उनके हिन्दी-व्याकरण के नाम ‘कवानीने-सर्फ-व-नह्वे हिन्दी’ से स्पष्ट है) बहुत ही कठिन उर्दू थी। वे सन् १८०४ तक अध्यापक रहे, अत वही भाषा हिन्दी कही जाती रही। किन्तु वहाँ के कर्मचारियों का ध्यान इस बात की ओर गया कि प्रतिनिधि भाषा वह नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ कि ‘हिन्दुस्तानी’ शब्द तो अरवी-फारसी शब्दों से युक्त गिलक्रिस्ट की हिन्दी (जो वस्तुत उर्दू थी) के लिए प्रयुक्त होने लगा और ‘हिन्दी’ शब्द हिन्दुओं मे प्रचलित सस्कृत मिश्रित भाषा के लिए। इस अर्थ मे ‘हिन्दी’ शब्द की परम्परा प्राप्त साहित्य मे कही-कही ही मिली है। सम्भव है, जनता मे उस समय ‘हिन्दी’ नाम का कुछ अधिक प्रचार रहा हो, जहाँ से अग्रेजो ने उसे लिया। इस नवीन अर्थ मे ‘हिन्दी’ का स्पष्ट रूप से लिखित प्रयोग कदाचित् सर्वप्रथम कैप्टन टेलर ने किया। १८१२ मे फोर्ट विलियम कॉलिज के वार्षिक विवरण मे वे कहते हैं—“मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेखता का जिक्र कर रहा हूँ जो फारसी लिपि मे

लिंगी जाती है मैं हिन्दी का जित्र नहीं कर रहा जिसकी अपनी लिपि है जिसमें भरवी फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आकाश में पहरा ३१ मारतवय के समस्त उत्तर पश्चिम प्रान्त की भाषा था (Imp. Cal. Records Vol. IV पृ० २७६ ३३)। इस उद्दराल से मह स्पष्ट है कि उस समय तक हिन्दी' शब्द इस भव्य में बहु से कम कॉलिज व लोगों में कुछ समझ जान लगा था, किन्तु यहूँ अधिक नहीं बयाकि उसे हिन्दूस्तानी पा रहा से अलग स्पष्ट करने की आवश्यकता अभी समाप्त नहीं हुई थी, जसा कि टेलर वे रथन से स्पष्ट है। उक्त कॉलिज में हिन्दी उन् (या हिन्दूस्तानी) का यह अलगाव बढ़ना ही गया। १८२४ में उक्त कॉलिज के हिन्दी प्राक्तन विलियम प्राइस ने स्पष्ट जाना में हिन्दी के लगभग सभी शब्दों के समृद्ध होने की बात कही तथा हिन्दूस्तानी के शब्दों के भरवी फारसी के होने का। १८२५ में कॉलिज के वायिक अधिकारी ने भाषण में लाड ऐम्हट न हिन्दी भाषा को हिन्दूओं से सम्बद्ध बहा तथा उन् को उनके लिए उतनी ही दिल्ली कहा, जितनी 'भर्वी'। इस प्रकार यह जान जिस नीयत से भी किया हा १६ वीं सदी के प्रथम २५ वर्षों में एक ओर हिन्दी' या हिन्दी-देवनागरी संस्कृत हिन्दू गान्धी को जोड़ दिया, तो दूसरी ओर हिन्दूस्तानी रहा या उन् फारसी लिपि भरवी फारसी मुगलतमान गान्धी को। सम्भवत गान्धी ने ही यारे पर १८६२ में हिन्दी उन् का प्रश्न गिरा के संयोजकों वे समन आया और इस प्रकार १६ वीं सदी के तासर चरण में हिन्दी भाजकल वे अन् म निश्चिन रूप से स्वीकृत हो गई। उन् ओर हिन्दी भाषा को लकर उस बात में जितनी गमानमी थी, इसके चित्र 'सितारे हिं' ओर भारत 'उपायि' की अतिकथा में मूर्तिमान है।

यादित्पनी—१ 'गाना' को भी सहस्रन के पर्णित सहस्रत गान्धी भानन है तथा 'गान्धी' अपने अद्यवर्तनया गान्धीति का गम+गन+दाप, रूप में उससी घुलत्ति देने हैं। किन्तु अब यह प्राप्त स्वीकृत तथ्य है कि यह 'गान्धी' भूलत सहस्रत का नहीं है और भारत के प्राचीन निवातियों से ही आयो वा जिता है। २ जरनल आफ लोरिप्पल रिटाय भडास, अक ११, पृ० २४६। ३ प्राचीन ध्वनी साहित्य में 'गिन्तु' (परम्परा साहित्य में इन्तु) को देखो वा देन रहा गया है यह भी हिन्दु ही है। भारत में भारत ए लिए प्राचीनतम नाम 'भातभूमि' (अथव वड) है। भारतवर्ष (महाभारत) भारत (विद्यु पुराण) भरत राष्ट्र ज्ञानीय (बोद्ध धर्म) हुमारी द्वारा (परम्परा पुराल) वार में

इस तरह नामों के अध्ययन में एक तरफ तो भाषाविज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र, संस्कृति, भूगोल आदि की जानकारी अपेक्षित होती है, और दूसरी ओर शब्दों का अध्ययन भाषा, इतिहास, समाजशास्त्र, संस्कृति तथा प्राचीन भूगोल आदि के अध्ययन के लिए वडी उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करता है। ●

(पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी का शेष)

मिलते हैं। 'हिन्द' पर आधारित नाम भारत में प्रथम बार कदाचित जैन ग्रन्थ 'निशीय चूणि' में 'एहि हिन्दुगदेसं वच्चाओ' (७ वीं सदी अन्तिम चरण) में आता है। ४. यही 'हिन्दी' शब्द अरवी से होता, ग्रीक में 'इन्दिके', 'इन्दिका' लैटिन में 'इन्दिया' तथा अङ्ग्रेजी आर्द्ध में 'इण्डिया' हुआ। चीनी साहित्य में कभी-कभार प्रयुक्त 'इन्तुको' भी यही है। ५. यही शब्द अङ्ग्रेजी में टैमरिण्ड (Tamrind=इमली) है। ६. ज्ञासन के लोगों में इस रूप में प्रयुक्त होने पर भी 'हिन्दी' शब्द उर्दू के अर्थ में साहित्यिकों तथा जनता आदि में १६ वीं सदी के लगभग मध्य तक चलता रहा। गालिब ने अपने कई पत्रों में हिन्दी, उर्दू और रेखता को प्रायः समान अर्थों में प्रयुक्त किया है।

अध्याय ७

प्रयोग विज्ञान

प्रयोग भाषा वा प्राण है। बिना उसपे भाषा के अस्तित्व का बाई अथ नहीं। उसी प्रयोग के विवेचन के लिए यहीं प्रयोग विज्ञान नाम वा प्रयोग विज्ञान रहा है। मैं नहीं कह सकता कि भाषाज्ञान के पछित भाषा के विज्ञान के सदृश म इस नये नाम से सहमत होगे भी या नहीं या हुगे भी तो कहीं तब ?

यद्यों तो प्रयोग विज्ञान म भाषिक इकाई के सारे प्रयोगों को समाहित करने वाली सीमाप्ति को बासी विस्तार दिया जा सकता है किंतु यहीं भाषा या व्याक्य म "गद्य" के प्रयोग के अध्ययन तक इसे सीमित रखा जा रहा है। दूसरे शब्दों म प्रयोग विज्ञान "गद्य" का विज्ञान है।

प्राय सभी भाषाओं म दो प्रकार के "गद्य" का प्रयोग होता है। एक तो विसी भाव, गुण, प्राणी, वनस्पति या वस्तु आदि का व्याप्ति करने हैं जसे धार्याई, बुरा, भावमी, गुलाब, लालटेन आदि और दूसरे वेष्टन व्याकरणिक व्याय करते हैं जसे न, से को म, पर आदि। वभी कभी पट्टे प्रकार के शब्द। को पूण शब्द वहत हैं जिनके भीतर अथ होता है तथा दूसरे प्रकार के शब्द जो रिक्त "गद्य" नाम दिया जाता है जिनके उस प्रकार का अथ इनम नहीं होता। यो इनबाब मह भाषाम गही कि ये गद्य निरर्थ होते हैं। भाषा के प्रयोगना को दोनों प्रकार वे शब्दों का प्रयोग करना यड़ना है, और दोनों ही की प्रयोग सबधी घण्टी अलग अलग समस्थाएँ हैं।

पर्यायी में सूक्ष्म अत्तर

प्रथम वर्ग के शब्दों के प्रयोग के सबध म यो तो कई प्रकार वी समस्थाएँ हैं किन्तु क्लावित सरसे महत्वपूरण है तथाकवित पर्याय "गद्य" के भाषणी

सूक्ष्म अंतर को समझने की। पीछे 'वहुत' और 'अधिक' का प्रश्न उठाया जा चका है। वहुत से लोग 'वहुत' और 'अधिक' में सूक्ष्म अंतर को न समझ पाने के कारण

'वहुत दिनो से तुम्हारा समाचार नहीं मिला।'
के स्थान पर

'अधिक दिनो से तुम्हारा समाचार नहीं मिला।'

जैसे प्रयोग करते हैं, किन्तु यह प्रयोग अशुद्ध है। पीछे इसे विस्तार से देखा जा चुका है। यहाँ कुछ और शब्दों को लेकर प्रयोग के इस पक्ष पर विचार किया जा रहा है।

क्रोधी-क्रोधित—दोनों ही शब्द 'क्रोध' के आवार पर बने हुए विशेषण हैं, किन्तु दोनों के प्रयोगों में अंतर है। 'क्रोधी' शब्द का प्रयोग किसी की आदत बतलाने के लिए किया जाता है, जबकि 'क्रोधित' का किसी विशिष्ट समय में किसी का 'गुस्से होने' के लिए। उदाहरणार्थ

राम वहुत क्रोधी है।

राम वहुत क्रोधित है।

पहले मेरा के स्वभाव का वर्णन है, तो दूसरे मेरे उसकी वर्तमान मानसिक दशा का।

आहट-टोह—दोनों ही शब्दों का प्रयोग 'लेना' किया के साथ प्राय. होता है, किन्तु 'टोह लेना' का प्रयोग खुद आगे बढ़कर जानने के लिए होता है, जबकि 'आहट लेना' के प्रयोग के लिए खुद जाना या आगे बढ़ना आवश्यक नहीं है।

गीला-भीगा—अर्थ की हृष्टि से दोनों पर्याय हैं, किन्तु दोनों के प्रयोग में अंतर है। 'मैं भीगा हूँ' तो कहा जा सकता है किन्तु 'मैं गीला हूँ' नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार आप 'भीगी बिल्ली' तो बन सकते हैं, 'गीली बिल्ली' नहीं बन सकते। किन्तु 'मेरे कपड़े गीले हैं' और 'मेरे कपड़े भीगे हैं', दोनों ही प्रयोग चलते हैं। लगता है कि जानदार के लिए 'भीगा' ही आता है किन्तु वेजान के लिए दोनों आते हैं। ये दोनों के अर्थ में भी कुछ अन्तर है। 'गीला' की तुलना मेरे 'भीगा' में अधिक गीले या भीगे होने का भाव है। किन्तु प्रयोग में अर्थ के इस अन्तर पर कदाचित् लोग अधिक ध्यान नहीं दे रहे हैं, हाँ ऊपर सकेति प्रयोग पर पूरा ध्यान देते हैं।

होशियार-चालाक—'होशियार' का प्रयोग कुशलता व्यक्त करने के लिए होता है किन्तु 'चालाक' के प्रयोग में धूर्ता की गव है। कुछ लोगों के प्रयोगों

म 'होगियार' में भी एक पूत्रा का भाष मिराह है कि-तु उनके प्रयोग में भी 'चालाक' भासाहा अधिक पूत्र है। सामाजिक किसी का होगियार होता परम्परा माना जाता है कि-तु चालाक होना बुरा। रोगी होगियार डॉक्टर के पर्याजों जाना और चालाक डॉक्टर का सवना चाहता है।

सारल-सुगम—पहला भासान—है और दूसरा 'सारलता में जाने योग्य'। इसीनिंग काव्य को सारल तथा माग का 'सुगम' कहना अच्छा प्रयोग है। यों सारल माग भी घत जाता है, किन्तु 'सुगम काव्य' नहीं चल सकता।

पारण-बजह—दोनों पर की हाफ्ट से एकार्थी हैं, किन्तु प्रयोग में थोड़ा भातर है। 'इसका बारण क्या है?' 'इसकी बजह क्या है?' दोनों प्रयोग ठीक हैं। किन्तु भाष किस बारण भाए प्रयोग कभी-कभी सुनाई पड़ जाता है परतु 'भाष दिस बाह भाए प्रयोग नहीं' मिलता। 'बजह' के बाद ऐसी रचना प स वा भाना भवद्यप है पर बारण के बाद 'से' भाता भी है और नहीं भी भाता। इन दोनों में न भारे वा भनुपात्र वदाचित् अधिक है। यो किस बारण के स्थान पर किस लिए का प्रयोग अधिक चलता है।

घमड गव—घमड निदनीय है किन्तु गव अच्छा भी होता है। मुक्ते अपने देश पर गवें हैं। घमड प्राय चकितिगत बातों पर होता है। गव सामूहिक पर भी।

ठोड़-सही—ठोड़ उचित या बाजिब के लिए प्रयुक्त होता है कि-तु 'सही' गलत का उल्टा है। सवाल गलत है या 'ठीक' की तुलना में सवाल गलत है या सही अधिक अच्छा प्रयोग है।

अरबन खटपट—पहले का प्रयोग ऐसी स्थिति को 'यक्त करने के लिए होता है जब दो (व्यक्ति या वग) में बनती न हो। जिनमें अनवन होती है वे प्राय एक दूसरे से अलग रहते हैं बोलते चालत नहीं या सपक नहीं रखत। इसके विपरीत खटपट वा प्रयोग यह व्यक्त करने के लिए होता है कि दोनों में सपक या बोलचाल है कि-तु थोड़ा बहुत भगड़ा है, पटती नहीं। इस तरह भगड़ा खटपट से आगे बीज़ है।

व्याकरणिक शब्दों का ठीक प्रयोग

उपर स्थ का द्वौतन बरने वाले सार्वों की बात की गई। अब बात या व्याकरणिक काव्य बरने वाले 'द्वौरों' की जा रही है। यहाँ सारे व्याकरणिक शब्द नहीं लिए जा सकते। उदाहरण के लिए नेवल कुछ बारक चिह्न लिए जा सकते हैं।

हमारे यहाँ व्याकरण की परपरागत शिक्षा में इतना बतला कर छुट्टी पा ली जाती है कि 'ने', कर्त्ता कारक का चिह्न है, 'को' कर्म-सम्प्रदान का, तथा 'से' करण-अपादान का, इत्यादि। वस्तुत भाषा का इससे विशेष सम्बन्ध नहीं कि कौन किस कारक का चिह्न है, विशेष सम्बन्ध इससे है कि किसका कहाँ-कहाँ प्रयोग होता है। या कहाँ प्रयोग ठीक है और कहाँ गलत। इस प्रस्तर में यह भी उल्लेख्य है कि ऐसे प्रयोग भी सामान्य हैं जहाँ कारक-चिह्न का प्रयोग अपने कारक से इतर कारक के लिए होता है। उदाहरण के लिए 'को' कर्म-सम्प्रदान का चिह्न माना जाता है। किन्तु

'राम आज रात को घर जा रहा है।'

मेरे यह अधिकरण कारक मेरे आया है।

इसी तरह 'से' का भी प्रयोग करण-अपादान से अलग मिलता है तुम वडे ठीक समय से आ गये।

'ने' सामान्यत सकर्मक घातुओं के भूतकालिक कृदंत से बनने वाले सामान्य भूत (उसने खाया), आसन्न भूत (उसने खाया है) सदिग्धभूत (उसने खाया होगा, उसने खा लिया होगा) तथा पूर्णभूत (उसने खा लिया है) क्रिया के कर्ता के साथ आता है। भूलना, लाना, बोलना, बकना यद्यपि सकर्मक हैं किन्तु इनके साथ 'ने' नहीं आता, किन्तु दूसरी ओर ढीकना, हँसना (मैंने हँस दिया) मुस्कराना (उन्होंने मुस्करा दिया), नाचना (मोहन ने उसके साथ नाचा) जैसी अकर्मक क्रियाओं के साथ भी इसका प्रयोग चलता है। 'समझना' के साथ कुछ लोग 'ने' का प्रयोग करते हैं तथा कुछ नहीं करते। कुछ लोग 'को' के स्थान पर 'ने' का प्रयोग करते हैं (मैंने जाना है, राम ने दो) जो अशुद्ध है।

'को' सामान्य प्रयोगों के अतिरिक्त निम्नांकित रूपों मेरे आता है।

- (क) कहने को वह भी आदमी है।
- (ख) नीकर को जाना पड़ा।
- (ग) वर्षा होने को है।
- (घ) मैं शनिवार को चला जाऊँगा।

कुछ लोग 'राम को चार बच्चे हैं' जैसे प्रयोग करते हैं, जब कि वस्तुत 'राम के चार बच्चे हैं' प्रयोग ठीक है।

'मैंने शेर देखा' और 'मैंने शेर को देखा' दोनों प्रयोग चलते हैं तथा ठीक हैं, किन्तु दोनों मेरे अन्तर हैं। पहले मेरे 'शेर' सामान्य है, दूसरे मेरे विशेष। इसी

तरह डाकुओं ने उसका गला घोड़ कर मार दाना तथा डाकुओं ने उसका गला पोट्वर भार दाना' दोनों प्रयोग चलते हैं। यों दोनों में थोड़ा भलार है तथा दूसरा ही अधिक समत है।

'से' के भी विशेष प्रयोग हैं।

इसी से (निए) वह जहर आ गया।

विडिया जान से गई पर याने वाने को स्वार्थ ही नहा मिला।
मोहन जान स भारा गया।

'उसकी योग्यता हर बात से प्रवर्ट होता है' तथा 'उसकी योग्यता हर बात में प्रवर्ट होती है' दोनों प्रयोग में आते हैं और दाना का भाव एक है, अतर रचना में ही है।

'पर, 'म और 'इनका न होना प्रयोग की हृष्टि से व्याप्त हैं।

मोहन घर है।

मोहन घर म है।

मोहन घर पर है।

पर के भी विशेष प्रयोग हैं

लडवार बाप पर है।

वह लुम पर भरता है।

में के विशेष प्रयोग

मैं चार लिन म (बाद के बाद) सौट आऊंगा।

भाज घर म (वाली) कही गई है।

मह दुस्तक दो रुपए म (का) है।

बोध म (के बारले) भरीर कीण है।

इस श्रेणी के अधिकारा शन्ते के सामाय के अस्तित्व किशेष प्रयोग भी चलते हैं। कुछ शोरीय होते हैं तो कुछ वैयक्तिक।

हर भाषा से ऐसे सारे (सामाय और विशेष) प्रयोगों का विशेषण करके भाषा के सहज प्रवाह एवं भावों में सूखम अन्वर, दाना ही हृष्टियों से उनका विवेचन होना चाहिए। तभी उनके सटीक प्रयोग को साधनता स्पष्ट हो जाएगी और भाषा की अभिव्यक्ति 'अभिव्यक्ति वा शीक उपयोग' किया जा सकेगा।

भाषा के विभिन्न रूप

भाषा में शब्दों का प्रयोग भाषा के विभिन्न रूपों पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा की ही तीन शैलियाँ या रूप प्रचलित हैं : हिन्दी—जिसमें सस्कृत शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है। उर्दू—जिसमें अरबी-फारसी-तुर्की शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है। हिन्दू-स्तानी—जिसमें सस्कृत या अरबी-फारसी-तुर्की के दुरुह शब्द नहीं होते और जो बोलचाल के अपेक्षाकृत अधिक निकट है। सभी लेखक एवं वक्ता सभी स्तरों पर हिन्दी-उर्दू-हिन्दूस्तानी के इस भेद का निर्वाह नहीं करते, और शायद कर भी नहीं सकते, किन्तु अनेक प्रयोगों में यह अन्तर स्पष्ट हुए विना नहीं रहता।

इस प्रकार का शैलीय या रूपीय अन्तर स्वयं हिन्दी में भी है। हरिग्रीव के 'प्रिय-प्रवास', प्रसाद की 'कामायनी', और निराला के 'तुलसीदास' की हिन्दी, शब्द-प्रयोगों के स्तर पर वच्चन की 'मधुगाला' या नीरज के गीतों से भिन्न है। हरिग्रीव का ही 'प्रिय-प्रवास' उनकी अन्य रचनाओं से डस डृष्टि से अलग है। इस प्रकार के कुछ शैलीय पर्याय हैं : नगर-शहर, स्वयंखुद, ग्राम-गाँव, आश्चर्य-अचर्ज, प्रतिष्ठित-इज्जतदार, कलम-लेखनी, पत्र-चिट्ठी-खत, द्वार-दरवाज़ा, सुन्दर-खूबसूरत, वडिया-उम्दा, आशा-उम्मीद, अनाज-गाल्ला, खेती-काश्त, दफ्तर-कार्यालय, कड़ा-सख्त, वाटिका-वाग, नदी-दरिया, बुद्धि-अक्ल, वायु-हवा, सूर्य-सूरज आदि। स्पष्ट ही हिन्दी में यह अन्तर तत्सम-तद्भव (सूर्य-सूरज), तत्सम-विदेशी (वाटिका-वाग), तद्भव-विदेशी (अनाज-गाल्ला, खेती-काश्त) शब्दों में है। भाषा के प्रयोक्ता को इस प्रकार के अन्तर का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए।

जिससे या जिसके बारे में वात की जाए

भाषा में शब्दों के प्रयोग में इस वात का ध्यान रखना भी बहुत आवश्यक है कि वात किससे कही जा रही है या किसके बारे में कही जा रही है। जापानी भाषा में इस प्रकार का अतर सासार की भाषाओं में सर्वाधिक है। वहाँ अनेक सज्जाओं, सर्वनामों तथा क्रियाविशेषणों के लिए एक से अधिक शब्दों का वर्ग है, जिनमें एक का प्रयोग आदरार्थी माना जाता है तो दूसरे का सामान्य। उदाहरण के लिए दारे(dare) सामान्य 'कौन' है तो दोनता (donata) आदरार्थी। हिन्दी-उर्दू में तू-तुम-आप (जनाव, जनाव आली), आना-पदारना (तगरीफ लाना), बैठना-विराजना (तशरीफ रखना) में उभी प्रकार का अतर है। हिन्दी-उर्दू में

ਅਤੇ ਜੇ ਕਿਸੇ ਹੋਰ ਗੁਰੂ ਦੀ ਮੁੱਲ ਵਾਲੀ ਸ਼ਾਸਤਰੀ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਨ ਕੇ ਸੰਗ੍ਰਹ ਵਿੱਚ ਆਪਣੇ ਸਾਡੇ ਅਤੇ ਸ਼ਬਦਾਵਾਂ ਵਿੱਚ ਵੱਡੇ ਹੋਏ ਹੋਣੇ ਵਾਲੇ ਹਨ।

અનુભૂતિ પણી

תְּלִימָדָה בְּבֵית

५७ दावर तीव्र हो रही थी जिसके पांच दिन बाद यह घटना हो गई।

۷۴۲

સુપ પ્રો 1

દાન ખરી

57

સ્વરૂપ કે. વ્યા

पार पा रहा ।

ਪੰਜਾਬ ਅਤੇ ਹਰਿਆਚਲ ਦੀ ਸੁਖਦਾਨ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਮੁਖ ਵਿੱਚ ਆਉਣ ਵਾਲੇ ਹਨ।

संस्कृतयोग

प्रायः गमी भाषणों में इह पूर्वता विभासि पक्षी है कि दुष्ट दुष्ट विधाय दारों से गाय ही अद्युता होता है। यिन गायों का सहजप्रयोग कह गया है। इसके बाद भेद विभेद भाषणों में प्रयोग में आधार पर लिये जा गए हैं।

उत्तरराम के इस शिरो म गहरयोग के विस्तृति भेद विद्या जा गवते हैं। कुप नाम शिरी म एवं है जो देवत इन्ही एवं या यहां सौमित्र शम्भों के गाप पाता है और वेष्टन प्राचरण म ही आत है अग्रायन (अग्रायनपर अग्रायनतामा), गाँग (गाँठ गाँठ) याम (याम पाता)। दूसरी ओर कुप नाम एवं है जो एवं या यहां सौमित्र शम्भों के गाप पात है और वेष्टन भन भ ही प्राप्त है गुरुण (तोण गुरुण) यशात (यशिका यशात) मुवाहिणा (बहम मुवाहिणा) पुष्प (धोयेरा पुष्प) मड़ा (गडा मड़न) गतोर (गती गलोर)। भीदगुरी म इसी प्रकार बोतर (शार बोतर) कवाम (कर्जा-कुवाम) शीठी (गहना शीठी), पहिना (तपपहिना) पादि हैं।

“गी प्रदार कुछ दार्शनिक हैं जो वेवल कुछ ही क्रियाओं के साथ प्रबुद्ध होते हैं गवाना (भरता होना), गोर (करना होना) और कावित (करता होना), खिलो (वंपना)।” गवाने का विवरण दीया गया है।

होता है। 'मोहन के पिता जी ग्राज गुजर गये' प्रयोग करते हैं किन्तु 'चूहा ग्राज गुजर गया' नहीं।

कुछ विशेषण भी कुछ सीमित सज्जाओं के साथ ही प्रयुक्त होते हैं : गँदला (पानी), भीना (कपड़ा, परदा, आवरण), दर्शनी (हुण्डी)।

उपर्युक्त सकेतों को और भी विस्तार दिया जा सकता है तथा इस प्रकार की नई दिशाएँ भी खोजी जा सकती हैं।

लिंग

व्याकरणिक लिंग सभी भाषाओं में नहीं होते। फारसी, उजबेक, इस्तोनियन आदि विश्व में कई भाषाएँ हैं जिनमें लिंग का प्रयोग नहीं होता। उनमें क्रिया, विशेषण, सर्वनाम या सज्जा के रूपों में लैगिक परिवर्तन विलक्षण नहीं होते। जिन भाषाओं में लिंग होते भी हैं, उनमें भी आपस में एकरूपता नहीं मिलती। चाँद (moon) अग्रे जी में स्त्रीलिंग है तो हिन्दी में पुरुलिंग। यही नहीं, भाषाओं के लिंग का प्राकृतिक लिंग से बहुत अविक सम्बन्ध नहीं होता। मेज निलिंग है किन्तु हिन्दी में स्त्रीलिंग है, दीवान भी निलिंग है किन्तु हिन्दी में पुरुलिंग है। जर्मन में महिला (frau) स्त्रीलिंग है तो कुमारी (fraulein) नपु सक लिंग है। सस्कृत में 'दारा' 'स्त्री' और 'कलत्र' तीनों शब्द स्त्री के वाचक हैं किन्तु प्रयोग में पहला शब्द पुरुलिंग, दूसरा स्त्रीलिंग और तीसरा नपु सकलिंग है। स्त्री-पुरुष से सम्बन्ध का भी लिंग पर प्रभाव नहीं है। 'दाढ़ी-मूँछ' पुरुष को होते हैं किन्तु स्त्रीलिंग हैं, जबकि 'कुच' पुरुलिंग है। वस्तुतः भाषिक लिंग प्रयोगाश्रित हैं।

लिंगप्रयोगी भाषाओं में शब्दों के प्रयोग में लिंग की हृष्टि से भी ध्यान रखना पड़ता है। ध्यान से आशय है उक्त भाषा में प्रयोग किये जाने वाले शब्द के लिंग का ध्यान। इस हृष्टि से भाषाओं में अनेकानेक गड़वडियाँ मिलती हैं। हिन्दी में गिढ़, कौआ, चीटा आदि यद्यपि नर भी होते हैं और मादा भी, किन्तु इनका प्रयोग पुरुलिंग में ही होता है, इसी प्रकार चील, चीटी, मैना नर भी होते हैं किन्तु इनका प्रयोग केवल स्त्रीलिंग में होता है। हिन्दी में पद तथा व्यवसायवोधक काफी शब्द ऐसे भी हैं जो उभयलिंगी हैं। अभी कल तक 'भारत के प्रधानमन्त्री' प्रयोग में आता था, अब 'भारत की प्रधान मन्त्री' आता है। डॉक्टर, कम्पाउण्डर, इन्जीनियर, मिनिस्टर या मन्त्री, राज्यपाल या गवर्नर, रीडर, व्याख्याता या लेक्चरर, मैनेजर आदि पचास से ऊपर शब्द हिन्दी में उभयलिंगी हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दी में प्रयोग के स्तर पर दो लिंग हैं, किन्तु शब्द-वर्ग के स्तर पर तीन।

"मर्मों का अध्ययन

कुछ भाषाओं में यही शब्दी वात मिलती है। मादा के निम्न पुलिंग शब्द का प्रयोग होता है और नर के लिए स्त्रीलिंग वा। उदाहरण में हिन्दी में परीना परीती। इसी प्रवार कुछ भाषाओं के कुछ उदाहरणों में स्त्रीलिंग के रूप वा प्रयोग एक शब्दी (कोडा) के लिए मिलता है तो पुलिंग वा दूसरे के लिए। जसे हिन्दी में ही चीटा चीटी।

कुछ स्थितियों ऐसी भी मिलती हैं जिनमें पुलिंग रूप पति के लिए प्राप्त होता है तो स्त्रीलिंग रूप उसी पत्नी के लिए—चाचा चाची मामा मामी जीजा जीरी नाना-नानी। इन्हें कुछ उदाहरणों में पुलिंग रूप भाई के लिए तो स्त्रीलिंग बहन के लिए साला साली। कभी कभी ऐसा भी होता है एक पुलिंग शब्द के दो अर्थ होते हैं और दोनों अर्थों में उसके स्त्रीलिंग वा रूप पता पतला होते हैं दाना (बढ़ा भाई) —दीदी (बड़ी बहन) दादा (पिता महांदा) —(बाप की माँ)।

कुछ उदाहरणों में निम्न परिवर्तन से अथ परिवर्तन भी हो जाता है गदना—(लड़ा गदा) गदली (गदी, हथोरी)।

यह गोड़ने की धावशक्ति नहीं कि विभिन्न भाषाओं में प्राप्त स्त्रीलिंग रूप प्राप्त पुलिंग रूपों से बने माने तथा दिखाए जाते हैं। समाज में पुरुष की महत्ता या प्रधानता के बारण, सामाजिक रास्तवाघा की प्रतीक भाषा में ऐसा होना तथा इन रूप में उसका विश्लेषण भसहज नहीं है। उदाहरणात्मक ग्रंथों जी में author authoress host hostess lion lioness actor actress master mistress hero-heroine मस्तृत में बाह्यण-बाह्यणी नद नदी सुत-मुता प्रिय प्रिया भव भवानी मरवी में साहब साहबा बालिंदा बालिंदा तुर्की में खान खानम बेग-बेगम हिंदी में लड़का लड़की, दादा-दानी बेटा बिटिया हिरन हिरनी, सुनार सुनारिन केंट कम्नी ठाकुर-ठकुराइन।

यो इधर गहराई से विश्लेषण करने पर पुलिंग के प्रति यह पक्षपात कछु शब्दों में समाप्त हो गया है। उदाहरण के लिए पहले लड़का से लड़की को बना माना जाता था। अब मूल शब्द न तो पुलिंग माना जाता है और न स्त्रीलिंग। वह निलिंग शब्द लड़क है जिसमें पुलिंग प्रत्यय आ जोड़कर लड़का बनता है तथा स्त्रीलिंग प्रत्यय ई जोड़कर लड़की। इसी प्रवार पोड़ बच्चे गय माम भादि भी।

यो पुलिंग से स्त्रीलिंग बनने के विपरीत कुछ उदाहरण ऐसे भी मिल जाते हैं जहाँ स्त्रीलिंग रूप मूल है तथा पुलिंग इसके प्रावार पर बना है भड़ मेडा भर भसा रौंड रेंडमा।

हिन्दी के मम्बन्धवाचक शब्दों में एक अजीव वात यह है कि परपरागत भारतीय परिवार में जिन सम्बन्धियों के लिए स्थान था उनके लिए तो पुराने नाम हैं, किन्तु जिनके लिए स्थान नहीं था उनके लिए नाम न थे। अब जब उनका स्थान परिवार में हो गया है तो स्त्रीलिंग शब्दों के आधार पर उनके लिए नये शब्द बना लिये गये हैं। उदाहरण के लिए ननद, मौसी, वहिन के लिए परिवार में स्थान पहले था, अतः सस्कृत में उनके लिए कमशः ननंद, मातृस्वसृ, भगिनी शब्द थे जिससे ननद, मौसी तथा वहन का विकास हुआ। किन्तु इसके विपरीत ननदोई, मौसा, वहनोई के लिए परिवार में विशेष स्थान न था, अतः उनके लिए विशेष नाम का प्रयोग नहीं हुआ। अब जब उनका परिवार में स्थान हो गया तो इन स्त्रीलिंग शब्दों के आधार पर पुर्लिंग शब्द बना लिये गये हैं—ननद-ननदोई, मौसी-मौसा (अब उनमें मूल निलिंग मौस् मानकर आ, ई जोड़े जा सकते हैं) वहन, वहनोई। ऐसे ही जीजी से जीजा शब्द बना लिया गया है। इसका विकास बड़ा लम्बा है—सस्कृत तात+क>दादा (बडा भाई)>दीदी (बड़ी वहन)>जीजी>जीजा (ई का आ करके)।

वचन

वचन का प्रयोग विश्व की सभी भाषाओं में होता है। कुछ में दो का, कुछ में तीन का और अपवादत कुछ में चार का। यो यदि एक वचन, वहुवचन आदि के रूपों का सीधे इन्हीं वचनों में प्रयोग होता और सामान्यतः सभी शब्दों के विभिन्न वचनों के रूप होते तो प्रयोग में कोई खास परेशानी न होती। किन्तु वास्तविकता यह है कि कभी तो एक वचन के रूप दूसरे वचन में प्रयुक्त होते हैं, और कभी कुछ शब्दों का प्रयोग प्रायः एकवचन में होता है तो दूसरों का प्रायः वहुवचन में। प्रयोग की दृष्टि से इन वातों का व्यान रखना आवश्यक है। कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं। सस्कृत अंग्रेजी आदि में क्रिया, एकवचन के कर्ता के साथ एक वचन में होती है किन्तु फारसी, हिन्दी, आदि में आदरार्थ में एकवचन कर्ता के साथ वहुवचन की क्रिया आती है। शैख सादी मी गूयन्द=शैख सादी कहते हैं। शुद्ध व्याकरणिक दृष्टि से फारसी में 'गोयद' तथा हिन्दी में 'कहता है' होना चाहिए किन्तु होता है 'मी गूयन्द' और 'कहते हैं'। इसी तरह हिन्दी में प्रश्नवाचक तथा उत्तम पुरुप को छोड़कर अन्य अधिकांश सर्वनामों के एक वचन रूपों के स्थान पर आदर के लिए वहुवचन का प्रयोग होता है। तृ-तुम, वह-वे, यह-ये, जिमे-जिन्हे। उत्तम पुरुप में अब 'मैं' के स्थान पर 'हम' का ही प्रयोग अधिक हो रहा है।

विश्व की अनेक भाषाओं में ऐसी वहुत सी सज्जाएँ हैं जिनके वहुवचन के रूप प्रायः नहीं प्रयुक्त होते। अंग्रेजी में अगणनीय (noncountable) सज्जाएँ इसी

प्रकार की हैं। जसे copper, tin wood, (तस्ता) iron kindness, air, good, force इनके प्रयोग एकवचन में ही होते हैं। यदि उनके बहुवचन के हृष कराए जाएं तो अथ बदल जाते हैं coppers=तादू के निकट, tools=टिन के डिव्वे, woods=जंगल, irons=बेडिया kindnesses=कृपापूर्ण कार्य (बहु वा०) airs=झकड़, goods=सामान, forces=सेनाएँ।

कुछ शब्दों के एकवचन में भी अथ होते हैं। निन्तु बहुवचन के बाद एक भव में हा होता है। उदाहरण के लिए people (१ राष्ट्र, २ लोग)—peoples (मई राष्ट्र), Practice (१ आदत २ अभ्यास)—practices (आदतें)।

कुछ शब्दों के दो बहुवचन होते हैं विन्तु दोनों के दो अथ होते हैं। उदाहरणात् अप्रज्ञी म cloth-cloths=विना सिने कपड़, clothes=पाणी, brother brothers=एक भाई-बापक लडके bretheren=एक समाज या सम्राज्य के सम्मुख die dies=मिक्रो की मुहर, dice लेल की गोटियाँ।

कुछ भाषाओं में कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो सबदा बहुवचन में हा प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में 'अस्ति ऐसा ही शब्द' है। उनके दर्शन हुए, भाषक दर्शनों के लिए आया हूँ। 'धुमराना' की भी यही स्थिति है। यह धुमराने के ही प्रयुक्त होता है। घघराले वान। गगड़ा में भी ऐसा शब्द है cattle, people, poultry।

कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जो अपनी रूपरचना का हॉप्टि में बहुवचन लगते हैं विन्तु वे एकवचन के होते हैं और उनका प्रयोग एकवचन में ही होता है physics news mechanics usings politics। हिन्दी में लड़ पाड़, बच्चे गदहे आदि भी ऐसे ही शब्द हैं। उदाहरणात्

उस लड़के का क्या नाम है ?

राम घोड़े पर है।

मनुकाकी के सामने बचन खड़पी एक अजीब समस्या कभी-कभी प्रा जाती है। एक भाषा में जहाँ एकवचन का प्रयोग होता है वहाँ दूसरी भाषा में बहुवचन का होता है। उदाहरण के लिए हिन्दी अप्रेज़ी में

तुम्हारा चम्मा कहाँ है ?

Where are your spectacles ?

इसी प्रकार बैंची=scissors चमचा=tongs सौंदर्या=pincess दराढ़=drawers पत्राया=trousers पचास=measles रसदा-

mumps, विलियर्ड=billiards, कहानी, इतिहास=annals, धन्यवाद=thanks।

अनेक भाषाओं में बहुत से शब्दों के एकवचन तथा बहुवचन दोनों में एक ही रूप होते हैं। हिन्दी में आकारात पुलिलग शब्दों को छोड़कर अन्य सभी पुलिलग शब्द इसी प्रकार के हैं। उनके मूलरूप बहुवचन अपरिवर्तित रहते हैं।

(१) उसका एक हाथ कट गया।

उसके दो हाथ हैं।

(२) वह अच्छा कवि है।

वहाँ बहुत से कवि आये हैं।

(३) मेरा साथी कहाँ है?

मेरे साथी कहाँ है?

(४) वह साधु आ गया।

वे साधु आ गये।

(५) भागो, भालू आया।

भागो, भालू आये।

अंग्रेजी में sheep, deer, gross, hundred (सख्त्या के बाद four hundred), thousand (सख्त्या के बाद three thousand)।

प्रयोग में इन अनियमिताओं के प्रति असावधान होने से प्रायः गलतियाँ हो जाती हैं।

काल

कुछ अपवादों को छोड़कर सभी की अधिकाश भाषाओं में रूपरचना या रूपरचना और वाक्यरचना के आधार पर किया रूप तीन कालों के होते हैं। अंग्रेजी में रूपरचना के स्तर पर दो ही काल हैं वर्तमान तथा भूत। भविष्य वाक्यरचना के आधार पर बनाया जाता है। हिन्दी में भी यही स्थिति है। वहाँ भी रूप के स्तर पर दो ही काल हैं। वर्तमान और भूत। भविष्य वाक्य के स्तर पर है। यो किया और काल सम्बन्धी प्रयोग प्राय अधिकाश भाषाओं में बड़े जटिल है, और प्रयोक्ता को उनका ध्यान रखना चाहिए। यहाँ उदाहरण स्वरूप काल को लेकर एक दो वातों की ओर सकेत किया जा रहा है। रूपों को काल का नाम देना अनेक भाषाओं में बहुत भ्रामक है। उदाहरण के लिए हम हिन्दी ही ले। 'राम खा रहा है' में 'खा रहा है' ये तीन शब्द मिलकर वर्तमान काल का वोध करा रहे हैं, किन्तु ये ही तीन शब्द 'राम कल मोहन के यहाँ खाना खा रहा है' भविष्य काल का वोध कराते हैं। इसी प्रकार 'राम छत पर से गिरा और उसका सर फट गया' में 'गिरा' भूतकाल

वा घोतक है, जितु जलनी पकड़ा राम खन पर से गिरा म दिग्द भद्रिष्ठ
वा घोतक है। वस्तुत ऐसी भाषाए जहाँ एक बाल की किया एक से प्रविष्ट
वे काष्ठ बरती हैं, वहाँ रूप विशेष को विशेष कान का न बहकर स्पन्दन
१, २ वा ३, वा ५, वा ८ आदि बुद्ध भा काल निरपेक्ष नाम देकर उसके विभिन्न
प्रयोग बता देना अधिक वजानिक है। सस्तुत म इसीतिए रूपा की बतानान
भूत, भविष्य आदि न बहकर लट लट लिट लुड, लुट, लट मादि कहा गया
और उनके प्रयोग समझा न्यै गय। हिंदी तथा अंग्रेजी आदि वे निम्न भी ऐसा
करनाप्रयोग और विवेचन दोनों ही दृष्टियो से बनाचित अधिक वजानिक है।

कम

गहरों के प्रयोग म कम जिस वाक्य म "एत्वय या पर्याप्त वहत है
काफी महत्व रखता है। कम म परिवर्तन से अनुकूलना-नुद हो जाता है
राम मोहन बहता है।

मोहन राम कहता है।

Ram killed Mohan

Mohan killed Ram

जितु यह बात अद्याग्रामक या विश्वपणात्मक वा अमप्रधान भाषाओं म
हो विशेष महत्व रखती है। पुराती अरबी श्रीर सस्तुत जमी योगारमव
भाषाओं में शब्द के कम म परिवर्तन स अन्य म अन्तर नही धाता।

राम मोहन अहनत।

मोहन राम अहनत।

सस्तुत के उपर्युक्त दाना वाक्य म शब्द कम एक नही है जिन्हु अन्य दाना
ही वाक्यो का एक है।

हिंदी अथवा जीनी जमी भाषाओं म शब्द कम का महत्व है जितु एन
भाषाओं की पुस्तकों म प्राय बत्ती कम, जिया कियाविनेशना आदि क कम
का ही सामाय उल्लेख रहता है। उत्तराखण के निए जिनी व बारे म बहा
जाएगा कि बत्ती प्रारम्भ म धाता है किया धान म और कम या कियाविनेशना
बीच म। या पिर बन दने के निए इस अन म परिवर्तन बरब बनाउदा का
पहुँचे रख दत है। वस्तुत वर्ष की य बही जीनी बातें हैं। भारती म अनों क
प्रयोग म कम और भी कई स्तरों पर बास रखता है जो कम म उत्तराखण नही
है। उत्तराखण के लिए वाक्य म देवत बत्ती, जिया कम कियाविनेशन ही
नही उपचारित और पर्याप्त भी विवाप कन स माने हैं। वस्तुत कम की पूरी

व्यवस्था कुछ इस प्रकार है शब्द विशेष क्रम से समस्त पदों (ग्राममल्ल, मल्ल-ग्राम) तथा पदों (राम ने) में आते हैं, तथा इसी प्रकार पद विशेष क्रम से पदवध (मकान की ऊपरी मज़िल पर मोहन रहता है) एवं उपवाक्यों में, पदवंध विशेष क्रम से उपवाक्यों या वाक्यों में और उपवाक्य विशेष क्रम से वाक्यों में आते हैं। इन क्रमों का ध्यान न रखने पर कभी तो कुछ अर्थ ही नहीं निकलता और कही भाषा की सहज गति प्रभावित होती है और वाक्य अजीव-सा लगने लगता है।

यहाँ हिन्दी को लेकर क्रम-सम्बन्धी कुछ बातें ली जा रही हैं। हिन्दी में विशेषण का प्रयोग कभी तो सज्ञा के पूर्व होता है।

अच्छा लड़का

और कभी सज्ञा के बाद होता है

लड़का अच्छा है।

पहले को विशेष्य विशेषण और दूसरे को विधेय विशेषण कहते हैं। प्रायः यह समझा जाता है कि सभी विशेषण शब्द इन दोनों क्रमों में आ सकते हैं। किन्तु वास्तविक स्थिति यह नहीं है। हिन्दी में ऐसे विशेषण भी हैं जो सज्ञा के पूर्व नहीं या नहीं के बराबर आते हैं। उनका प्रयोग विधेय विशेषण के रूप में ही प्रायः होता है। उदाहरण के लिए 'वे अग्रसर हुए' 'मैं इस बात से अवगत हूँ' 'वह देख पर कुर्बान हो गया' 'मुझे यह स्थिति गवारा नहीं' आदि में अवगत, कुर्बान, गवारा ऐसे ही हैं। इस डूटिंग से अभी तक कार्य नहीं हुआ है। मुझे विश्वास है कि ऐसे शब्द काफी मिल सकते हैं, जिनका प्रयोग विशेष्य के पूर्व या तो विल्कुल नहीं होता या बहुत हा कम होता है और वह भी विशेष प्रकार की रचनाओं में। हिन्दी विशेषणों के प्रयोग को पूरी तरह समझने के लिए इनका सकलन एवं विश्लेषण आवश्यक है।

इसी प्रकार 'कलाँ' और 'खुर्द' ऐसे शब्द हैं जो केवल स्थानवाचक-नामों के बाद ही ('वडे' और 'छोटे' के अर्थ में) आते हैं, जेरपुर कलाँ, शेरपुर खुर्द। कभी-कभी विशेषणों की भी विशेषता बताने वाले विशेषणों का प्रयोग हिन्दी में होता है जिन्हे प्रविशेषण कहा जा सकता है। इनके भी क्रम की एक सामान्य व्यवस्था है। उदाहरण के लिए 'वह बहुत अधिक मुन्द्र है' तो प्रयोग होता, है किन्तु 'वह अधिक बहुत मुन्द्र है' नहीं होता। ऐसे ही 'वह बड़ा घूर्त है', 'वह बहुत घूर्त है' तो प्रयुक्त होते हैं किन्तु 'वह बड़ा बहुत घूर्त है' नहीं होता, इसी तरह 'बड़ा भारी' या 'निहायत घटिया' तो प्रयोग में आते हैं किन्तु 'भारी बड़ा' या 'ज्यादा बहुत' आदि नहीं। इस दिशा में कार्य अपेक्षित है। ऐसे

प्रयोग के भीतर एक व्यवस्था है जिसकी जानकारी ठीक प्रयोग के लिए प्रावद्यन है।

वभा-कभी एक से अधिक विशेषण एक साथ आते हैं और उनमें भी एक सामान्य अम होता है। उदाहरण वह लिए यदि सावनामिक और गुणवाचक विशेषण का प्रयोग अपेक्षित हो तो सामान्यत गावनामिक पहले आयगा तथा गुणवाचक वाद में इन्हीं मध्यी पुस्तक वह बड़ा पाड़ा यह सु-दर चित्र वह पाला आदमी। सह्यावाचक विशेषण और गुणवाचक विशेषण हो तो सह्यावाचक पहले आयेगा दो नाने कुत, नान सूखार भर। सम्बद्धवाचक विशेषण और गुणवाचक विशेषण हो तो पहले सम्बद्धवाचक आयगा उसका सफेद रूमाल, मेरी बाली पमिल। सम्बद्धवाचक मर्यादाचक तथा गुणवाचक हो तो इसी अम से आयेग माहृत की एक नई पुस्तक साता की दो सुनहरी चूडियाँ। सह्यावाचक, प्रविशेषण गुणवाचक हो तो वे भी इसी अम से प्रयुक्त होंगे एवं वही अच्छी पुस्तक, दो बड़े अच्छे बड़े।

यह तो विभिन्न प्रकार के विशेषण थे। वभा-वभा एक विशेष के साथ एक से अधिक गुणवाचक विशेषण भी आते हैं और उनका भा एक विषय अम ही प्राप्त प्रयुक्त होता है। पुराना लाल बोट, उमकी बाटी बड़ी माँसें सपेद ऊंची इमारत, अच्छा भला आदमी। कभी कभा अम बदला भा ज सबता है बिन्तु तब अभ बन्त जाता है अच्छान्खामा आदमी — खासा अच्छा आदमा, 'बाली बड़ी माँसें — बड़ी काला माँस बड़ा भारी पुस्तक — भारी बड़ी पुस्तक।

तगभग या निश्चय का भाव व्यक्त करने के लिए वभो-वभो एक से अधिक सर्वावाचक विशेषणों का प्रयोग होता है। उनका भा एक निश्चित अम होता है कम पहले अधिक वाद में एक दो दो-तीन, दो चार दस बीम पचास साठ सत्तर अस्ती सौ-दो सौ चार सौ दस दोस एकाम। बिन्तु इनमें भी कुछ प्रयोग अपवाद स्वरूप हेस भी हैं जिनमें दोनों प्रकार के प्रयोग चलते हैं पचास-सौ, सौ पचास पाँच सौ-हजार, हजार-पाँचसौ पाँच दस दम पाँच पच्चीस पचास पचास पच्चीस।

यहाँ हिन्दी से युद्ध थाड़े से उदाहरण थे; वास्तविक स्थिति यह है यह सभी भाषाओं में विशेषणों के प्रयोग में अम सब्दी अनवानक नियम वापर करते हैं। अभी तक विश्व की दिसी भी भाषा में प्रयुक्त इन नियमों पर काम नहीं हुआ है।

अव्यय के प्रयोग में भी क्रम का महत्व कम नहीं है। अव्यय शब्द हिन्दी वाक्यों में प्रायः चार स्थानों पर आते हैं :

मुड़ते ही जेर ने बैल की पीठ पर अपना पंजा इतनी ज़ोर से मारा कि वरागायी हो गया। इनमें भी विशेषक्रम होता है, जिसमें कुछ सीमा तक ही परिवर्तन किये जा सकते हैं। 'कि' को उपर्युक्त वाक्य में नहीं हटा सकते। पहले तीन को, तीन के स्थान पर दो (जेर ने मुड़ते ही बैल की पीठ पर) या एक (मुड़ते ही बैल की पीठ पर इतनी ज़ोर से) स्थान पर कर सकते हैं, किंतु क्रम को सामान्यतः नहीं बदल सकते जब तक कि किसी पर वल देना अभीष्ट न हो।

जब एक में अधिक किया गच्छों का एक वाक्य में प्रयोग हो तो उनमें भी विशेष क्रम होता है—सेना बढ़ती चली आ रही है, अब दरबाजा खोल दिया जा सकता है। मुख्य अर्थ की द्योतिका किया (खोल) पहले आती है, उसके बाद अर्थरजक सहायक किया (देना), फिर वाच्यसूचक (जा) फिर सक-वर्गीय गच्छ (सक, चुक आदि) और अन्त में 'होना' के रूप।

किया के साथ भर, ही, मात्र, तो, भी, मत, नहीं, न का प्रयोग भी अवधारणा या नियेव के लिए होता है। ये भी क्रम में स्वतंत्र नहीं हैं। इनकी सीमाएँ हैं, उदाहरणार्थ

पुस्तक नहीं दारीदी जा सकती।

पुस्तक दारीदी नहीं जा सकती।

तो ठीक हैं किन्तु,

पुस्तक दारीदी जा नहीं सकती।

अल्पप्रयुक्त है और आता भी है तो नियेप अर्थ में। दूसरा उदाहरण है

माँप को नहीं मारा जा सकता था। (वहुप्रयुक्त)

माँप को मारा नहीं जा सकता था। (प्रयुक्त)

माँप को मारा जा नहीं सकता था। (अल्पप्रयुक्त)

माँप को मारा जा सकता नहीं था। (प्रायः अप्रयुक्त)

माँप को मारा जा सकता था नहीं। (प्रायः अप्रयुक्त)

उम्ह तरह प्रयोग में क्रम पर नार्थकता, अर्थ की सूखमता नवा भाषा के प्रचाहर की महजना निर्भर करती है।

द्वितीयों प्रयोग

कोई भी भाषा सभी स्तरों पर बहुत स्पष्ट नहीं होती। प्रत्येक प्रयोग ऐसे होते हैं, जिनके दो या अधिक अर्थ होते हैं। इसका अर्थ यह है कि व्याकरणिक रचना को एत प्रतिशत विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। हिन्दी से ही उदाहरण लें

राम को पाजामा कुर्ता पहना नहीं सकता।
इसके दो अर्थ हैं

- (१) राम को पाजामा कुर्ता पहना नहीं है।
- (२) राम को पाजामा-कुर्ता कहता नहीं है।

इसी प्रकार

राधा गाने वाली है।
इसके भी दो अर्थ हैं

- (१) राधा अब गाने जा रही है या गाना शुरू करने वाली है।
- (२) गाना उसका पेशा है।

राम को भी खिलाफ़ा।
इसके भी दो अर्थ हैं

- (३) राम को भी खेल में खिलाफ़ा।
- (४) राम को भी खाना खिलाफ़ा।

एक और उदाहरण लें

मोहन राधा के यहाँ जाता होगा।
इसके भी दो अर्थ हैं

- (१) मोहन इस समय राधा के यहाँ जा रहा होगा।
- (२) मोहन राधा के यहाँ जाया करता होगा।

ऐसी द्वितीय रचनाएँ किसी न किसी स्तर पर अधिकांश भाषाओं मिलती हैं। हर भाषा के ऐसे सारे प्रयोगों को सूचीबद्ध कर लेना तथा विश्वास प्रकार प्रकरण से या अतिरिक्त रचना के प्रयोग से संदर्भिता को दूर किया जा सकता है। यह खोज निकालना उस भाषा के प्रयोग में स्पष्टता लाने या इस प्रकार की अस्पष्टता यथामाध्य न लाने दने के लिए आवश्यक है। प्रभी तक किसी भी भाषा में इस दृष्टि से कोई सतोपजनक बाय नहीं है।

बोलने की दृष्टि से बलाघात, सुरलहर, अक्षर-विभाजन तथा सगम या विराम के ठीक प्रयोगों की जानकारी भी बड़ी आवश्यक है।

ये शेर सक्षेप में प्रयोग-सवधी कुछ सकेत। स्पष्ट है कि भाषा के ठीक प्रयोग एवं उन्हें ठीक समझने के लिए भाषा की प्रयोग विषयक विशिष्टताओं की जानकारी अनिवार्यत आवश्यक है। ●

अध्याय ८

अर्थविज्ञान

ज्ञनि शब्द का शरीर है तो अथ उसकी आत्मा है। शब्द की सायकता प्रयोग होता है। इस तरह अथ भाषा की सर्वाधिक महत्वपूरण इकाई है।

शब्द और अथ का सम्बन्ध कुछ शब्द (जस ज्ञातमक आदि) को घोड़े पर यादचिन्ह है। घ ओ ह आ के मिले रूप से घोड़ा (ज्ञनि) का घोड़े के अथ से सहजात सम्बन्ध नहीं है। यह सम्बन्ध बेवल समाज का माना हुआ है। यदि समाज यह त बर ल दि कल से क का 'घोड़ा' के लिए प्रयोग होगा तो बत स व का अथ घोड़ा होने लगेगा। इसी प्रवार यदि सब लोग स्वीकार कर ले तो कल से घोड़ा गब्द का अथ फूट आदमी अथ या कुछ भी हो सकता है। प्राचीन भाषाशास्त्रियों ने शब्द और अथ को एक माना है एकसम्बन्धनो भेदी शब्दाधिपत्यक स्थिती (वाक्यपदोद्य २ ३१)। तुलसी ने भी कहा है गिरा अथ जल बीचि सम कहिमत भिन्न न भिन्न। कलिदास भी कहते हैं वागर्या विवस्पृक्तो वागर्य प्रतिपत्तये (रघुवश १)।

मैं इस परपरागत मायता से बहुत सहमत नहीं हूँ। हम प्राप्त पाते हैं दि शब्द बदल जाता है किन्तु अथ वही रहता है (यृह पर इप्पण-काह, सप्तनी सौत) और दूसरी और अथ बदल जाना है विन्यु शब्द ज्यो-ज्यो-शब्दो रहता है (कुशल—मूल अथ कुश उखाढ़ने मे प्रवीण परवर्ती अथ दण प्रवीण—मूल अथ बीणा बजाने मे प्रवीण परवर्ती अथ दण)। दोनो एक होने तो एक के परिवर्तन से बदाचित दूसरा भी परिवर्तित हो जाता।

अथ है क्या और उसकी प्रतीति कसे होती है ? वस्तुत अथ प्रतीकात्मकता म है। कलम शब्द कलम कहनाने वाली वस्तु का प्रतीक है और अथ वस्तु तथा शब्द का प्रतीकात्मक सम्बन्ध। यहीं यह बात भी मनेन बरन दी है कि तुद वशानिक दृष्टि से शब्द का वास्तविक अथ नहीं होता अपितु उसका अथ क्यन

प्रतीकात्मक या माना हुआ होता है। अर्थ की प्रतीति वाक्य पर निर्भर करती है।^१ इसी लिए वाक्य ही भाषा का चरम अवयव है। वाक्यों का प्रयोग करते करते हम इतने अम्यस्त हो जाते हैं कि अलग शब्द सुनकर भी हमें अर्थ की प्रतीति होती है, किन्तु मूलत वह वाक्य पर ही आश्रित है। दूसरे शब्दों में शब्द का अर्थ प्रयोगाश्रित है। कोशार्थ भी प्रयोग या प्रयोगों का ही सार होता है।

भर्तृहरि ने अर्थ-निश्चय के सम्बन्ध में कहा है—

वाक्यात्प्रकरणादर्थदीचित्यादेशकालतः

शब्दार्था. प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलात् (२-३१६)

अर्थात् केवल रूप जान लेने से अर्थ का पता नहीं चलता, इसके लिए वाक्य (अर्थात् वाक्य में प्रयोग), प्रकरण (अर्थात् वात कहने का संदर्भ) अर्थ, औचित्य (अर्थात् प्रसग में उक्त अर्थ का औचित्य), देश, (इसका अर्थ लोगों ने तरह-तरह से किया है, मेरे विचार में देश से अर्थ यह है कि देश या स्थानभेद से अर्थ भेद हो जाता है। उदाहरण के लिए बनारस में 'मौसा' शब्द माँ की वहन का पति मात्र है, किन्तु हरियाना में भाई का ससुर भी मौसा है) काल, (इसका अर्थ भी लोगों ने दूसरे रूप में किया है, किन्तु प्रस्तुत पक्षियों के लेखक के विचार में सकेत यह है कि काल-भेद से अर्थ-भेद हो जाता है) जानना अपेक्षित है।

इसी प्रकार तत्त्वचित्तामणि पर विचार करते हुए मथुरानाथ ने अर्थ जानने के लिए वृद्धव्यवहार, आप्तवाक्य, व्याकरण, कोश, वाक्यशेष, विवृति, सिद्धपदसान्निध्य और उपमान का उल्लेख किया है, जिनके अर्थ क्रमशः 'वयो-वृद्धो द्वारा प्रयोग', 'प्रामाणिक व्यक्तियों द्वारा प्रयोग', 'व्याकरणिक रचना का ज्ञान', 'कोशार्थ', 'संवद सदर्भ के अन्य शब्द तथा वाक्य', 'व्याख्या', 'ज्ञात शब्दों के साथ शब्द का प्रायोगिक संबंध' तथा 'उपमान द्वारा अर्थ-स्पष्टीकरण' है।

वहना न होगा कि उपर्युक्त वातों में अर्थ का सर्वप्रमुख प्रयोग ही स्पष्टक है। अन्य जितने हैं वे भी मूलतः प्रयोग पर ही आवासित हैं। अपवाद केवल व्याकरण है।

अर्थविज्ञान इसी अर्थ के अध्ययन का विज्ञान है। जैसा अन्यत्र सकेत किया जा चुका है, यह अध्ययन वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक तीनों प्रकार का हो सकता है।

१. वाक्यभावमवाप्तस्य सार्थकस्याववोद्धतः.
मपद्यते शब्दव्यवो न तन्मान्म्य वोद्धतः। (शब्दशक्ति प्रकाशिका १२)

अथ के वरुणनात्मक अध्ययन का अथ है कि किसी एवं समय में किसी शब्द के अथ का विवरण ; धनि, रूप या वाक्य की तुलना में अथ अधिक सूख होता है इसी कारण इसका अध्ययन भी अधिक कठिन है, जिसका परिणाम यह हुआ है, कि अथ शब्दों में वरुणनात्मक या सरचनात्मक दृष्टि से जिनका बाम हुआ है, उतना अथ को लकर नहीं हुआ है ।

किसी एक वाल में किसी शब्द के बोन कोन से अथ है इसका पता—जसा कि ऊपर वहा जा चुका है—प्रयोग से ललता है । इहका भावाय यह हुआ कि भाषा के सार प्रयोगों को एकत्र करके ही इन बातों का पता लगाया जा सकता है । इस दृष्टि से अच्छे से अच्छे बोग भा हमारी बहुत सहायता नहीं बर पाते ।

शब्दों के अथ वे वरुणनात्मक अध्ययन के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि किसी भी भाषा में किसी एवं समय में शब्द का अथ तीन प्रकार का होता है —

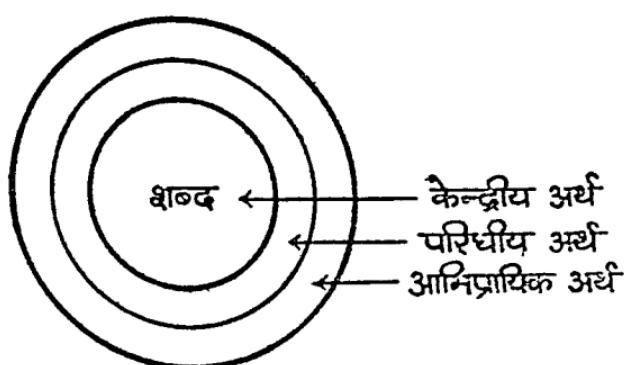
(३) वेद्वीय अथ—यह उस शब्द का उम वाल में सूत, प्रहृत या सामाय अथ होता है । इसी अथ में यह शब्द अधिक प्रयुक्त होता है । वज्ञा घर शाकाहारी के वेद्वीय अथ में प्रयोग है उसका अच्छा मरणा उम । में सी घर हैं, मैं शाकाहारी हूँ, मात और थड़े नहीं खाता ।

(४) परिधीय अथ—परिधीय अथ वेद्वीय अथ से ही विवित होता । यह किसी एक वाल में एक से अधिक भी हो सकता है । 'राम २५ वा ह तो क्या, अभी तो बच्चा है, ये बातें नहीं समझ सकता । मे बच्चा वा 'नासुमझ' है । इसी प्रकार 'भोजना भाजना' परिधिक शब्द भी इस परिधीय अथ हैं । परिधीय अथ में शब्द का प्रयोग प्राय वाचाय भा । तुलना में कम होता है । परिधीय अथ वे कुछ और उच्चाहरण हैं ये वे उसके मन में धर गई हैं, 'वह तो पूरा बनिया है, एवं पका नहा दे माजा 'वया मुहरमी सूरत बना रखी है, 'भारत में जान बिना एग हैं जिन्होंने जूत रोटी नहीं मिलती ।

(५) आभिप्रापिक अथ—वेद्वीय अथ तो गुनिन्वित अथ होता है परिधीय अथ वेद्वीय में ही विवित होता है । यह भी प्राय विवित रहता है । किसी शब्द का आभिप्रापिक अथ वही बिना है जो इसे

व्यक्ति किसी ऐसे विशेष अर्थ को अभिव्यक्त करने के आभिप्राय से उस शब्द का प्रयोग करता है, जिस अर्थ में सामान्यतया वह शब्द प्रयुक्त नहीं होता। शैलीकार साहित्यिकों के लेखन में ऐसे प्रयोग कभी-कभार मिल जाते हैं : ‘वह आदमी तो विलकुल ही शाकाहारी है, उसके साथ लड़की भेजने में भला क्या परेशानी हो सकती है’, ‘अरे भला राम क्या खाकर थानेदार बनेगा, विलकुल ही शाकाहारी है, थानेदार का पद पा जाने से थोड़े कोई थानेदार बनता है’, ‘आज पत्नी का पत्र मिला मगर विलकुल ही शाकाहारी, कहीं भी कोई प्रेम-मुहूर्वत की बात नहीं’ ‘कोयला कोयला ही रहेगा चाहे सौ मन सावुन खा जाय’।

इस तरह पहले अर्थ में शब्द का प्रयोग सर्वाधिक होता है, दूसरे में कम और तीसरे में बहुत कम। बहुप्रयुक्त होने पर कोई आभिप्रायिक अर्थ परिवीय बन सकता है तथा परिवीय अर्थ (यद्यपि बहुत कम) केन्द्रीय। तीनों अर्थों को चित्र रूप में यो दिखा सकते हैं।



ध्वनि (स्वन) विज्ञान और रूपविज्ञान आदि के क्षेत्र में ध्वनिग्राम (phoneme)—सघ्वनि (allophone) तथा रूप ग्राम (morpheme)—सहृप्त (allomorph)की बात बहुत प्रचलित है। अर्थविज्ञान में भी ऐसे विश्लेषण की पूरी गुंजाइश है।

अर्थग्राम (sememe) किसी शब्द के सारे अर्थों का योग है और समर्पण (allosemic) विभिन्न अर्थ हैं जो अलग-अलग संदर्भों में आते हैं। ये अलग-अलग मदर्म ही वितरण हैं। इस हिट से किसी भी भाषा का कोई व्यवस्थित विवेचन श्रमी तक मेरे देखने में नहीं आया। यहाँ एक हिन्दी शब्द ‘पानी’

द्वारा इस बात को उदाहृत किया जा सकता है। मान तीजित पानी के चार प्रयोग हमने लिए-

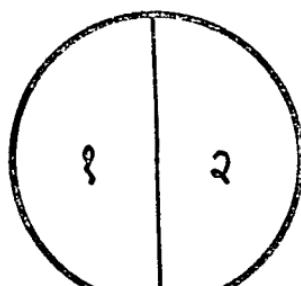
- (१) आसाम का पानी अच्छा नहीं है। (जलवायु)
- (२) सबके सामन उम्मका पानी उतार दिया। (इच्छत)
- (३) पानी आया घृतरी तान ला। (वर्णि)
- (४) यह पेड़ पांच पानी का है। (वप)

इसमें किसी भी पानी का सामाजिक अध्ययन नहीं है। पानी का सामाजिक अध्ययन अबों की तुलना में अधिक प्रयुक्त होता है तथा आधिक सरचना की दृष्टि से वही पांच्राम है। अब अध्ययन विदेशी प्रसंग या सदम्भ के हैं। यदि हम थोड़ों देर के लिए मान ले कि पानी शब्द के सामाजिक अध्ययन को छोड़कर केवल ये ही चार अध्ययनों में चलने हैं तो वहाँ जा सकता है कि पानी के अध्ययन या अध्ययन के पांच सम्बन्ध हैं। जलवायु अध्ययन में वह एक प्रसंग में भाला है। इंजनें अध्ययन में दूसरे में 'वर्षा' अध्ययन में तीसरे में, 'वप' अध्ययन में चौथे में, और सामाजिक, मूल, प्रहृत या केंद्रीय अध्ययन में अध्ययन। इसी प्रकार भाषा के अधिकांश शब्दों के सम्बन्धों तथा उनके विवरणों का पता लगाया जा सकता है।

वर्णनात्मक स्तर पर शब्द के अध्ययन की यह एक पद्धति थी। दूसरी पद्धति ही सबनी है उसी अध्ययन के अध्ययनों के अध्ययन के सम्भ में 'पां' के प्रयोग को देखना। अध्ययन इतना सूखम होता है कि कुछ अपवाहा को छोड़कर उन प्राय दूसरे समानार्थी शब्दों के साथ अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। पीछे प्रयोगविज्ञान में कुछ जोड़ों को लेकर देखा गया था। वही हमने देखा कि कुछ जोड़ों में अध्ययन का अन्तर था। वैसे गढ़ा में एक वा अध्ययन दूसरे की पठ्ठभूमि में अधिक स्पष्ट होता है। एक उत्तराहरण है—कट्ट वा अप्प यों तो कोओं में दुख द दिया जाता है तथा दुख का कट्ट किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि इन दोनों में किसी का भी छोड़कर अप्प दूसरे के सम्भ में या दूसरे की तुलना में अधिक अच्छी तरह समझा या समझाया जा सकता है। दुख या कट्ट दोनों समानार्थी ज्ञान हैं विन्तु दुसरा मानसिक है तो कट्ट गारीसिं।

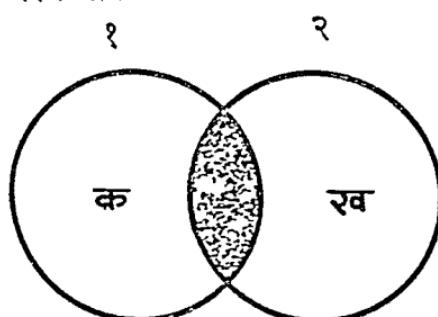
वस्तुत होता यह है कि इसी भाव या अध्ययन का एक लोग होता है और यदि उसके लिए एक सम्भिक गां—मान से दो—का प्रयोग हाना है कोई वभी तो दोनों गां एक दूसरे के पूरक होते हैं। अर्थात् अप्प अप्प व कट्ट

भाग को एक व्यक्त करता है तथा शेष को दूसरा—



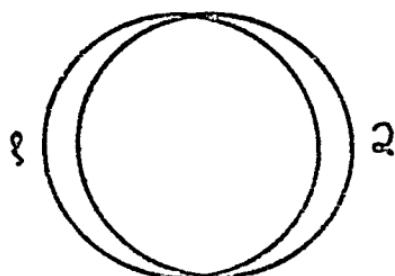
चित्र अ

और कभी कुछ प्रयोगो में दोनों समानार्थी होते हैं और कुछ में भिन्न। उदाहरण के लिए इस चित्र में काले भाग में—



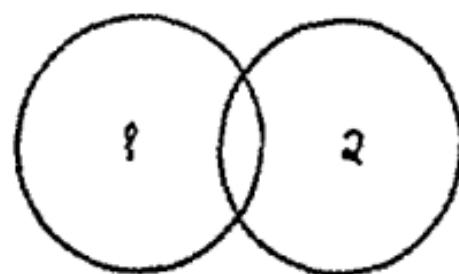
चित्र आ

दोनों का प्रयोग हो सकता है किन्तु खाली क भाग में एक का तथा ख में दूसरे का। प्रयोग या अर्थ का यह अन्तर कभी तो बहुत कम



चित्र इ

होता है और कभी बहुत अधिक



चित्र ई

उदाहरण के लिए माधार के निए अग्रेंटी के दो रक्त—‘बेस’ (base) तथा बेसिस (basis)—लें। इन दोनों के प्रमाणिक घट्य या प्रयोग में चित्र ‘अ’ वाली स्थिति है। ‘बेस’ का प्रयोग ठोस वस्तुओं के लिए (पहाड़) होता है, जबकि ‘बेसिस’ आरेकारिक रूप से तक आराप विद्वास जैसे मूड़प के लिए। इसी प्रकार ‘चाइल्डलाइक’ और चाइनिंग भी हैं। पहला अच्छा अम म याना है दूसरा बुरे म। कुछ लोग कभी-कभी नोनों को कुछ सद्भौं म गमानार्दी जसा प्रयोग करते हैं तो चित्र ई वाली स्थिति होती है। चित्र ई वाला स्थिति कभी नहीं होती।

उद्देश्य ध्येय की स्थिति चित्र ई नहीं है। प्रधिकार प्रयोगों में प्राप्त एवार्ड जस आते हैं विनु सनक प्रयोग। म उद्देश्य वह होता है जिसे पाने के लिए व्यक्ति प्रयत्नशील होता है, ध्येय वह है जिसपर प्रयत्न के समय हमारा ध्यान रहता है। इस तरह उद्देश्य म प्रयत्न का भाव प्रमुख है तो ध्येय म प्राप्त पर ध्यान का।

चित्र अ वाली स्थिति के कुछ और उदाहरण भी लिए जा सकते हैं। रोग के लिए हिन्दी म आधि और व्याधि दोनों शब्द खलत हैं विनु दोनों का अम म भेद है। भेद यह है कि आधि मानसिक दोभारी के लिए है तो व्याधि शारीरिक के लिए। इसी प्रकार हपियार के लिए अस्त्र और गस्त्र दो शब्द हैं। प्रथम म व अस्त्र आते हैं जिन्हें फौर कर मारते हैं जगे तार द्वारे य वे मात हैं जिन्हें हात य पकड़े हुए मारते हैं जस तत्त्वार। आविष्कार और अविष्कार भी इसी प्रकार के हैं। आविष्कार जिमता करते हैं उसका पहन म अस्तित्व नहीं रहता। अन्येष्टा जिमता चारत हैं उसका अस्तित्व पहन से रहता है अवैष्ट उस बेवल मामन ला दता है।

इस प्रकार के शब्द-वर्गों के अर्थ या ग्रन्थ पर ग्रावारित प्रयोग के स्पष्ट अतर का अध्ययन तुलना के आधार पर ही अच्छी तरह किया जा सकता है।

एक शब्द के एकाविक अर्थों के आपसी संबंध का अध्ययन भी इस वर्णनात्मक अर्थ-विज्ञान के प्रतर्गत ही आएगा। यों इसका ऐतिहासिक अध्ययन भी अपेक्षित है कि कैसे पानी का अर्थ इज्जत, वर्प आदि हो गया।

कभी-कभी कुछ भाषाओं में दुहरे प्रयोग चलते हैं। हिन्दी में भला-बुरा, खरा-खोटा, ऊँच-नीच इसी वर्ग के हैं। ऐसे प्रयोगों में प्राय हम पाते हैं कि बुरा या नकारात्मक या कोई भी एक भाव ही प्रमुख रहता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि कुछ शब्दों के साथ आकर कुछ शब्द अपना अर्थ प्राय खो-सा देते हैं। ‘उसने खूब खरी-खोटी सुनाई’ में ‘खरी’ का भाव तो बहुत नहीं दबा है क्योंकि वह स्वयं कम तीक्षण नहीं है, किन्तु ‘उसने बहुत बुरा-भला कहा’ में ‘भला’ का अर्थ विल्कुल नहीं है। ‘अगर फिर कुछ कहा-सुना तो ठीक न होगा’ में ‘सुना’ की स्थिति भी ऐसी ही है। ‘खडन-मडन’ के अनेक प्रयोगों में ‘खडन’ का ही अर्थ रहता है।

कुछ उपसर्ग भी अर्थ की दृष्टि से इसी प्रकार के हैं। ‘वे’ उपसर्ग वेकार, वेरहम, वेजान में तो पूरी तहर सार्थक है किन्तु भोजपुरी, मे अवधी, ब्रज आदि में ‘फजूल’ के अर्थ में प्रयुक्त शब्द ‘वेफजूल’ में ‘वे’ निरर्थक है।

इसी प्रकार ‘अनगड़’ ‘अनपढ़’ ‘अनजान’ में ‘अन’ सार्थक है किन्तु ब्रज भाषा-क्षेत्र के कुछ भागों (जैसे आगरा की बाह तहसील) में ‘गैर’ के अर्थ में प्रयुक्त शब्द ‘अनगैरी’ में निरर्थक है। ‘दुहरे नकारात्मक सकारात्मक’ वना देते हैं (double negative makes positive) का सिद्धात यहाँ नहीं चलता। मूलतः ऐसे प्रयोगों में, प्रयोक्ता के मन में कदाचित् ‘बहुत अधिक’ का भाव रहा हो। अर्थात् ‘वेफजूल’=बहुत अधिक फजूल या ‘अनगैरी’=बहुत अधिक गैर। किन्तु अब तो दोनों ही ‘फजूल’ और ‘गैर’ का ही अर्थ देते हैं। अवधी में ‘वृथा’ के अर्थ में ‘अविरथा’ का प्रयोग भिलता है। यह प्रवृत्ति काफ़ी पुरानी है। वैदिक साहित्य में ‘पिहित’ (छिपा हुआ) के स्थान पर ‘अपिहित’ एकाविक स्थलों पर आया है।

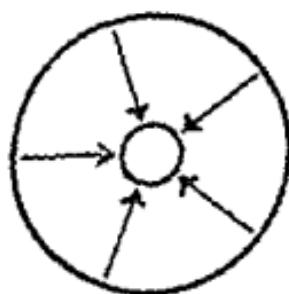
स्स्कृत के स्वार्थे प्रत्यय भी इसी वर्ग के हैं। मूलतः वे भी कदाचित् सार्थक रहे होगे किन्तु बाद में वे अपना अर्थ खोकर निरर्थक बन वैठे। घोट-घोटक, बाल-बालक। हिन्दी में ‘ड़’ भी ऐसा ही है:—मुख-मुखड़ा, आँख-आँखड़ी, लग-लँगड़ा।

विलोमाय भी वणनारमण अध्ययन के भतगत आता है। पहला प्रश्न तो यह उठता है कि विलोमाय है या ? 'भाई' वा विलोम 'भाभी' है या 'बहन' या दोनों में कोई भी नहीं। विलोमायों का विवेचक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सभी 'ए' के विलोमार्थी 'ए' हो ही यह आवश्यक नहीं। धारा घोड़ी कागज पत्थर, गहने जस अनदानेव सब्दों के विलोम नहीं होते। कुछ शब्दों के भलग भलग मदभों में अलग अलग विलोम होते हैं पाना जिट्ठी पानी धारा, पाला-सफ़र, पाला-गारा। जमीन का विलोम क्या है भासभाव या 'समुद्र'। मूरामौला, बड़ा छोटा दूर-नजदीक हलवा भारी धारा यों ही ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ सुविधापूर्वक विलोम निर्धारण हो सकता है।

'ए' के अथ वा ऐतिहासिक अध्ययन उपयुक्त अध्ययन की तुलना में अधिक मनोरंजन तथा सरल है। कवचित् इसी कारण इस दिता में काय भी काफी हुआ है। 'ए' के अथ के ऐतिहासिक अध्ययन का आशय यह है कि उनके अथ में क्या कुछ परिवर्तन हुआ है।

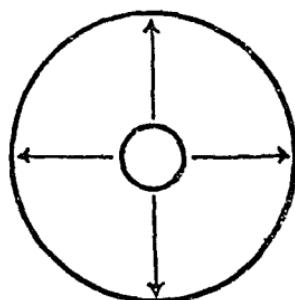
शब्दों के अथ में परिवर्तन तीन प्रकार का माना जाता है —

(क) अथ सकोच—इसमें पहले की तुलना में अथ सकुचित हो जाता है। उदाहरण के लिए 'मृग' का अथ पहले 'पशु' या, इसीलिए मिह को 'मृगराज (पशुओं का राजा)' कहा गया। अब मग का अथ हिरण, अथात केवल एक पशु है। अर्थात् इसके अथ का विस्तार सकुचित हो गया है। इसे चित्र हप में इस प्रकार दिखाया जा सकता है—



यहाँ बड़ा बत्त पूर्ववर्ती अथ है तथा द्योटा बत्त पश्वर्ती। इसी तरह 'मुण' का पुराना अथ पश्ची है। इसीलिए जलपक्षी को मुर्गायी (मुण+पाण+ई) कहते हैं। अब मुण केवल एक पश्ची है। केवल या सस्तृत म पुराना प्रथाग दुख पौर मुख दोनों के लिए मिलता है अब वह केवल दुख तक सीमित है।

(ख) अर्थ-विस्तार—यह अर्थ संकोच का उलटा है। इसमें अर्थ विस्तृत हो जाता है। प्रारंभ में 'स्याही' नाम इसलिए पड़ा था कि वह 'स्याह' या काली



होती थी। अब स्याही का प्रयोग काली के अतिरिक्त हरी, नीली, लाल आदि स्याहियों के लिए भी होता है। इस तरह 'स्याही' शब्द का अर्थ-क्षेत्र पहले की तुलना में विस्तृत हो गया है। 'सब्जी' भी इसी प्रकार का शब्द है। हरी होने के कारण 'सब्जी' नाम पड़ा था, अब तो बैगनी (बैगन), सफेद (मूली) प्याजू (प्याज), पीली (सीताफल) आदि सभी रंग की तरकारियाँ सब्जी हो गई हैं। संस्कृत में 'परश्व' का प्रयोग आनेवाले परसों के लिए तथा 'कल्य' का प्रयोग आनेवाली कल के लिए होता था, अब उन्हीं से विकसित 'परसों' और 'कल' आनेवाले और बीते हुए दोनों के लिए आते हैं। इस प्रकार अनेक शब्दों के अर्थ में विस्तार हो जाता है।

अर्थादेश—कभी-कभी अर्थ में न तो विस्तार होता है, और न संकोच, बल्कि अर्थ कुछ-का-कुछ हो जाता है। इसे अर्थादेश कहते हैं। जैसे 'गाँवार' का मूल अर्थ है 'गाँव का रहने वाला' पर अब इसका अर्थ उजड़, असंस्कृत आदि हो गया है। इसी प्रकार बौद्ध (बुद्ध के अनुयायी) का बुद्ध (मूर्ख), या 'दुर्जन्म' (जिसका मिलना कठिन हो) का दुलहा (वर, पति), भी अर्थादेश के उदाहरण हैं। अर्थादेश किसी न किसी प्रकार के साहचर्य की भावना से होता है। न ए अर्थ का सबध किसी न किसी स्तर पर पुराने अर्थ से होता है।

इन तीनों के ही उदाहरण कभी-कभी अर्थापकर्य एवं अर्थोत्कर्ष के उदाहरण स्वरूप भी रखे जाते हैं। अर्थापकर्य में अर्थ अच्छे से बुरा हो जाता है। 'हरिजन' का मूल अर्थ 'भक्त' था, अब 'अहूत' है। संस्कृत का वज्र वटुक (पक्का ब्रह्मचारी) हिन्दी में 'वज्रवट्ट' (मूर्ख) बन गया। 'हजरत ईसा' का 'हजरत' आप तो पूरे हजरत निकले' में कहाँ से कहाँ चला गया है। इसके उलटे कभी-कभी अर्थ बुरे से अच्छा भी हो जाता है। संस्कृत में 'कर्पट' का अर्थ फटा-पुराना कपड़ा है पर हिन्दी 'कपड़ा' में ऐसा कोई भाव नहीं है। 'साहस'

गंगा नदी में स्वभिकार की यो धारि बुरा काम के लिए प्राप्त है जिसने हिन्दी में यह प्राप्त भविते थर्ड में प्राप्त है। यसका प्रयोग और धर्योत्तर धर्य परिवर्तन के समान रूप होता है। उपर्युक्त तीरा परिवर्तनों में ही प्राप्त उत्तर प्राप्तार्थ के बारे की एक में तथा दूसरे की दूसरे के रूप सत्त्व हैं।

मग तां प्रियता के लिए या शिक्षा के महत्वात् में इन नाम कर प्रश्न दी जाती थात तांप्री का शर्ता की गई। इसमें कोई सदृश नहीं कि भाषणमा मध्यिकारा प्रथ परियता इसी प्रकार की है। जिन्हें बुद्ध योदे प्रथ परि पता एवं भी होता है जो उत्तर शुभ भिन्न होता है। उत्तरण के निए ऊपर प्रथ गश्ता के इस बात का उत्तरण किया गया कि किसी विषय परि मात्र का प्रथ ताप्त गतुचित हो जाता है कि तुम इसके परिचिक ऐसा भी प्राप्त होता है कि किसी शब्द के बहुपदी में वाचानिरपेक्ष एवं ही या बुद्ध ही प्रथ रह जाते हैं, तां प्रकाल्प हो जाते हैं। जल्द अप्रेवी भाषा से भोजपुरी म बाहो शब्द प्राप्त है जिसमें एक मल्लूचान (solution) है। अबही म सल्लूचान के बहुपदी प्रथ हैं किन्तु भोजपुरी म इसका प्रयोग केवल एक प्रथ म—प्रोट व भी यह गतुचित प्रथ म—होता है। यही इस 'शब्द' का प्रयोग केवल साइकित से ट्रूयूट म है। पचर को टीक बरत म बाम आने वाले चिपचिप पराख के लिए होता है। किन्तु म 'पचर' की भी यही स्थिति है। यह केवल रखर को चोड़ा म हुए छेद के लिए आता है। रखड़, चेन, मच वक, बूट सड़न आदि शब्द भी इसी अणी के हैं। एम बहुत मध्यिका 'शब्द है' म सहजन से भी आए हैं। उदाहरणात् अग, अतर, अतरा, भगा भन, भमय, भासन, जात निष्ठ, पकिन, पकन पर, परम आदि शब्दों के प्रयोग हिंदी से लिने अपेक्षा म हात है उतन ही अपेक्षा म सहजत म नहीं होते थे। सहजत म कही प्रविक प्रथ (सबद्ध) थे। बसनुन विसा भी अपेक्षा से किसी दूसरी भाषा म जाई शब्द जाता है को प्रथ अपन कीमित प्रथ म हो जाता है। इसके बहुत कारण हैं। कभी तो विषय सदभ म 'शब्द' का जाते के बारण उसके साथ वही अपेक्षा जाता है, और जेप म नहीं जाते। कभी कभी ऐसा भी होता है, अपेक्षा का दूसरी भाषा म आवश्यकता नहीं रहती या रहती भी है तो उसके लिए उसका प्रपत्त शब्द प्रयोग म आता है।

व भी-नभी कुछ उदाहरण ऐस भी मिलते हैं जिनम किसी नापिक इकाई मध्य परिवर्तन नहीं होता, अपितु वह पूरण नमाप्त ही रहता है। यीथ इसका उदाहरण— π (बालक, घोटक), ω (फक्तल) या (*अनगरी*)—दिए जा सकते हैं। उन भावारों व साथ कहीं वह भी कुछ मला-नुरा कर देगा

.....' तथा 'उन आवारो के साथ कही वह भी कुछ बुराकर बैठ रहा है' में विशेष अन्तर नहीं लगता। तो क्या ऐसे प्रयोगों में 'भला' की अर्थ आने वाले शब्द भी अपना अर्थ खो बैठे हैं या खो बैठने की ओर अनुख़त हैं?

अर्थ-परिवर्तनों के पीछे अनेकानेक कारण काम करते हैं, जिनके लिए प्रस्तुत पक्षियों के लेखक की पुस्तक 'भाषा-विज्ञान' का 'अर्थ-विज्ञान' शीर्षक अध्याय देखा जा सकता है।

विभिन्न शब्दों को अलग-अलग लेकर उनमें घटित अर्थ परिवर्तनों का मकारण विवेचन भी ऐतिहासिक धनि-विज्ञान में अध्ययन की एक अच्छी दिशा है। उदाहरणार्थ 'तात' से विकसित शब्द 'दादा' पितामह, बड़ा भाई तथा गुंडा तीनों शब्दों में आता है। यह अध्ययनीय है कि किन कारणों से और कैसे 'तात' का अर्थ इन शब्दों में परिवर्तित हो गया। इसी तरह किसी भी भाषा के सभी या अधिकांश शब्दों का अध्ययन किया जा सकता है।

तुलनात्मक अर्थ विज्ञान की एक-दो वातों की ओर ऊपर सकेत किया जा चुका है। तुलना, वर्णन और इतिहास दोनों की हो सकती है। तुलनात्मक अर्थ-विज्ञान एक भाषाभाषी के लिए दूसरी भाषा सीखने या एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने में बड़ा सहायक होता है। ऐसा प्रायः होता है कि एक

वेल्श	डैनिश	
GWYRDD	GRØN	१
GLAS	BLÅ	२
LLWYD	GRAU	३
	BRUN	४

भाषा के किसी शब्द के लिए दूसरी भाषा में प्राप्त प्रतिशब्द उस शब्द का पूरी तरह प्रतिनिधित्व नहीं करता। उदाहरण के लिए अंग्रेजी शब्द *play* (play) के एक हिस्सी 'मैलना' है, किन्तु वाज़ों के सदर्भ में 'मैलना' से काम नहीं चलता, 'ऐ' के लिए 'दराना' का प्रयोग करना पड़ता है। कभी-कभी इस प्रकार की

शब्दों का अध्ययन

समस्याएँ भीर गहरी हो जाती हैं। रगा को लेकर कुछ भाषाओं की तुलना की गई है। यहाँ एक उदाहरण लिया जा सकता है। वेला भीर डनिश भाषाओं में रगा के लिए प्रयुक्त शब्दों के अथ पूरी तरह समानातर नहीं है।

पिछले पाठ के चित्र से स्पष्ट है कि वेला में इन रगों के तीन वर्ग हैं तो उनके स्थान पर डनिश में चार हैं। वेला के १ से डनिश के १ का विस्तार बड़ा है। वह वेला के २ के कुछ भाग को भी अपने में समाहित कर लेता है। वेला का २ डनिश के १ के कुछ भाग, पूरा २ तथा ३ के कुछ भाग को अपने में ले लता है। अब वही यह भस्माना तरता अलग अलग स्थृतियों की भाषाओं में अवृत्त अधिक मिलती है। विभिन्न भाषाओं के विभिन्न शब्दों की अथ सीमाएं समान नहीं होती। अनुवादक के लिए ऐसे स्थलों पर बढ़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। हिंदी अपनी में इस अली के दान किनासफी या धम रेलिङ जस अनेक शब्द खाजे जा सकते हैं। कभी-कभी सबद्ध भीर भौगोलिक दृष्टि से पास पास वी भाषाओं में भी यह अतर दिखाई पड़ता है। इस दृष्टि से एक भाषा वी विही भी दो बोलिया वा अध्ययन महत्वपूर्ण हो सकता है। उदाहरण के लिए हिंदी में ससुर भीर मौसा दो शब्द हैं। भोजपुरी भाषी अपने भाई के ससुर को भी ससुर कहेगा जिन्हें हरियानी भाषी भाई के ससुर वो मौसा कहेगा। अर्थात् भोजपुरी भीर हरियानी में ससुर भीर मौसा वी अथ सीमाएं समान नहीं हैं। भोजपुरी भीर बज के चाचा चाची या समधी में भी इसी प्रकार वा अतर है।

मूल भाषा से उससे निकली भाषाओं में अनुवाद करने में अथ विषयक एक द्वासरी पहली वभी अभी सामने आती है। मूल भाषा के अनन्त शब्द उससे निकली भाषाओं में मूल या परिवर्तित रूप में प्रयुक्त होते हैं जिन्हें अथ की दृष्टि से उन गान में अतर रहता है। अनुवादक कभी-कभी उन्हीं गानों को रख देन वी गलती कर बढ़ाता है। लटिन में कूल्हे के लिए औक्सा (cortex) शब्द है। जिन्हें यही गान से लटिन से निकली भाषाओं में जौष (francese cuisse) या इतालवी (coscia) के अथ में प्रयुक्त होता है। इसी तरह सस्तृत में जया पुटने भीर टखने के बीच का भाग है। जिन्हें हिंदी में वह घुटन भीर घमर के बीच वा। कटि हिंदा में घमर है जिन्हें सस्तृत में नितम्य या द्रुत्ता। हिंदी याती भीर सस्तृत स्थाली मूलत एक होने पर भी एकार्थी नहीं है। सस्तृत याटिया बगाली में पर कावाचक (बाढ़ी) है भीर हिंदी में 'बायवाना' (बाढ़ी) वा।

एक ही स्रोत भाषा से दो शब्दों में जाने पर भी शब्द का अर्थ कभी-कभी वदल जाता है। संस्कृत स्थाली हिन्दी में थाली है। यही शब्द तामिल में स्ताली है और वहाँ उसका अर्थ ‘मिट्टी की तश्तरी’ ‘खाना पकाने का वर्तन’ तथा ‘पानी पीने का वर्तन’ है। उडिया में अंगार का ग्रथ कोयला है जबकि हिन्दी में कुछ और है। ‘वही’ हिन्दी में हिसाब-किताब की होती है, उडिया में ‘बही’ पुस्तक को कहते हैं। हिन्दी में ‘जरूर’ आवश्यक है, तमिल में उसका प्रयोग ‘तेजी’ और ‘त्वरितता’ के लिए भी होता है। इसी प्रकार ‘अवसर’ ‘आलस्य’ ‘उचित’ ‘प्रसंग’ तथा ‘लेख’ हिन्दी में कमश. मीका, सुस्ती, वाजिव, सदर्भं तथा निवन्ध हैं तो तेलुगु में आवश्यक, देर, मुफ्त, व्याख्यान, चिट्ठी। तुलनात्मक में इस प्रकार के अध्ययन भी आते हैं। ●

अध्याय ९

स्वनविज्ञान (ध्वनिविज्ञान)

अपने पूरे विस्तार में भाषा के विशेषण वी यह शब्दों व्याप्ति (स्वन) की दृष्टि से केवल शब्दों का ही अध्ययन नहीं करती, अपिनु वाक्य स्तर की रचनामांक का भी अध्ययन करती है, किन्तु यहाँ हम इसे प्रायः शब्द-स्तर तक ही सीमित रखेंगे। वस्तुतः आज ध्वनिविज्ञान एवं ध्वनिप्रामविज्ञान के आनंद जो काम हो रहा है वह सुरक्षण (intonation) वाक्य बलाधात् तथा संयोग (junction) आदि वातों को द्योड़ कर प्रायः शब्दों के अध्ययन तक ही सीमित है। किसी भी ऐसे वाय वो उठा लिया जाय अधिकांश मामग्री शब्दों तक ही सीमित मिलती है। और इसलिए उस पर आधारित निवाय भाषा के पूरे स्वरूप पर लागू नहीं हो सकते।

शब्दों का ध्वनि की दृष्टि से अध्ययन इई प्रकार से किया जा सकता है। इसका प्रारम्भिक स्वरूप तो यह हो सकता है कि किसी भाषा में प्रयुक्त शब्दों को एक वर्गे उनका ध्वनिवानिक विशेषण किया जाय और यह पना संगाया जाय कि उस भाषा में मुहूर्यन कुल कितना ध्वनिया वा प्रयोग होता है। भाषा में प्रयुक्त में विभिन्न प्रकार का ध्वनिया हा ध्वनिप्रामविज्ञान (phonemics) में सध्वनि (allophone) कहताही हैं इन सध्वनियों के बारे रण का अध्ययन करके उस भाषा के ध्वनियामों का नियरिण किया जाता है। ध्वनिप्रामविज्ञान में परिपूरक वितरण (complementary distribution) में होती है। इस तरह भाषा में सध्वनियों की सह्या काङड़ी वडी होती है किन्तु ध्वनियामों की सह्या मरेगाहत द्योनी होती है। यहाँ इस विषय का और विस्तार से सना चाहनीय न होगा। सख्त की पुस्तक 'भाषाविज्ञान' के ध्वनिविज्ञान नामक अध्याय के ध्वनिप्रामविज्ञान नीपह भाषा को इस मद्दत में दुख गिराएँ।

लिए देखा जा सकता है। और विस्तार के लिए देखिये पाइक की पुस्तक 'फोनेमिक्स'

शब्दों में ध्वनियाँ आसपास की ध्वनियों से प्रभावित होती हैं। होता यह है कि प्राय आगे आनेवाली ध्वनि के उच्चारण की तैयारी में उच्चारण-अवयव पूर्ववर्ती ध्वनि का उच्चारण परवर्ती ध्वनि के अनुरूप कर देते हैं। उदाहरण के लिए जब हम 'डाकघर' शब्द बोलते हैं तो वस्तुतः 'डाकघर' नहीं कहते। 'घ' का उच्चारण करने के लिए स्वरत्रिया पहले से एक दूसरे के समीप आ जाती है। अतः पूर्ववर्ती ध्वनि 'क' 'ग' हो जाती है। 'घ' के घोप होने के कारण 'क' का घोप रूप 'ग' हो जाता है अर्थात् घोप हो जाने की क्रिया काम करती है। इसका आशय यह हुआ कि जिस रूप में कोई भी भाषा लिखी जाती है उसी रूप में यदि कोई पढ़ने का यत्न करे तो उस भाषा का स्वाभाविक उच्चारण वह नहीं कर सकता। इस तरह इस दृष्टि से शब्दों का अध्ययन शब्दों का ठीक उच्चारण जानने के लिए आवश्यक है। उच्चारण में यदि कोई व्यक्ति इन वातों का ध्यान न रखे तो वह शब्दों का ठीक उच्चारण नहीं कर सकता। हिन्दी शब्दों का इस दृष्टि से विश्लेषण किया गया है, जिसके कुछ प्रमुख निष्कर्ष निम्नांकित हैं।

(१) शब्द के मध्य या अन्त में, आने वाला कोई ऐसा संयुक्त व्यंजन जिसका दूसरा सदस्य य, व, र, या ल, हो, उच्चारण में तीन व्यजनों का संयुक्तरूप हो जाता है, क्योंकि प्रथम व्यजन द्वितीय या दीर्घीकृत हो जाता है:

वर्तनी	वास्तविक उच्चारण
उपन्यास	उपन्न्यास
अन्य	अन्न्य
कन्या	कन्न्या
शक्य	शक्क्य
अन्वय	अन्न्वय
परिपक्व	परिपक्क्व
तत्त्व	तत्त्व
चक्र	चक्क्र
ग्रजस्त	अजस्त्र
अकल	ग्रक्कल

(२) उपर्युक्त परिस्थितियों में यदि प्रथम व्यजन महाप्राण हों तो उसके

पूर्व एक प्रत्यक्षाण व्याजन आ जाता है

भ्रम्यास	भ्रम्यास
सम्य	साम्य
मुस्य	मुक्ष्य
मध्य	मद्ध्य
मध्व	मद्ध्व

(३) यदि पूर्ववर्ती अक्षर (syllable) की प्रतितम ध्वनि क, च ट त, प हो और परवर्ती अक्षर की प्रथम ध्वनि धोप व्यजन हो तो क, च ट, त, प, नमां ग, ज, ड, द, व हो जाते हैं

हावधर	डारधर
नावधर	नाझधर
ठाटवाट	ठाछवाट
मतदाता	मददाता
धूपवत्ती	धूब्बत्ती

(४) इसके विपरीत यदि परवर्ती अक्षर की प्रथम ध्वनि धोप व्यजन हो तो पूर्ववर्ती अक्षर के भ्रात में आने वाले ग, ज, ड, द व नमां क, च, ट, त, प हो जाते हैं

नागपुर	नावपुर
आजवल	आञ्जल
बदतमीज	बतमीज
कितावधारी	किताप्पारी

(५) उपयुक्त परिस्थितियों में पहल से छ ठ, य, फ हों तो नमां श, च, ट, त, प हो जाते हैं

लेखपाल	लेवगाल
पूछताछ	पूच्चताछ
अठपहला	अटपहला
हाथ पाँडि	हात्पाँवि
हाँस्कर	हाँस्पर

सस्कृत साधियों के नियम भी इसी प्रकार थे। एक वही अजीब बात है कि यद्यपि विश्व के सभी लोगों के उच्चारण-प्रवयव आप समान होते हैं

किन्तु इस प्रकार के नियम विभिन्न भाषाओं में अलग-अलग होते हैं। उदाहरण के लिए ऊपर हमने देखा कि पूर्ववर्ती ध्वनि, परवर्ती से प्रभावित हो रही थी। अग्रेजी में वात ठीक उलटी है। परवर्ती ध्वनि पूर्ववर्ती से प्रभावित होती है। इसी कारण dogs, clubs, buds के उच्चारण डॉग्ज, क्लब्ज, बड्ज होते हैं। यदि ये शब्द हिन्दी में होते तो इनके उच्चारण डॉक्स, क्लप्स, बट्स हो जाते। इस तरह वर्तनी उच्चारण की दृष्टि से भ्रामक होती है।

ऊपर पाईरवर्ती ध्वनियों के प्रभाव के कारण परिवर्तन से वर्तनी और उच्चारण में अन्तर की वात की जा रही थी। शब्दों की वर्तनी और उच्चारण में एक अन्य प्रकार भी अन्तर मिलता है, और उसका भी अध्ययन ध्वनिविज्ञान में अपेक्षित है। होता यह है कि प्रारम्भ में जब कोई भी भाषा लिखी जाती है, तो शब्दों की वर्तनी उच्चारण के अनुकूल होती है, किन्तु वर्तनी तो वही रहती है और उच्चारण परिवर्तित होता चला जाता है। उच्चारण में जितना ही अधिक परिवर्तन होता है वर्तनी और उच्चारण के बीच की खाई उतनी ही ज्यादा बढ़ती चली जाती है। अग्रेजी में डौटर-डाउटर (daughter), टॉक-टॉल्क (talk), नो कनोव (Know), साइकॉलजि-प्साइकॉलजी (psychology) नी-ग्नाव (gnaw), हैच-हैटच (hatch) में यह अन्तर स्पष्ट है।

हिन्दी में प्रायः लोग समझते हैं कि उच्चारण और वर्तनी में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु वास्तव में यह वात नहीं है। कुछ प्रमुख अन्तर निम्नांकित हैं—

(१) हिन्दी शब्दों के लेखन में अक्षरात अ वर्तनी में तो है, किन्तु उच्चारण में नहीं है राम्—राम, आवश्यकता—आवश्यकता, अप्ना—अपना, बोल्चाल्—बोलचाल, फार्सी—फारसी, चल्ना—चलना।

(२) अनेक तत्सम शब्दों में हम प का प्रयोग करते हैं, किन्तु वास्तविक उच्चारण में श बोलते हैं शेश—शेष, वर्श—वर्ष, विशम—विपम।

(३) इसी प्रकार कुछ तत्सम शब्दों में हम ऋ लिखते हैं किन्तु बोलने में हम 'रि' बोलते हैं क्रिश्च—क्रिष्ण, रितु—ऋतु, क्रिपा—कृपा, कर्त्रि—कर्तृ।

(४) जिसे हम गा लिखते हैं उसका भी अधिकाश-भाषियों में उच्चारण डँ हो गया है। क्रिझ्च—क्रिष्ण, प्रडँ—प्रण, मर्डँ—मणि, विश्वाडँ—विष्णु।

(५) विसर्ग को हम 'ह' उच्चरित करते हैं प्रायह—प्राय, विशेषतह—विशेषतः, क्रमशह—क्रमश।

वर्वों का अध्ययन

(६) श का मूल उच्चारण ज+ज या माज लिखते तो श ही हैं जिन्हें आयसमाजी लोग इसका उच्चारण ज्य या ज्यें करते हैं तथा भय लोग इसे ग्य या ग्यें लिखते हैं। मराठी मार्गि ग्य भाषाओं में इसका उच्चारण तो मौर भी मिल है। ज्यान ज्यान ग्यान ग्यान—पान।

(७) क का मूल उच्चारण क+क है जिन्हें अब इसे क+क् लिखते हैं दक्षा—दक्ष दक्षा—कक्षा।

(८) कुछ पुर्कल शब्द ऐसे हैं जो लिखते हैं और तरह से जाते हैं जिन्हें बोले और तरह से जाते हैं

लिखित रूप

साहित्यिक	स्थायी
स्थायी	गयी
गये	लिये
रखा	दो
दो	नव्वे
उत्तरायी	दिवेदी

उच्चरित रूप

साहित्यिक	स्थाई
स्थाई	गई (ऐसे भी लिखित)
गए ()	निए (,)
रखा	दो (कुछ लोगों द्वारा उच्चरित)
दो	न दे न व्वे न भे
उत्तरायी	उत्तराई
दिवेदी	दुवेझी

"—ने की घनियो का साम्बिक अध्ययन भी किया जा गया है। इसे पता चलता है कि विभिन्न स्वरों और व्यवनों का अनुपात क्या है। इनमें भाषार पर टाइपराइटर, मायुलिपि प्रक्रम में तो महायता मिलनी ही है किंतु व्यक्ति की शक्ति का अध्ययन भी किया जा गया है।' विवर की घनता में हिन्दून ने स्पष्टीय घनियों पर काम किया। १९१३ में मार्कोर न पुनिर्माण की एक रचना के माध्यार पर स्पष्टीय भाषा में स्वरों के गायन-गाय

¹ Vowels and Consonants as features of style some poems of Goethe and Klopstock—F G Ryder, Linguistics 39 pp. 46—110.

आते के नियम निकाले। हिन्दी ध्वनियों की गणना पर भी देश और विदेश में कार्य हुए हैं। मेरी अपनी गणना के अनुसार हिन्दी में लगभग २१-२२ प्रतिशत अधोप ध्वनियों का, तथा ७८-७९ प्रतिशत धोप ध्वनियों का प्रयोग होता है। 'हिन्दी के स्वर और व्यजनों में कौन अधिक प्रयुक्त होते हैं और कौन कम', इस बात का अध्ययन कई लोगों ने किया है। मेरी अपनी गणना के अनुसार हिन्दी स्वरों का प्रयोग-क्रम (अधिक प्रयुक्त स्वर पहले है, और कम प्रयुक्त बाद में) अ, आ, ए, इ, ई, ओ, उ, ऐ, औ, ऊ है। व्यजनों का क्रम है : क, र, न, त, स, म, प, ह, य, ल, व, द, ज, श, ग, व, च, थ, भ, घ, ख, ट, ड, ण, छ, ड, फ, ठ, घ, भ, ढ, झ। इसी प्रकार की गणना हिन्दी को लेकर रूस में भी हुई है तथा पूना में भी। उन लोगों के परिणाम आपस में भी थोड़े भिन्न हैं, तथा मेरे परिणाम से भी कुछ भिन्न हैं। स्वर-व्यजनों दोनों को साथ रखे तो क्रम अ, आ, क, र, ए, न, त, इ, ई, स, म, प, ह, य, ल, ओ, उ, व, द, ज, श, ग, ऐ, व, च, थ, भ, औ, घ, ऊ, ख, ट, ड, ण, छ, ड, फ, ठ, घ, भ, ढ, झ आता है।

हर भाषा में ध्वनिक्रम एक समान नहीं होते। हिन्दी स्वर एवं व्यजनों की साम्मिलित क्रम-सूची ऊपर दी गई है। नीचे दी जा रही गुजराती की सूची तुलनीय है। अ, आ, न, ए, र, ई, ओ, म, क, व, य, स, प, उ, त, ल, ज, ह, द, ग, थ, ण, छ, थ, व, घ, श, इ, ट, ड, च, ख, छ, भ, ऊ, फ, ष, ठ, घ, भ, ऐ, ढ, औ। इसमें ड, झ नहीं है। उल्लेख्य है कि इसीलिए यदि हिन्दी और गुजराती के नागराक्षर के टाइपराइटर बने तो दोनों के की-बोर्ड एक-जैसे नहीं होंगे।

ध्वनियों का ऐतिहासिक अध्ययन, ध्वनि-परिवर्तन और उसके कारणों से सम्बद्ध है। ध्वनियों में परिवर्तन लोप (ध्वनि का लुप्त हो जाना—स्थाली—थाली, एकादश-ग्यारह, द्वादश-वारह, कोकिल-कोयल), आगम (किसी नई ध्वनि का आ जाना—अस्थि-हड्डी, भक्त-भगत, दजन-दर्जन, समुद्र-समुन्दर), विपर्यय (दो ध्वनियों का एक-दूसरे के स्थान पर चला जाना—वाराणसी-वनारस, चित्त-चिन्ह, ब्राह्मण-ब्राम्हण, वफ-वर्फ), समी-करण-(दो असमान ध्वनियों का समान हो जाना—चक्र-चक्की, पत्र-पत्ता धर्म-(प्राकृत में) धर्म), विपरीकरण-(दो समान ध्वनियों का असमान हो जाना। यह प्रवृत्ति बहुत कम मिलती है, तथा जिन शब्दों में मिलती भी है, उन्हे और रूपों में भी देखा जा सकता है। लागूली-लगूर), महाप्राणीकरण (अल्पप्राण का महाप्राण हो जाना—सर्व-सभ (भोजपुरी में) नव्वे-नव्वे, (कुछ लोगों के उच्चारण में), वेष-भेष), अल्पप्राणीकरण (मझप्राण का अल्प-प्राण हो जाना—आज बोलने में प्रायः हम भूख के स्थान पर भूक् तथा हाथ के

स्वान पर हात कहते हैं। उर्दू मता भूक निखते नी है) शोपीकरण (धरोद धनि का धाप हो जाना—मकर मगर ककण-कगन कुचिका-कुनी), धवारण अनुनासिकता (स्वास-साँस, अथु भासू भू भौ सप-सर्प) आदि इसे म होता है तथा इसके कारण मुख सुख या वज्चारण-सुविधा भजान, भासर व्युत्पत्ति, बोलन म शीघ्रता, लेखन आदि है। (विस्तार के लिए देखिए लखन की पुस्तक 'भाषा विज्ञान' के धनिविज्ञान गोयक अध्याय का धनिन्यरिवतन शीपक अंश)।

ऐतिहासिक स्वनविज्ञान के लक्ष्य म हुए धनि-परिवर्तनों के अध्ययन विद्वनपण और वर्गीकरण के धारार पर धनि परिवर्तन सबधी नियमों का भी निर्धारण होता है। यिम याममां और बनर वे प्रतिद्वं धनि नियम (देखिए लेखन की पुस्तक 'भाषाविज्ञान' के धनिविज्ञान अध्याय का धनि नियम' शीपक अंश) इसी प्रकार के हैं। हिन्दी म भा इस प्रकार वे कुछ नियमों का निर्धारण (विस्तार के लिए देखिए लखन की पुस्तक हिन्दी भाषा के प्रथम अध्याय 'धनि' म हिन्दी गानों मे धनि परिवर्तन सबधी नियम' शीपक अंश) किया गया है। हिन्दी के प्रमुख धनि नियम निम्नांकित हैं

(१) क्षतिपूरक दीर्घीकरण का नियम—सस्तृत गानों म संयुक्त या दीप (द्वित) व्यञ्जनों के पूर्व यदि हस्त रस्त हो तो हिन्दी म उस हस्त रस्त के स्पान पर दीप स्वर हो जाना है। बम-बाम सन्न सान, पट्ट-पाठ, सप-नाप, भिक्षा भीत, जिह्वा जीभ दुष्प-दूष, अगुण्ठ अगूठा।

(२) तुर्जों-कारसा भाष्यों के पर्वत के विशेष ह (हा इ-मुख्लसी) के भा हो जाने का नियम—बस्तृ-बस्ता खड़ानह-सड़ाना तिनारह, तिनारा, तुतह-तुर्जी एसह-गुस्सा, तमाह-नमामा।

(३) महाप्राणों के ह' हो जाने का नियम—सस्तृत गानों के हिन्दा म तद्भव होन पर स्वरमध्यग महाप्राण धनियाँ ह म परिवर्तित हो जाती हैं मुख मुह प्राप्युण पाहूत मध्य मह यूथी-जूनी गोदूम-झहू नपि-दटी, बरवास बट्टल थाभीर पर्वीर ग-भ-भहा। परवान-मध्य बुद्ध गानों म धय स्थितियों म होन पर भी महाप्राण का ह हो जाता है। जग मू (पानु) रा हो।

(४) साहूत गानों के स्वर-मध्यम 'म का 'व' हो जाने का नियम—स्यामल-मौवता थाम-नह मौवता थाम-गौर बमद-बैस बुमारनू रर पुम पूम। ऐसे गानों म प्राय पूरबीनी स्वर द्वारा नियमित हो जाता है।

उपर्युक्त नियम रसरा तथा मुख स्वर्ता के मध्य म य। न्यी उसार गमुक्त अद्वना के गद्य म भी नियमों का नियमिता दिया का चुका है।

ऐसा प्राय होता है कि किसी एक भाषा से शब्द एक से अधिक भाषाओं में जाते हैं, और उन अलग-अलग भाषाओं में उसका रूप (छवि की दृष्टि से) अलग-अलग हो जाता है। उदाहरण के लिए स्थूलता में 'सप्तनी' शब्द या हिन्दी में उसका रूप 'सौंत' बना किन्तु पजावी में 'सौकन' हो गया। (व्युत्पत्तिविज्ञान में इस शब्द पर विस्तार से विचार किया जा चुका है) ऐसे परिवर्तनों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। कैसे एक ही शब्द कई भाषाओं में जाकर अनेक रूप बारण कर लेता है? होता यह है कि हर भाषा की अपनी विशेष छवि-व्यवस्था होती है। इसी कारण एक ही शब्द विभिन्न छवि-व्यवस्थाओं में जाकर विभिन्न रूप बारण कर लेता है। कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि उसे पहचानना भी कठिन (स्थूलता अध्यापक > मैथिली भा) हो जाता है। नीचे इस प्रकार के कुछ वहुरूपी शब्द दिए जा रहे हैं।

- (१) स्थूलता कुठारक > पजावी कुलहाडा, गुजराती कुहाडो, मराठी कुरहाड
- (२) स्थूलता अक्षयतृतीया > मराठी अखजा, हिन्दी आखातीज
- (३) स्थूलता कच्छप > हिन्दी कच्छुआ, उडिया केच्छु, मराठी कासव
- (४) स्थूलता उपाध्याय > सिंधी वाझो, हिन्दी ओझा, मराठी वाजा
- (५) स्थूलता कपिथ > भोजपुरी कइँत, सिंधी कविटु, हिन्दी कैथ
- (६) स्थूलता अखोट > गुजराती अखोड, हिन्दी अखरोट
- (७) संस्कृत अग्निष्ठिका > हिन्दी अगीठी, मराठी ओँकिट
- (८) स्थूलता कुम्भाड > हिन्दी कुम्हडा, वगाली कुमड़ा, भोजपुरी कोहडा, ग्रासामी कोमोरा
- (९) स्थूलता गुड > हिन्दी गुड, भोजपुरी गुर, गुजराती गोळ
- (१०) स्थूलता कृत्तिका > सिंधी कर्यूँ, मराठी कात्या, सिहली कति, भोजपुरी कच
- (११) स्थूलता कैवट > हिन्दी केवट, भोजपुरी खेवट, सिहली केवुळा
- (१२) स्थूलता कोकिल > सिहली कोबुला, भोजपुरी कोइलर, हिन्दी कोयल
- (१३) स्थूलता केदारिका > भोजपुरी कियारी, हिन्दी क्यारी
- (१४) स्थूलता गर्भ > पजावी गव्म, वगाली गाव, हिन्दी गाभा, भोजपुरी गोभा
- (१५) स्थूलता कपर्द, कपर्दिका > हिन्दी कौडी, मराठी कवडा, सिहली कवडिय, भोजपुरी कउडी
- (१६) स्थूलता वदर > मराठी भेर, हिन्दी वेर, भोजपुरी वइर
- (१७) स्थूलता मुकुल > वगाली बोल, हिन्दी बौर, भोजपुरी मउर, गुजराती मोहोर

- (૧૬) સરશુત પસરારિાત > પજાવી ચાલો હિન્દી ચાલીએ ગુજરાતી પાઢીએ
- (૧૭) સરશુત દ્વાપા > ઉદ્ઘિયા યાદ હિન્દી દ્વાર દ્વાર તિહલી સધા
- (૨૦) સરશુત પૃત > ગિરસા ગિર મોજપુરી થીડ પાવ દ્વારી થી પજાવી કરો
- (૨૧) સરશુત સાંદ્રાયો > મોજપુરી સમયો ઉદ્ઘિયા સમુદ્રી
- (૨૨) ઘરબી ગોરવા > મોજપુરી સુરવા ઉદ્ઘિયા સુરવા હિન્દી શોરવા
- (૨૩) પુતગાલી Pupaila > હિન્દી પણીતા, તમિલ પણી નેપાતી પણિતા મરાઠી પણવા
- (૨૪) પુતગાલી Ananas > હિન્દી મનનામ ઉદ્ઘિયા ઘનારસ તિથી ઘનારસ ગુજરાતી ઘનનસ ઘનસ ઘરાઠી ઘનનસ
- (૨૫) ઘરેઝો Platoon > હિન્દી પલટન, મરાઠી પનળણ
- (૨૬) ઘરેઝો Pen II > હિન્દી પેગિન મોજપુરી પિનસિન દોનચાત કી પજાવી પિલસન, પિલમણ બગાની પેણિન
- (૨૭) ઘરેઝો School > હિન્દી સ્કૂલ મોજપુરી ઇસ્કૂલ કુદ્દ ઘરથી કથો મ ઇસ્કૂલ, પજાવી રેકૂલ, ગુજરાતી સ્કૂલ ઉદ્ઘિયા ઇસ્કૂલ બગાની ઇસ્કૂલ
- (૨૮) ઘરેઝો Station > હિન્દી સ્ટેશન, પજાવી ઘરસ્ટેશન સટાન ભાડપુરી ઇસ્ટેશન ટેમન, ટીમન
- (૨૯) ઘરેઝો Private > હિન્દી પ્રાઇવેટ, મોજપુરી પરાઇવેટ, મરાઠી પ્રાઇવેટ, ઉદ્ઘિયા પ્રાઇમેટ, તમિલ પિરવેટ
- (૩૦) ઘરેઝો Doctor > હિન્દી ડૉક્ટર મોજપુરી ડગડર, ઉદ્ઘિયા ડાક્ટર
- (૩૧) ઘરેઝો Hospital > ઘર્સપતાલ, પજાવી હસ્પિટાલ ગુજરાતી ઇસ્પિટાલ મરાઠી ઇસ્પિટાલ તમિલ મોમ્પનિ
- (૩૨) ઘરેઝો Jail < હિન્દી જેલ, મોજપુરી જેહુલ, તમિલ ચેજિલ જેજિલ ●

अध्याय १०

रचनाविज्ञान

भाषा मे रचना तीन स्तरो पर होती है शब्द के स्तर पर (जैसे सुन्दरता=सुन्दरता, अ+लोक+इक=अलीकिक), पद या रूप के स्तर पर (उस +ने=उसने, तुम+को=तुमको, आ+आ=आया) तथा वाक्य के स्तर पर (पदवय, उपवाक्य, वाक्य, वाक्यवध)। शब्दो के अध्ययन के प्रसंग मे यहाँ शब्दो की रचना ही हमारे विवेचन का विषय है। यो हिन्दी मे 'शब्द' शब्द का प्रयोग अपने विस्तृत रूप मे पद या रूप के लिए भी होता है। उदाहरण के लिए शब्दानुक्रमणी वस्तुत पदानुक्रमणी होती है। ऐसे ही 'राम घर गया' वाक्य मे तत्त्वत तीन पद या रूप है किन्तु कहे जाते है तीन शब्द। इस तरह सामान्य प्रयोग मे शब्द मे पद या रूप को भी लोग समाहित कर लेते है। किन्तु इस अध्याय मे हम अपना ध्यान मात्र शब्द पर ही केन्द्रित रखेगे और रूप-रचना इसमे नहीं लेगे।

जैसा कि पहले सकेत किया जा चुका है शब्द, रचनाकी दृष्टि से दो प्रकार के होते है। एक को 'मूल' कहते है तथा दूसरे को 'योगिक'। कहना न होगा कि रचना की दृष्टि से योगिक शब्द ही विचारणीय है। मूल शब्द, शब्द या अर्थ के स्तर पर न्यूनतम भाषिक इकाई होते है अत उनकी रचना का प्रश्न नहीं उठता। योगिक शब्दों की रचना मुख्यतः निम्नाकित ढंग से की जाती है।

(क) उपसर्ग के योग से ।

उपसर्ग शब्द के पहले जोड़े जाते हैं क (कपूत), स (सपूत), प (प्रयत्न), ला (लावारिस), दुर (दुराग्रह)।

(ख) मध्यसर्ग या मध्य प्रत्यय के योग से

हिन्दी मे इसका प्रयोग नहीं मिलता। मु डा भाषा मे दन=मारना, दपल=परस्पर या एक दूसरे को मारना। यहाँ 'प' को दन के मध्य रख दिया गया

है, परं इस मध्यगण या मध्य प्रत्यय कहने हैं। इमारा प्रयोग बहुत मध्यव भाषामें मे नहीं सिनता।

(ग) प्रत्यय के योग से

भाषा म प्रत्यय के योग से सर्वाधिक "शब्द" का निर्माण होता है। ता (मुर्गता), थाई (थड़ाई), त्व (धनत्व) इ (ओधी) श्रोती (कटौती) आदि।

(घ) ऐसे अधिक शब्दों के योग से

इसे हिन्दी धादि म समस्त "शब्द" कहते हैं। इसमे दो या तान शब्दों को मिलाकर रखत हैं थोड़ागाढ़ी डाकसाना रामबहानी गमानुजाचाय (राम+गमनुज+गाचाय), मुखदु सानुभूति (मुख+दुख+गमनुभूति), टौय टौय फिस। सस्पृत म ऐसे शब्द बहुत बढ़े बढ़े भी बना करते थे। भारतीय भाषाओं की व्याकरण की पुस्तकों म समास प्रकरण म इसका विस्तृत विवरण दिया रहता है। विश्व की सभी भाषामें म इस प्रकार शब्द नहीं बनते।

सामाजिक दो शब्दों के ही समस्त "शब्द" बनते हैं। एक या दूसरे या दोनों शब्दों की प्रधानता के आधार पर समस्त शब्दों के चार भूत किये जाते हैं अव्ययीभाव (पहला य = प्रमुख हो, जसे इरषड़ी), तत्पुर्य (दूसरा प्रधान जसे देशनिकाला) दून्ह (दोनों प्रधान जसे गाय-बैत), बहुदीहि (कोई प्रधान न हो, जसे नीलकठ)।

दोनों शब्दों को जोड़ने म कभी तो किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता थोड़ागाढ़ी हाथीसाना बराडपति, और कभी बीच म कोई नई घटनि या जाती है आबाहवा भनोकामना। अधिकार ऐसा होता है कि न दोनों शब्द ज्या के त्यो रहते हैं और न बीच म कोई नई घटनि या जाती है बल्कि सधि स्थान पर घटनियाँ एक दूसर से प्रभावित होकर परिवर्तित हो जाती हैं। पीछे घटनिकान (स्वनविज्ञान) के अत्यन्त इन पर सक्षेप म विचार विधा गया है।

समस्त शब्दों के दोनों ही सदस्य कभी तो सार्थक होते हैं छुड़दोड़ कथा कार, पुस्तकालय, सकाददाता, ऐसा-बसा जहानही। कभी एक सार्थक होता है और एक निरथक। निरथक शब्द प्राय सार्थक का सानुप्राप्ति पुनर्गति होता है ठीक-ठाक, खोला भाला, पूछना-ताढ़ना, बातचीत, भोजे पोने, होना हवाना, चाल-डाल, आमन मामने आस पास। निरथक शब्द कभी तो पहले आना है (भ्रीन पोन, आमने-सामने) और कभी बाद मे (धोना याना ठीक-ठाक, बातचीत पूछनाल्द)। कभी कभी दोनों ही शब्द निरथक होते हैं बिन्दु आव्यय

है कि दोनो मिलकर सार्थक हो जाते हैं । हट्टा-कट्टा, टीम-ड्राम, अल्लम-गलनम, अट-सट, अटर-सटर, गिट-पिट, सिट्टी-पिट्टी । कभी-कभी तीन भी—ग्रांय-वाँय-शाँय, टाँय-टाँय-फिस ।

पुनरुक्ति पूर्ण भी हो सकती है अच्छे-अच्छे, कौड़ी-कौड़ी, दाना-दाना, अपूर्ण भी चौड़ा-चकरा, बीच-बचाव ।

कभी-कभी एक ही अर्थ के दो शब्द साथ आ जाते हैं । मान-सम्मान, लाज-शर्म, हाट-बाजार, सौदा-मुल्फ, समझना-वूझना, भरा-पूरा, बनिया-बक्काल । कभी एक अर्थ न होने पर भी काफी भमीपता रहती है घर-द्वार, खेतना-कूदना, लूला-लैंगडा, दूटा-फूटा, जोर-गोर । कभी-कभी शब्द भिन्नार्थी या विरोधी भी होते हैं । रात-दिन, साँझ-सवेरे, सोना-जागना, खाना-पीना, नाचना-गाना, पढना-लिखना ।

कभी कभी प्रति-ध्वनि शब्द भी साथ आते हैं घोड़ा-बोड़ा, पानी-वानी, सोना-बोना ।

(इ) कई शब्दों की प्रारम्भिक ध्वनि (यों) से

तत्त्वत यह भी पहले मे ही आ सकता है क्योंकि इसमें भी किसी-न-किसी रूप में कई शब्दों का प्रयोग होता है, किन्तु योग की पद्धति भिन्न होने के कारण इसे अन्य स्थान दिया जा रहा है । भाषाओं में इस प्रकार की प्रवृत्ति उपर्युक्त अन्यों की भाँति बहुत पुरानी नहीं है । एक दो उदाहरणों को छोड़ शेष उदाहरण प्राय अत्यावृनिक काल के हैं । इस नवीन प्रवृत्ति का कारण यह है कि आजकल कभी-कभी काफी शब्दों को एक साथ रखकर नाम (स्थान, व्यक्ति आदि के) के रूप में प्रयुक्त करना पड़ता है, और बहुत बड़ा नाम वार-वार लेना बड़ा असुविधाजनक होता है । इसमें समय और शक्ति दोनों का अपव्यय होता है । इसी लिए 'मोहनदास करमचन्द गाँधी' के स्थान पर म० क० गाँधी या एम० क० गाँधी कहा जाना है । एच० जी० वेल्ज, जे० बी० कृपलानी, जी० बी० शाँ आदि भी ऐसे ही उदाहरण । ऐसे उदाहरणों में तो केवल प्रारम्भिक शब्द या शब्दों की आदि ध्वनि (या ग्रक्षर) ली जाती है, अन्तिम शब्द प्राय ज्यो-का-त्यो रहता है । साथ ही ये मब मिलकर एक शब्द नहीं बनाते । इसके विपरीत ऐसे नाम भी मिलते हैं, जिनमें सभी शब्दों की प्रथम ध्वनि लेकर उन्हे मिलाकर एक शब्द बना लेते हैं । उदाहरण के लिए हिन्दी में एक नया शब्द है 'सविद' जिसकी उम्र अभी मुश्किल से दो वर्ष है । यह शब्द 'सयुक्त विधायक दल' के स वि द के योग में बना है । इसी प्रकार नाटो—शब्द 'सयुक्त विधायक दल' के स वि द के योग में बना है ।

(३) स्थान के नाम के आधार पर

सूर्णी—तबाकू (पुलगारी पहले पञ्च भाग्य में तबाकू ने शाह और इसका केंद्र सूरत नगर बनाया। वहाँ से यह चारों ओर फैला। प्रत भाजपुरी आदि कई बोलियों में तबाकू के स्थान पर इसे 'सूर्णी' कहते हैं। बनारसी (ठग, घूत) लखनोवा (घैना, गौकीन) बलियाटिक (मूळ) शिक्कारपुरा (मूलत) चीनी (मूलत पक्की चीनी कानाचित चीन में शाई थी) मिश्री (मिस्ती) भिज से यात्र के बारहा) जापानी (सस्ता तथा कम टिकाऊ), सतना (दिल्ली में इट चुनन के काम प्राने बाल चूने की सनना बहते हैं बयोकि वह सतना नामक स्थान में आती है), बदरपुर (दिल्ली में विशेष प्रकार की रोड़ी की बहते हैं जो बदर पुर में आनी है), करेयी (वेक्य स) आदि वाय उदाहरण हैं। कठस्पानीय आभूषण कठा है तो ग्रगृष्ठ (मूलत उंगली) स्थानीय अगृढ़ी।

(४) वहनी के आधार पर

इसके आधार पर शब्द वाना शपवाद है। शब्द तक मुझे एवं हा शब्द एसा मिला। भौंटे को सख्त में 'भमर' बहते हैं। इसमें 'दो र का साधार पर सस्तूत में इसके लिए ड्रिएक' (जिसमें दो र हो) 'हाँ' का प्रयोग मिलता है।

(५) प्रयोग के आधार पर

कुछ शब्द जिस वस्तु को अभिहिन करते हैं उसके प्रयोग के आधार पर बन जाते हैं रबर (अप्रेजी rub=rगड़ना, rubber जिसे रगड़ा जाय मिलान के लिए) खड़ना (भोजपुरी में सुर्ती, जो साई जाय), तुमिरनी (जिसका प्रयोग सुमिरन में किया जाय) कतरी (जिसमें कतन किया जाय) आदि।

(६) स्वरूप के आधार पर

हाथी (जिस हाथ (संड) हो, हस्ता) बरी (जिसके बर हो) डिर (=हाथी जिसके दो हात हों, हाथों के दोनों पानों के घोर दियाने के घोर) बेगारी (जिसके केना हो विशेषत गँड़न पर) बदगोभी (जो बर हो फूरणाभी वो भी तरह खुली नहीं), गाँड़ गोभो (जो गाँड़े जमी हो)। हिन्दी में बग्गाभी वो करमकल्ला' भी बहत है। यह फारसी 'बाँ' है। इसमें बरम भव है मब्दी और बल्ला का भव है मिर मर्गत् बदगोभी मर्गजसी सब्जा है। मर्गदा बदेज' दाँ शूलत शाकोसी भाषा वा है (caboche) है और इमर्गा भव भी मर' है। हस्ती में इस 'बपूता' बहते हैं, उसके मूल में भी 'मर' वा भाव है।

चार पेर के कारण ‘चौपाया’ ‘चौपाई’ और ‘चारपाई’ नाम पड़े हैं। ‘तिपाई’ भी ऐसा ही शब्द है। हाथ जैसा होने से ‘हत्था’ नाम है।

(७) रंग के आधार पर

स्याही (जो ‘स्याह’ अर्थात् काली हो। पहले स्याही केवल काली हुआ करती थी); सब्जी (जो ‘सब्ज’ अर्थात् हरी हो, जैसे पालक, चौलाई, बदगोभी आदि)। पीलिया (रोग, जिसमें शरीर पीला पड़ जाता है)।

(८) ध्वनि के आधार पर

इस श्रेणी के शब्दों की सख्त्या अच्छी-खासी है। हिन्दी में भूंकना, खेखर (लोमड़ी के लिये शब्द, खे-खे करने के कारण), भोपू, फटफटिया, घड़घड, भडभड, गडगड, हडहड, चटचट। सस्कृत कोकिल, अंग्रेजी ककू आदि भी इसी प्रकार के शब्द हैं।

(९) दृश्य के आधार पर :

जगमग, वगमग, दकदक। इस श्रेणी के शब्द बहुत ही कम होते हैं।

(१०) कोई वस्तु जिससे बनी हो उसके नाम पर

इस श्रेणी के शब्द भी बहुत अधिक नहीं होते। गिलास (प्रारम्भ में यह glass (=शीशा) की बनी, अत यह नाम पड़ा), शीशा (=आईना; शीशे से बनने के कारण), अंग्रेजी आइरन (=प्रेस; लोहे से बने होने से)।

(११) सादृश्य के आधार पर

दूसरे शब्दों या वस्तुओं के सादृश्य के आधार पर भी कभी-कभी शब्द बन जाते हैं। ‘अधूरा’ शब्द ‘आधा’ से ‘पूरा’ के सादृश्य पर बना है। ‘छठा’ शब्द के स्थान पर कुछ लोग ‘छठवाँ’ का प्रयोग करने लगे हैं, जो स्पष्ट ही छ से पाँचवाँ, सातवाँ के सादृश्य पर बना है। इसी प्रकार वस्तुओं का सादृश्य भी कभी-कभी नए शब्द बनाने के लिए आधार का काम करता है। ‘पानी की रवानी’, जैसा होने के कारण एक कपड़ा ‘आव-ए-रवाँ’ कहलाता है। फूल जैसा होने के कारण कान के आभूषण को करण्फूल कहते हैं। ‘आकाशगगा’ दृश्यात्मक सादृश्य के आधार पर बना है।

(१२) कार्य के आधार पर

इस आधार पर सभी भाषाओं में काफ़ी शब्द बने होते हैं। नेतृत्व करने के कारण आँख सस्कृत में ‘नेत्र’ कहलाई। ‘प्रभा’ करने के कारण सूर्य ‘प्रभाकर’

या 'विभाकर' है। 'दिनकर' भी ऐसा ही नाम है। 'दापाकर' वा इस है चाड़मा। 'धापा' रात है जिसे करने वाला धापाकर। 'कलही या करही मूलत 'कररक्षिणी' है। हाथ की रक्षा करने के कारण उस यह नाम दिया गया। 'त' अर्थात् चुम्बन के कारण पात को समृद्ध में 'तूला' कहा गया। अगररात्रा (अग्र की रक्षा करने वाला), घजगर (बकरी को निगलने वाला) बठफोड़वा (बाठ फोड़ने में), नग (गमन न करने वाला=पहाड़) तग (पात्रांग म जान वाला) भी ऐसे ही हैं।

(१३) प्रतिष्ठनि के आधार पर

दुध भाषाओं म विसी गद्द की प्रतिष्ठनि के आधार पर भी 'गद्द' बन जात हैं बोडा (पोडा), गाय (चाय), चूय (चाय) वाम (वाम) छूट (काट)। लगभग सभी भारतीय भाषाओं तथा उज्ज्वेल याँ इस भाषा में पहुँच प्रवृत्ति विशेष स्वर से मिलती है।

(१४) स्थिति के आधार पर

नदियों के बिनारे स्थित हम स तीयों को 'सोरस्थ' कहा गया। 'तीय' उसी का विवास है। 'तटस्थ' भी ऐसा ही 'गद्द' है। जो पार में न बूढ़ार तर पर हो। भोवरकोट तथा वेस्टकोट भी इसी श्रेणी के हैं।

(१५) जाम मे

एवज जरद, स्वेच्छ अद्वज, उद्भित्र, वानिवय अधिज, मत्यन द्विव (जो दो बारे जाम—परी एक बार अद्वा किर बचना, चाड़मा प्रथम तीन बण या प्राप्त्येण। ये एक बार जामते हैं किर यात्रारात के मध्य दूसरा जाम माना जाता है)।^१

अध्याय ११

शब्दसमूह-विज्ञान

‘शब्दसमूह’ या ‘शब्दभंडार’ का अर्थ है शब्दों का भंडार या समूह। यहाँ इसका ऐसे किसी व्यक्ति, पुस्तक या भाषा द्वारा प्रयुक्त कुल शब्दों के लिए किया रहा है। कोई व्यक्ति कुल कितने शब्दों का प्रयोग करता है या किसी पुस्तक कुल कितने शब्द आए हैं या किसी भाषा में कुल कितने शब्द प्रयुक्त किए गए हैं, और वह कैसे हैं आदि का अध्ययन शब्दों के अध्ययन की एक महत्वांकी कड़ी है। शब्दसमूह-विज्ञान इस प्रकार के अध्ययन के लिए एक अच्छा मान सकता है।

व्यक्ति, पुस्तक या भाषा के शब्दसमूह को हम कम से लें तो सबसे पहले कित के शब्द समूह की समस्या आती है। दिवगत व्यक्तियों में केवल उन्हीं के दसमूह का अध्ययन सम्भव है जिन्होंने कुछ कहा (जैसे कवीर) या लिखा (जैसे रसी) है, और जिनकी वह कथित या लिखित सामग्री आज प्राप्त है। जिन्होंने शब्द लिखा या साहित्यिक रचना के रूप में कहा नहीं, या जिन्होंने लिखा और शब्द किन्तु वह सामग्री आज उपलब्ध नहीं है, उनके शब्दसमूह का अव्ययन सम्भव नहीं है। जीवित व्यक्तियों में सभी के शब्दसमूह का अध्ययन सम्भव है।

ऐसे व्यक्तियों के शब्दसमूह के अध्ययन के लिए, जिनकी रचनाएँ प्राप्त उन रचनाओं की शब्दानुक्रमणी बनानी पड़ती है। इसके बारे में सामग्री-मिलन शीर्षक अध्याय में विस्तार से कहा जा चुका है। इस प्रकार प्राप्त दस-सूची उनका शब्दसमूह मानी जा सकती है। हालाँकि यह मानने की बात है। वास्तविक रूप में किसी व्यक्ति के साहित्य में उसके पूरे दसमूह का प्रयोग नहीं मिलता। होमर के ग्रन्थों में लगभग ६०००, लट्टन में लगभग ८०००, शेक्सपियर में लगभग १५००० तथा तुलसीदाम में लगभग १६००० शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु इसका यह आशय नहीं कि किसी के साहित्य कारों का पूरा शब्दभंडार केवल यही था। इसका अर्थ यह हुआ कि

शब्दों का अध्ययन

परा जन सकता है उमड़े पूरे ग्रन्थभार का नहीं। एक तो वह व्यक्ति का शब्दसमूह मोटे स्वरे द्वारा प्रवार का होता है। एक तो वह जिसे हम उगारा सकिय शब्द समूह (active vocabulary) कह सकते हैं। इन व्यक्ति घण्टनी सामाजिक अभिव्यक्ति में इही शब्दों को प्रयोग करता है। इन शब्दों के प्रतिक्रिया, उमड़े ग्रन्थभार में काफी निपटिय शब्द होते हैं जिन्हें वह जानता-नामभारता है किन्तु जिक्र करता प्रयोग नहीं करता। पठने में तथा दूसरों को शुनने में ही ये शब्द प्रयोग काम आते हैं। ऐसे शब्दों के भ्रातार जो निपटिय शब्दसमूह (passive vocabulary) कहा जा सकता है इस सक्रियता निपटियता का भूल पायार व्यक्ति द्वारा घण्टनी अभिव्यक्ति में पाए गए प्रयोग करना और न करना है। इन सक्रिय निपटिय शब्दभ्रातारों के पाये गए भ्रातार उग्रभ्रातिय जो बाकते हैं। वयोरि सक्रिय में भी कुछ तो वहुसक्रिय होते हैं बृद्ध सक्रिय होते हैं और बृद्ध अल्पसक्रिय। इसी प्रवार निपटिय के भी दृष्टि से विस्तीर्ण व्यक्ति के ग्रन्थभ्रातार का अध्ययन हुआ है या नहीं में नहीं कह सकता। यम ये कम मेरे देखन में ऐसा अध्ययन नहीं आया। मैंने स्वयं घण्टने शब्दसमूह वा इस दृष्टि से विस्तृपण करन वा प्रयोग किया है। मोटे रूप से मेरे शब्दभ्रातार के विभिन्न वर्गों का प्रतिशत इस प्रवार है-

वहुसक्रिय	१०%	
सक्रिय	१४%	३५%
अल्प सक्रिय	११%	
अल्प निपटिय	१५%	-
निपटिय	३०%	६५%
वहुनिपटिय	२०%	

उपर्युक्त प्रतिशत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति अपने शब्दभडार के बहुत कम भाग का प्रयोग अभिव्यक्ति के लिए करता है, उसका अधिक भाग दूसरों के समझने में ही प्रयुक्त होता है या वह चुपचाप उसके मस्तिष्क में पड़ा रहता है।

इस प्रसंग में यह बात भी सकेत्य है कि हर व्यक्ति के उपर्युक्त प्रतिशत अलग-अलग होगे। विभिन्न विषयों के लेखकों के शब्दभडार-विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत पक्षियों का लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि सामान्य व्यक्ति (जो लेखक, वकील, इंजीनियर, विज्ञानवेत्ता आदि नहीं है) के शब्दभडार में सक्रिय शब्दों का प्रतिशत काफी कम होता है। इसके विपरीत तकनीकी व्यक्तियों की सक्रिय शब्दावली का प्रतिशत सामान्य लोगों की तुलना में अधिक होता है, क्योंकि वे उन शब्दों का प्रयोग तो करते ही हैं जिनका प्रयोग सामान्य लोग करते हैं, इसके अतिरिक्त अपने विषय से सम्बद्ध अनेक तकनीकी शब्दों का भी वे प्रयोग करते हैं।

लेखकों के साहित्य में जो शब्दावली होती है, वह सारी की सारी सक्रिय शब्दावली ही नहीं होती। उपन्यासकार, कहानीकार, रेखाचित्र एवं संस्मरण-लेखक तथा नाटककार अपने साहित्य में कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः अपने सक्रिय शब्दभडार का प्रयोग करते हैं, किन्तु इन्हीं क्षेत्रों में इतिहास या वैज्ञानिक विषयों को लेकर लिखने वालों को निष्क्रिय का भी प्रयोग कभी-कभी करना पड़ता है। कवि प्रायः अपनी बात केवल मक्किय शब्दावली से नहीं कह पाते। छंद की आवश्यकताओं के कारण उन्हें निष्क्रिय शब्दावली भी कभी-कभी काम में लानी पड़ती है। इसीलिए पुराने कवियों या साहित्यकारों की सक्रिय शब्दावली का पता उनके साहित्य से लगाना काफ़ी कठिन है।

किसी व्यक्ति के पूरे शब्दभडार का पता लगाना भी कम कठिन नहीं है। इसका एक ही तरीका हो सकता है कि उसमें शब्दकोश के सारे शब्दों को एक-एक करके पूछा जाय। यो यह पद्धति भी बहुत कारगर नहीं हो सकती, क्योंकि किसी भी जीवित भाषा का कोश पूर्ण नहीं होता।

किसी व्यक्ति का अविक्षित और लघुत्तम शब्दमूँह क्षा हो सकता है, यह अभी खुला प्रश्न है। लोगों का अनुमान है कि अच्छे विज्ञानवेत्ता का शब्द-मूँह प्रायः ८०,००० शब्दों का होता है। अच्छे वकीलों का शब्द-मूँह ५०,००० से ऊपर होता है। नामान्य अनपट किमान ५०० में ८०० के बीच शब्दों का, या कुछ उदाहरणों में तो इसमें भी कम का प्रयोग करता है। यह उसका मक्किय शब्द-भडार होता है। चर्चिल का शब्द-भडार ६०,००० कहा

प्रयोग का अध्ययन
महार गहन ही बापी बड़ा होता है, जिन्हें उगड़ा बहुत बड़ा भाग सच्चे पर्योग में निश्चिय रहता है।

व्यक्ति के दाढ़भदार में परिवर्तन होना रहता है। बचपन में उसके दाढ़भदार बहुत सीमित होता है। उम्र के साथ-गाय उसमें विकास होता रहता है। यही नहीं उसके गतिक्रम और निश्चिय दोनों के प्रति दान में भी परिवर्तन होता है। दाढ़भदार में परिवर्तन का कारण पुराने दाढ़ों का सुन्न होना तथा नए दाढ़ों का बढ़ा भाग होता है। व्यक्ति की माया में ऐसा भी होना है कि बचपन में कोई दाढ़ (उदाहरण के लिए खल-सम्बन्धी तकनीकी दाढ़) उसके सत्रिय भदार में है वह होने पर वह निश्चिय में चला गया और उड़ाने तक जाते जाते वह उसे प्राप्त प्राप्त होने भूल गया।

विभीषण पुस्तक में प्रयुक्त दाढ़भदार का दाढ़भदार है। मध्यी तक इस ही पुस्तकों के दाढ़भदार की गणना हुई है। बाइबिल की पुरानी पोयी में ५६४२ दाढ़ हैं तथा नई म लगभग ४८००। मैंने कामायनी की दाढ़वनी की दापी विस्तार से काम लिया है। मेरी गणना के घनुसार कामायनी में प्रयुक्त कुल पद-संख्या २५४४१ है जिनमें घूल दाढ़ के बल ३५०५ हैं। विभिन्न प्रकार के व्याकरणिक रूपों के प्रतिशत इस प्रकार हैं

सापा	५१%	विशेषण	२४%
विशेषण	२०%	सबवनाम	२५%
विशेषण	१२५%	सह्यावाचक	००५%
परसाग	००४%	भय अव्यय	०६५%
तिणीय प्रयोगों का प्रतिशत है			
पुल्लिंग	७३%	स्थीरिंग	२७%
बचनीय प्रयोगों का प्रतिशत है			
एक वचन	५५%	बहुवचन	१५%

व्यक्ति की उल्लंघन में सहज ही भाया का दाढ़भदार काफी बड़ा होता है जिस प्रकार किसी जीवित व्यक्ति दाढ़भदार और भाया दाढ़भदार में समानताएँ हैं।

कठिन है, उसी प्रकार किसी भाषा के भी पूरे शब्दभंडार का पता प्राय नहीं लगाया जा सकता। इसी तरह मृत व्यक्ति के साहित्य में केवल उन शब्दों के भड़ार का ही पता चल सकता है, जो उसके साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं, व्यक्ति के पूरे शब्दभंडार का पता नहीं चल सकता। वैसे ही मृत भाषा (स्स्कृत, लैटिन) के केवल उसी शब्दभंडार का पता चल सकता है, जो उसके प्राप्त साहित्य में प्रयुक्त है, किन्तु वह उस भाषा का पूरा शब्दभंडार नहीं होता। ऐसे भी काफी शब्द हो सकते हैं जो उस भाषा में प्रयुक्त होते रहे होंगे, किन्तु साहित्य में नहीं आए, या आए भी तो वह साहित्य आज उपलब्ध नहीं है। हिन्दी के 'वृहद् हिन्दी कोश' (इरा स्स्करण) में गद्द-सख्या लगभग १३८००० है, किन्तु वस्तुत इसके आधार पर सख्या का ठीक पता लगाना कठिन है। इसका कारण यह है कि इसमें एक और तो ऐसे काफी शब्द हैं जो हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं या हुए हैं किन्तु उसमें नहीं आए हैं, और दूसरी और उस कोश में स्स्कृत तथा अरबी-फारसी के काफी शब्द ऐसे भी रख दिए गए हैं, जो हिन्दी में न तो कभी प्रयुक्त हुए और न हो रहे हैं, और न भविष्य में जिनके प्रयोग की सभावना है। इधर केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, डॉ० रघुवीर जैसे अनेक व्यक्तियों तथा कुछ प्रदेशीय सरकारों और नागरी प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी संस्थाओं ने काफी पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया है। उनमें ऐसे शब्द कम नहीं हैं जो हिन्दी वाडमय में प्रयुक्त होने लगे हैं। काफी शब्द अन्य भाषाओं एवं बोलियों से लिए गए हैं तथा लिए जा रहे हैं। सम्भवतः इस समय हिन्दी भाषा के शब्दभंडार की सख्या पौने दो लाख के आस-पास आँकी जा सकती है। शब्दभंडार की दृष्टि से इस समय अग्रे जी भाषा विश्व में कदाचित् सम्पन्नतम है। उसमें लगभग पौने छ लाख शब्द होने का अनुमान लगाना अन्यथा न होगा।

किसी भाषा का किसी एक काल का शब्दसमूह मर्वंदा एक नहीं रहता। इस दृष्टि से भी वह व्यक्ति-भाषा के समान है। किसी भाषा के शब्दसमूह में परिवर्तन दो कारणों से होता है-

- (क) पुराने शब्दों का नोप
- (ख) नए शब्दों का आगमन

होता यह है कि समय के साथ-माथ भाषा की आवश्यकनाएँ बदलती हैं, अन्य अनावश्यक पुराने शब्द शब्द-भड़ार में निकलते रहते हैं, और नए आते रहते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी की आदिकालीन शब्दावली वह नहीं थी जो मध्ययुग में थी, और आज की शब्दावली मध्ययुग ने काफी परिवर्तित है। बन्तुत भाषा

शब्दों का अध्ययन

सामाजिक सत्य है यह समाज का परिवर्तन उसमें भी प्रतिफलित होता रहता है। समाज से जो परपराएँ वस्तुएँ या काय निकल जाते हैं भाषा भी उनसे मबद्द शब्दों को निकाल फेंकती हैं। उन्हरण के लिए विदिक काल में यहों का प्रचलन था यह उनसे सबद् शूर्य यज्ञ यज्ञीन सुल्या जैसे भगवें शूर्य प्रचलित थे किंतु वार्ष में जब यह हमारे जीवन के अग न रहे तो ये पद्म भी भाषा से निकल गए। पुराने सान पान, वस्त्र आभूषण, पायिक कम्बाड से सबद् शब्दों की भी धीरे धीरे यही गति हुई और आज उनका शब्द प्राचीन कोशीया प्राचीन साहित्य में ही मिल सकता है। वे हमारी भाषा के अग नहीं रहे। दूसरी ओर सम्यता के विकास के साथ या नए वातारण के सपक के साथ नई आवश्यकताएँ हम नए शब्दों को ग्रहण करने को बाध्य करती हैं। मुख्य मानों के भागमन ने हिन्दी को लगभग यह हजार शब्द दिए। इन शब्दों का सबध घम (रीता हज) शासन (सरकार तहसीलदार चपरासी) याय (वकील, अदालत) सेना (फौज जमानार सगीन) पोगाव (दुर्गा पाजामा शतवार) कन (मगूर अनार सेव) मिठाई (बरकी जलेकी शवरपारा) शृगार (सुर्मा साबुन हजामत) बीमारी (दमा नज तुखार) आदि से है।

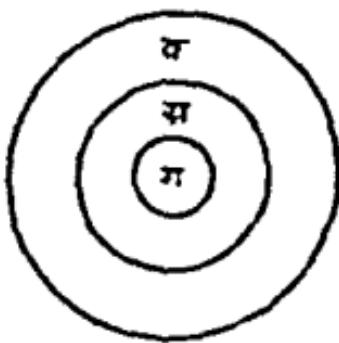
यह ध्यान देने को बात है कि कुछ शब्द तो नई आवश्यकताओं (नई जीज नई सकलना नई परपरा) के कारण आते हैं जिनके लिए अपने यहीं शब्द पहले से होते हैं किंतु सास्थृतिक प्रभाव (या सास्थृतिक दासता) हम रहें ध्यानाते का बाध्य करता है। तुखार (जर) नज़ (नाड़ी) हजार (सहत दशरत) भाईना (प्यरा) अगूर (दाल द्राख) ऐसे ही शब्द हैं। प्यारोशीय सपक ने भी हम काफी शब्द दिए जिनमें मर्वाविक घग्गरेजी के हैं। ये मुख्यन यह साइरी चिकित्सा शिक्षा पोगाव गालन प्रस खेल सानपान, सेना कला एवं शृगार सम्बन्धी हैं भोटर इन कमरा रेडियो ग्रामोफोन तारी बग साइकिल बार, सापरेण शृण्णनार डाक्टर ड्रिसिंग स्कूल बॉरिव माल्टर रीडर प्रोफसर फोट पट बोट सूर टाई वारट डिस्ट्री बन्डर कलकटर कमिश्नर टाइप शूर हाथी चिकेन वडमिन विस्कुट बाड़ी टोट्ट माइस्ट्रोम रेजर टक बग थग, फांग स्लेच नीम पाउडर स्नो शानि। कुछ पुनराली फाली शेनी तथा दसी शब्द भी पाए हैं। बिसी भाषा में यह प्रवार के चिन्ही शब्द तीन स्पैंगों में आते हैं। कुछ तो प्राय च्यों-ने-स्यो या जात हैं पर, कोई दृक् स्कूल बचोन मुझार। यहीं प्राय इमनिए बड़ा गया दिन सूर्यम् अपि से उच्चारण में भरत तो था ही जाता है किंतु नामांद इन थगी के शब्द मूर जन भी लगते हैं। दूसरे प्रवार में शब्द हैं जो प्रश्न बरन वाली भाषा और जनिकारस्या के पुनर्दूर परि

वर्तित या अनुकूलित होकर आते हैं। तिजोरी (ट्रेजरी), रपट (रिपोर्ट), अगस्त (आँगस्ट), अर्दली (आँडरली), कुर्ना (कुर्तेह) आदि। तीसरे प्रकार के शब्द अनूदित होकर आते हैं कटिबद्ध (कमरवस्ता), लालफीताशाही (red-tapism), स्वर्णजयती (golden jubilee) हरीक जयती (diamond jubilee) दृष्टिकोण (angle of vision), प्रधानाध्यापक (headmaster), मालगाड़ी (goods train), बनादेश (money order)।

किसी भाषा में अन्य भाषाओं से, सर्वाधिक शब्द सज्जावर्ग के आते हैं, और सबसे कम सर्वनाम। विशेषणों की सख्ता मज्जा से कम कितु अन्यों से अधिक होती है। धातु और ग्रव्यय सर्वनाम और विशेषण के बीच में आते हैं। हिन्दी में फारसी से आने वाले शब्दों का सख्ता की दृष्टि से कम है सज्जा (सर्वाधिक) विशेषण, धातु, ग्रव्यय, सर्वनाम (सबसे कम)। सज्जा के उदाहरण ऊपर आ चुके हैं। अन्यों के उदाहरण हैं : आसान, वेइमान, खुश, तेज, बदनाम, वारीक, तराशना, बसूलना, शर्मना, खरीदना, अगर, कि, वर्ना, लेकिन, खुद, फलाँ। यूरोपीय भाषाओं से केवल सज्जा शब्द ही आए हैं। विशेषण (फाइन, रफ, सुपरफाइन, मर्सराइज्ड, डबल, गोल्डन, हेड, हाफ) इने-गिने हैं तथा किया (फिल्माना) तो इक्की-दुक्की।

भाषाओं के शब्दर्भंडार से कभी-कभी कुछ शब्द अश्लील हो जाने से निकल जाते हैं। स्त्री-पुरुष के विशेष अगो या उनसे सबद्ध क्रियाओं के लिए प्रयुक्त शब्द ऐसे ही हैं। कभी-कभी कुछ शब्द उच्च स्तर के लोगों के शब्द-समूह से ही 'निकल' या 'प्राय निकल' जाते हैं। यहाँ हिन्दी की तुलना में अग्रेजी का उदाहरण सुविधाजनक हो गया। पहले लैट्रिन और यूरिनल शब्द चलते थे। अत्यन्त प्रचलित हो जाने पर इनमें अश्लीलता की गध आ गई अत 'वायरल' शब्द इनमें दोनों या दूसरे के लिए प्रयुक्त होने लगा, हॉलाकि इसका अर्थ 'स्नानागार' है। धीरे-धीरे यह भी अश्लीलता की गध से युक्त हो गया तो 'ट्वायलेट' (जिसका मूल अर्थ वालों का शृगार करते समय कधों पर ढाला जाने वाला कपड़ा, शृगार की मेज, सिगारदान, या शृगारघर आदि था) का प्रयोग होने लगा, और अब इस शृखला में आने वाला नवीनतम शब्द 'क्लोकर्लम' (मूल अर्थ ओवरकोट तथा हैट रखने का बाहरी कमरा या स्टेशन पर सामान रखने का कमरा) है। पता नहीं अभी और कितने श्लील शब्दों को इस परपरा में आ-आकर अश्लील बनना है।

शब्दसमूह के अध्ययन के अतर्गत आधारभूत शब्दसमूह (Basic Vocabulary) भी विचारणीय है।



ध्यान देने योग्य है कि 'ग' अर्थात् आधारभूत शब्द समूह केन्द्र में है तथा उससे छोटा है। ख अर्थात् मध्यवर्ती शब्दसमूह उसकी तुलना में बाहरी है तथा उससे बड़ा है। क अर्थात् उच्च या बाह्य शब्दसमूह पूर्ववर्ती दोनों की तुलना में बाहरी या ऊपरी है तथा दोनों से बड़ा है।

आधारभूत शब्दसमूह किसी भाषा के पूरे शब्दसमूह का वह केंद्रोंश (core) होता है जो उस भाषा की मूलभूत अभिव्यक्तियों का आधार होता है। उसे हम पूरे शब्दभडार का मर्म या प्राण कह सकते हैं। उस भाषा की प्राथमिक जानकारी के लिए आधारभूत शब्दभडार अनिवार्यतः आवश्यक होता है, इसीलिए उस भाषा के सभी बोलने वाले (चाहे वे शिक्षित हो या अशिक्षित) उससे अवश्य परिचित होते हैं और इसीलिए यदि कोई अन्य भाषा-भाषी उस भाषा को सीखना चाहे तो कम-से-कम उन शब्दों की जानकारी उसके लिए बहुत आवश्यक होती है। आधारभूत शब्दसमूह पूरे शब्दसमूह की तुलना में बहुत छोटा होता है तथा उसमें उन सभी सामान्य एवं सार्वजनिक वस्तुओं एवं सकल्पनाओं (concepts) की अभिव्यक्ति के लिए अपेक्षित सज्जा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय शब्द होते हैं जो किसी भाषा-समाज के दैनिक जीवन में आपसी सम्पर्क के आधार होते हैं। हर भाषा अन्य शब्दों की तुलना में आधारभूत शब्दभडार का ही प्रयोग अधिक होता है। किसी भाषा में अधिक बोलियों में ये शब्द प्रायः समान होते हैं। एक बोली-भाषी व्यक्ति दूसरी बोली-भाषी को इन्हीं के आधार पर समझ लेता है।

आधारभूत शब्दसमूह की एक यह विशेषता भी उल्लेख्य है कि उच्च या मध्यवर्ती शब्दभडार की तुलना में ये यह अन्य भाषाओं से बहुत कम प्रभावित होता है। बाह्य प्रभाव तकनीकी क्षेत्रों में पहले उच्च में ग्राता है तथा अन्य क्षेत्रों में प्रायः मध्यवर्ती में। अन्य भाषाओं के कम ही शब्द, आधारभूत शब्दसमूह तक पहुंच पाते हैं, और जो पहुंचते हैं, वे भी कुछ अपवादों को छोड़कर, प्रायः बहुत देर में।

किसी भाषा के आधारभूत शब्दसमूह का वैज्ञानिक ढंग से पता लगाने का कार्य इस सदी के तीसरे दशक में शुरू हुआ है। १९२२ में डॉ० थार्नडाइक (Thorndike) ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से अग्रेजी के सर्वाधिक प्रयुक्त बीस हजार शब्दों की सूची (Teacher's Wordbook of Twenty Thousand Words found most frequently and widely in general literature), प्रकाशित की। इस कार्य के लिए प्रयोगों के एक करोड़ कार्ड बनाए गए थे, जिनके आधार पर इन २० हजार शब्दों की छाटाई हुई। यह सूची सच्चे अर्थों में

भाषारभूत पद्धतिमूलक की तो नहीं थी विन्यु वाय उसी दिशा में था। ये २० हजार वर्ष से हैं जो सर्वाधिक प्रयुक्त होते हैं। भाषे चलकर इनके भावार पर निशा ये लिए स्टेप्स (graded) पाठ्य पुस्तके बनाई गई थीं। १९२७ में बन्धिज के पार्थोलाजिक्स इच्छीन्यूट ने अपेक्षी के अधारभूत ग्रन्थभार पर काम 'गुरु' किया जिसे परिणामवृहप प्रयोक्ता नामा में भाषारभूत शब्द ८५० मान गए। रुमी भाषा पर इस दृष्टि से बड़ा वित्तन काम हुआ है। सोवियन संघ की इस्तोनिया जनतान की राष्ट्रानी तालितन की अकादमी के रूपी विभाग ने ३०० व्यक्तियों से इस दिशा में ३ वर्षों (१९५६-१९६२ तक) काम कराया और वाद में स्ती भाषा के सर्वाधिक प्रयुक्त शब्दों पर पुस्तक प्रकाशित की। भारत में इस दिशा में काम का अभाव भारती (Phonemic and morphemic frequencies of the Gujarati language—P B Pandit, poona 1965) तथा मराठी (Phonemic and morphemic frequencies of the Marathi language—S V Bhagwat) के इस दिशा में महत्वपूर्ण ग्राम कुछ ही वय पूर्व प्रकाशित हुए हैं।

हिन्दी में इस दिशा से उड़ी वाम हुए हैं। १९५८ में मूलत श्रीराम शर्मा द्वारा संयार की गई, हिन्दी के ५०० शब्दों की सूची (Basic Hindi vocabulary) भारत सरकार ने प्रकाशित की। उसी वय पूर्वत उमशनाल मिह द्वारा प्रस्तुत हिन्दी के २००० शब्दों की सूची (Basic Hindi vocabulary) भी भारत सरकार ने घोषी। १९६४ में प्रता स हिन्दी के सर्वाधिक प्रयुक्त १९३१ शब्दों की एक सूची (Phonemic and Morphemic frequencies in Hindi—A M Ghate) प्रकाशित हुई। इस प्रसंग में बद्रीनाथ कपूर के ११०० हिन्दी शब्दों वी सूची (Basic Hindi), वाराणसी १९६२), मरमन यों की ११०० शब्दों की सूची (नवभारत टाइम्स १९६०-६२) में लेख 'बुनियादी हिन्दी का नया प्रयोग' तथा जगदीशप्रभाद धार्मवाल की ८०० शब्दों की सूची (विभिन्न हिन्दी ग्रन्थ-सूची मुरानावाद) भी उल्लेख्य हैं। १९६७ में केंद्रीय हिन्दी संस्थान भागरा की ओर से ५ हजार हिन्दी शब्दों की एक सूची (हिन्दी की आधारभूत शब्दावली) प्रकाश में आई। उसके एक वय बाद १९८० कलात्मक भाषिया की २००५ शब्दों की सूची (हिन्दी की वित्तिक शब्द वली) अलीगढ़ विश्वविद्यालय से द्याई जो जिन्होंने में इस दिशा में अब तक के दुए सारे वायों में निश्चित रूप से सबशेष है।

इस प्रसंग में यह प्रश्न सहज ही उठता है कि किसी भाषा का आधारभूत शब्दसमूह खोजने का उद्देश्य क्या है। इसका उद्देश्य है भाषा विशेष के ग्रन्थभार के सबसे भावशक्ति एवं मूल भाषा की जानकारी। यह जानकारी कई

क्षेत्रों में हमारे बड़े काम की होती है। उदाहरणार्थं उम भाषा को मातृभाषा या अन्यभाषा के रूप में पढ़ने के लिए, विना किसी क्रम से शब्द सिखाने की तुलना में, सबसे पहले इन्हीं शब्दों की स्तरीकृत ज्ञानकारी देना अधिक लाभकर होता है। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में आवारभूत शब्दभंडार का प्रयोग आवृत्तिक युग की एक बहुत बड़ी देन है। इससे अपेक्षाकृत कम समय में, भाषा मीखने वाला अव्यय भाषा में अच्छी गति प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार आशुलिपि-निर्माण, मजीनी अनुवाद, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान (विवेपत भाषा-कालक्रमविज्ञान जैसे क्षेत्रों में), अन्य भाषाओं से तुलना के आवार पर पारिवारिक वर्गीकरण तथा उम भाषा के वोलनेवालों की मूलभूत आवश्यकताओं एवं मनोविज्ञान को समझाना आदि अनेकानेक अन्य क्षेत्रों में भी किसी भाषा का आवारभूत शब्दनमूह हमारी बड़ी सहायता करता है।

किसी भाषा का आवारभूत शब्दभंडार ज्ञात करने के लिए सबसे पहले हमें सामग्री सकलित करनी पड़ती है। वस्तुत, यही सबसे टेढ़ी खीर है। आवार सामग्री में अन्तर के कारण परिणाम में अन्तर पड़ना स्वाभाविक है। केन्द्रीय सरकार, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा, डकन कालिज पूना तथा कैलाग चन्द्र भाटिया ने हिन्दी शब्दभंडार के सम्बन्ध में पुस्तकाएँ प्रकाशित की हैं, किन्तु तीनों में काफी असमानता है। यह असमानता मुख्यत आवार सामग्री में अन्तर के कारण है। वस्तुत, अभी तक भाषाविज्ञान इस सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त नहीं दे सका है कि किसी भाषा का आवारभूत शब्दभंडार ज्ञात करने लिए आवार सामग्री कितनी और कैसी हो। अर्थात् उपन्यास, कहानी, नाटक, एकाकी, निवन्ध, आलोचना, रेखाचित्र, जीवनी, सम्परण, पत्र-पत्रिका आदि में क्या-क्या लिया जाय और कितना-कितना लिया जाय। किसका प्रतिशत क्या हो? सोवियत संघ में जिस बहुत कार्य की चर्चा ऊपर की गई है, उसमें सामग्री इस प्रकार थी—

उपन्यास कहानी	५६%
नाटक	७%
आलोचना लेख	१४%
पत्र पत्रिका	२०%

गुजराती पर जिस कार्य की चर्चा है, उसमें तीन प्रकार के साहित्य से शब्द लिए गए—

(१) पुस्तकों से	२८५०० शब्द
(२) रेडियो प्रोग्राम में	२१५०० शब्द
(३) समाचार पत्रों से	४६६८७ शब्द
	६६६८७

प्रता से प्रकाशित हिन्दी सूची म—

शब्दों का वर्णन

(१) पत्र परिवारा से	४५२०८ शब्द
(२) सखल साहित्य से	२३१५३ शब्द
(३) वाचानिक और गम्भीर साहित्य से	
(४) अनुवाद, बाल साहित्य रेडियो वार्ता तथा स्वी साहित्य आदि से	१५३४० शब्द

१४२१० शब्द

६७६११

उपर्युक्त स स्पष्ट है कि आधार सामग्री में कोई प्रकृत्यता नहीं है। इस पर भलग भलग बात हो तो परिणाम से भलर होगा। गम्भीर से परिणाम प्रणत एक नई हो सकते। इसीलिए गरणना के आधार पर कोई भा व्यक्ति यह नई कह सकता कि अमुक भाषा के अमुक बात म इतने ही और यही आधारभूत शब्द है। बस्तुत आधार भूत शब्दमुक्त के शब्द और उनकी सत्यता के बहुत लगभग ही हो सकती है।

मोरे रूप से यह अवश्य कहा जा सकता है कि आधार सामग्री जितनी ही अधिक होगी परिणाम उनने ही प्राप्त होगे। आधारभूत शब्द भूतर गति करने वी पद्धति यह है कि आधार सामग्री से एक एक शब्द को प्रणग प्रणग बाल पर नियत है। किर सारे बाढ़ों को बगानुक्तम रूप सत है। ऐसा करने सही शब्द के सारे बाल एक रूपान पर या जात है जिससे यह पता चन जाता है कि योन शब्द बस्तुत सबसे अधिक धार प्राप्त है। जो शब्द सबसे अधिक धार प्राप्त है उस बस्तुते ही उसका बाल को उससे बाल और इसी प्राप्त आगे भी। इस तरह म जो शूची बनती है उसके प्रयोग १०० ७०० १००० २००० २५०० या ३००० शब्द जाना भी आवश्यकता हो। आधारभूत शब्द गम्भीर के रूप म तिन जा सकते हैं। या आमायन यह लेगा गया है कि अप्राप्त बाल भाषाओं के २००० म ३००० तक ऐसे शब्द जान जा सकत है जो विभिन्न प्रकार के माहियों एवं बोलचाल म ६५ प्रतिशत से ८० प्रतिशत तक भान है। यह ३५ म २० प्रतिशत तक शब्द या प्रयोग नहीं गठनामूल्य होते हैं। "ह" म पर्यायी शब्दों के रूप म कुछ बाने और बहुत जान जानती है। "ह" म पर्यायी शब्द है एसे जारिए इसाई (मगन म) विग्रह अन्तों प्राप्त गामा गामा

होती है। उदाहरणार्थ 'वह घर चला गया' वाक्य में 'वह' 'घर' 'चला' 'गया' ये चार शब्द हैं। एक शब्द के यदि अनेक रूप (घोड़ा, घोड़े, घोड़ो) हो तो सूची में मूल शब्द (घोड़ा) ही रखा जाता है। कभी-कभी एक ही शब्द दो या अधिक पूर्णत भिन्न अर्थों में आता है आम (सामान्य, एक फल), पर (परन्तु, पर), सोना (स्वर्ण, सोने की क्रिया)। ऐसे शब्दों के आने पर इन्हे अलग-अलग शब्द मानना चाहिए। अर्थ के साथ इनके अलग-अलग कार्ड बनने चाहिए। अन्तिम सूची में भी ये अलग-अलग रखे जाएँगे साथ ही स्पष्टता के लिए हर एक के साथ अर्थ का भी सकेत रहेगा।

वहुत से लोग यह सोचते हैं कि सभी भाषाओं का आधारभूत शब्दभंडार एक होता है। इसी धारणा से कुछ लोगों ने अंग्रेजी के आधारभूत शब्दभंडार के आधार पर अन्य भाषाओं (जैसे हिन्दी) के आधारभूत शब्दभंडार एकत्र करने का प्रयास किया है, किन्तु ऐसा सोचना पूर्णत भ्रामक है। हर भाषा की अपनी भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सास्कृतिक पृष्ठभूमि अलग होती है, इसी कारण हर भाषा की मूलभूत आवश्यकताएँ भी एक नहीं हो सकती। भारत जैसे कृषिप्रधान देश की भाषाओं के शब्दभंडार में 'खेती' शब्द का जितना प्रयोग होगा, कुवैत जैसे देश की भाषा में नहीं हो सकता। उसी प्रकार रुसी भाषा में 'धर्म' शब्द का उतना प्रयोग नहीं हो सकता जितना हिन्दी आदि धर्मप्रधान क्षेत्र की भाषाओं में होगा। अमरीकी अंग्रेजी के लिए टेलिविजन, कार, तलाक जैसे शब्द आधारभूत शब्द भडार में होंगे, किन्तु अत्यन्त पिछड़े देश की भाषाओं में ऐसा नहीं हो सकता।

यही नहीं किसी एक भाषा के आधारभूत शब्दभडार में भी समय के साथ परिवर्तन आता रहता है। हिन्दी के आदि काल में 'पाठगाला' का प्रयोग बहुत होना था, किन्तु अब 'स्कूल' का प्रयोग उसकी तुलना में कही अधिक होता है। अभी कुछ वर्ष पहले तक आना, चबन्नी, दुग्रन्नी, सेर, छटांक हिन्दी में बहुत प्रयुक्त होते थे, वीच में नया पैसा भी आ गया था, किन्तु अब मात्र पैसा, कीलो, ग्राम ही प्रयोग में आते हैं।

निष्कर्षत न तो दो भाषाओं का आधारभूत शब्दसमूह एक ही भक्ता है, और न किसी एक भाषा का आधारभूत शब्दसमूह नर्वदा एक रह सकता है। इस तरह किसी भाषा का आधारभूत शब्दसमूह देश, काल, भूम्यता और मस्तृति पर बहुत कुछ आधारित होता है।

इस प्रसंग मे कछ वातें मे अपनी ओर ने भी कहनी चाहूँगा। मेरे विचार मे केवल उपर्युक्त टग की गणना के आधार पर किसी भी भाषा का आधारभूत

शब्दों का अध्ययन

पञ्चमूह सूरीयक की दिया जा रहता। उदाहरण के लिए आगे की पञ्चमूली में गुणवार है जिन्हें वृद्धस्पतिवार नहीं है हालांकि इसका प्रयोग 'गुणवार' से कम नहीं होता। इसी तरह दोगुना है तीनगुना नहीं है चौथा है पर पांचवा, थग नहीं है, उन्होने है इहाँने नहीं है। इस तरह की अभियां गान्धिक भाषापार पर बनी सभी पञ्च सूखियां में मिलती हैं। मेरे विचार में इस प्रवार के कृष्ण प्रतिमूल शास्त्र तो भाषापार 'पञ्चमूह' में सामग्री का विशेषण चाहे जो भी वहे, समिग्नित वर ही लेना चाहिए। उदाहरणात्मक राखी मुख्य रावनाम रूप, दिना तथा महीनों के सभी प्रवचित नाम १ से १०० तक की नमबोधक तथा प्रपूरणीकबोधक संस्थाएं प्रमुख रूपों फलों अनाजों, गानों गगों कपड़ों भादि के नाम सबसामान्य विशेषण तथा विद्याविद्यायण एवं भास्त्राय कियामों की बोधक पातुएं भादि।

इस तरह उपयुक्त पद्धति पर तयार किए गए भाषारभूत 'पञ्चमूह' में इस प्रवार के भूतिक्त्वन् शब्दों को जोहकर सूची को भूतिक पूण तथा सच्चे प्रयोग में भाषा विशेष की भाषारभूत शब्दावली बनाया जा सकता है। ●

खण्ड : तीन

परिशिष्ट

एक सौ एक शब्दों की कहानी

अफीम—यह शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से बहुत ही विवादास्पद है : स्टाइनगास ने अपने फारसी कोश में ‘अफयून’ शब्द दिया है और इसे फारसी माना है किन्तु साथ ही तुलना के लिए सस्कृत शब्द ‘अफेन’ भी दे दिया है । टर्नर ने भी इसका मूल फारसी ही माना है । सईदुल सूरी ने अपने अरबी कोश अकरबुल मवारिद में ‘अफयून’ को ‘दखील’ माना है, जिसका आशय यह है कि उनके अनुसार ‘अफयून’ शब्द किसी और भाषा से इसी रूप में अरबी में ले लिया गया है । उन्होंने स्पष्ट नहीं लिखा है, पर संभव है उनका भी सकेत इसके फारसी से लिए जाने का हो ।

दूसरी ओर रिचर्ड्सन तथा कुछ भारतीय कोशकार हैं । रिचर्ड्सन ने अपने अरबी-फारसी कोश में ‘अफयून’ को अरबी शब्द माना है । शब्दसागर, प्रामाणिक हिन्दी कोश, वेलसारे के गुजराती कोश तथा कुलकर्णी के मराठी कोश आदि में भी अरबी अफयून या अफयन् दिया गया है और साथ ही यूनानी शब्द ‘ओपियन’ का भी उल्लेख है ।

तीसरी ओर सस्कृत के कोशकार हैं । ऊपर स्टाइनगास के मत के संबंध में कहते समय कहा जा चुका है कि उन्होंने तुलना के लिए सस्कृत शब्द ‘अफेन’ दिया है । सस्कृत के कोशों में अफीम अर्थ रखने वाले इससे मिलते-जुलते दो शब्द हैं—अफेन तथा अहिफेन । पुरानी परपरा के पड़ित इन दोनों शब्दों को अफीम या अफयून ग्रादि का मूल शब्द मानते हैं । उनके अनुसार ‘अफेन’ का शाविदक अर्थ है जिसका फेन अच्छा न हो अर्थात् दुरा हो और डमी कारण उनके अनुसार ‘अफेन’ अफीम का ही वाचक है । इसी प्रकार ‘अहिफेन’ का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ, उनके अनुसार ‘सर्प के फेन की भाँति ज़हरीले फेन वाला’ अर्थात् अफीम है । संस्कृत के विदेशी कोशकारों में मोनियर विलियम्स तथा मैकडनेल अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं । मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में ‘अफेन’ और ‘अहिफेन’ दोनों ही शब्दों को दिया है और इनका अर्थ

"अन्यों का अध्ययन

भी अफीम दिया है जितु उनका बहना है जि अफीम के मध्य में ये दोनों शब्द विसी सस्तृत की प्रकाशित रखना में उहोंने नहीं मिले। उहोंने भारतीय सस्तृत कोगे से इन शब्दों को लिया है। मकड़ानल ने इन शब्दों में पर्हिकेन को तो प्रपने कोश में स्थान ही नहीं दिया है और अफेन को दिया भी है तो उमड़ा मध्य अफीम नहीं लिया है।

यथाथत ऊपर के तीनों ही मत सत्य से दूर हैं। इन सभी "ए" का मूँ "ए" ओपास से बना है जिसका मूल मध्य कुछ लोगों के भनुमार वनस्पति वा का रस और बुद्ध लोगों के भनुमार पोस्ट के डेंड्र का रस है। यह मूलनी शब्द ओपियन लटिन में ओपियम हुमा और वही से भगवती कोवच तथा जमन भारि युरोपीय भाषाओं में गया। ह्वमरी और मूलनिया से ही इस शब्द को परवाना न लिया और उनके यहाँ उसका प्रमुग स्पष्ट परम्परन हुमा। परवो में इसके मध्य रूप प्रक्रियन तथा अफेन भारि मिलते हैं। परवो एक्स्प्रेस के भनुमार एवं भारि एवं पन्ना पर पढ़ितो न अफेन या "धहिकेन रूप म इतावा। सस्तृत को ओपास एवं दी। हिन्दी में यह "ए" अफीम भाक, भराठी में अफीम अफीण परू तथा गुजराती में अफीण तथा नपाली में अपिम भारि स्पो म मिलता है। अफीम रान म सबसा भाग चीन रहा है। यहाँ नहीं गढ़ी के भारती में परवद म अफीम से जाई गई और वहाँ इसका पुराना नाम प-कु-उत (परम्परन पर आपारित) मिलता है। प-कु-उत स्पष्ट ही परवो परम्परन पर ही आपारित है।

अमेरिका—अमेरिका एक महाद्वीप है जिसके दक्षिणी ओर उत्तरी ओर भाग है। इसके नाम का इतिहास यहाँ ही विवित है। अमेरिका का "ए" ओपन्स्पेस ने १२ घटक्कवर १४६२ में समाया था। उगल इयाक्कवर नाम गैरि एमरिक्स एवं एमरिक्स एक्स्प्रेस (Americus & espresius) था जो एमरिक्स एवं इस नाम का व्रष्टन न हो गया। ओपन्स्पेस का "ए" मिल एमरिक्स एमरिक्स यानुभियग (Americus & espresius) था। उगल एमरिक्स के समान ६ वर का १५०१२ ई० में अमेरिका गया। उगल १६०३ में पराना दाना दिग्गज प्रोतो भवा। यह भारि का हा बात है। इन अमेरिका का सहवर्षम एवं दाना समान दाने का नाम उमड़ी इन जल्दियों द्वारा के गाय नगर न नहीं जाहा और उगल ६ वर का १५०३ की दाना दाना दान दान दान अमेरिक्स योगुर्मियम के नाम के भनुमार पर "ए" नाम अमेरिक्स रण आया। अद्वा का मार्किंग भी है जिसका दान है—अमेरिका का नाम दानपर नहीं रहा रहा।

एक भूगोलवेत्ता मार्टिन वाल्डसी भूलर ने सर्वप्रथम १५०७ ई० अपने एक निवन्ध में अमेरिका के नाम के आधार पर 'अमेरिकी टेरा' नाम से इस देश को पुकारा। उसके नक्शे में यथार्थतः यह नाम पूरे अमेरिका का न होकर केवल दक्षिणी अमेरिका का था। बाद में जब उत्तरी अमेरिका का पता चला तो दोनों ही भागों को अमेरिका कहा जाने लगा और यह नाम प्रचलित हो गया। आज दोनों अमेरिका के लिए इसका प्रयोग करने के अतिरिक्त सामान्य प्रयोग में, 'यूनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका' के लिए भी लोग अमेरिका शब्द का प्रयोग करते हैं। कहना न होगा कि इस महाद्वीप के अमेरिका नाम में वेचारे कोलम्बस के प्रति सासार की अकृतज्ञता मूर्त हो उठी है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेख्य है कि कोलम्बस स्पेन का था, अतः स्पेनी लोग 'अमेरीका' रूप में इस देश के नामकरण से प्रसन्न न थे, और उन्होंने १८वीं सदी तक इस नाम का प्रयोग नहीं किया तथा इसका विरोध करते रहे। किन्तु अन्त में जब पूरी दुनिया कहने लगी तो उन्हे भी मानना हो पड़ा।

अलवम—हिन्दी में चित्र या टिकट आदि की कापी या पुस्तिका 'अलवम' कहलाती है। मूलतः 'अलवम' शब्द लैटिन शब्द अलवस (albus) का रूप है। अलवस का अर्थ सफेद होता है, अतएव अलवम का भी मूल अर्थ 'सफेद' है। आगे चलकर पुराने रोमनों के ही समय में 'अलवम' के अर्थ में कुछ परिवर्तन हुया और एक विशेष प्रकार की टेबुल (या सफेद बोर्ड) को 'अलवम' कहने लगे। इस मेज (या बोर्ड) के 'अलवम' कहलाने का कारण यह था कि इसका ऊपरी भाग सफेद रँगा ('जिप्सम सल्फेट ऑव्लाइम' से) रहता था। सभव है आरम्भ में लैटिन के किसी टेबुल (या बोर्ड) वाची शब्द का 'अलवम' विशेषण रहा हो और बाद में सस्कृत के 'हस्तिन् मृग' में से 'मृग' छूट कर 'हस्तिन्' या 'हस्ती' शेष रह जाने की भाँति 'अलवम' ही बच रहा हो। खैर यह 'अलवम' कहलाने वाली टेबुल (या बोर्ड) एक प्रकार का नोटिसबोर्ड था। आम जनता के लिए इस पर भजिस्ट्रेटो के फरमान, जजों की सूची या जनतोपयोगी अन्य इस प्रकार की सूचनाएँ चिपकाई (या लिखी) जाती थीं और यह ऐसे स्थान पर रखी जाती थीं जहाँ सामान्य लोग आकर इसे देख सके। मध्य युग में आते-आते ब्रिटेन में 'अलवम' उम रजिस्टर को कहने लगे जिसमें आगतुकों के नाम नोट किए जाते थे। इस प्रकार 'अलवम' कापी या रजिस्टर का पर्याय बन गया। ग्रेव अग्रेज़ी में 'अलवम' उस सादी कापी को कहते हैं जिसमें चित्र, टिकट, हस्ताक्षर या कविता के चुने हुए छद्म आदि चिपकाए जायें। आज भी इस कापी के सादी होने में डमका नफेद होने का मूल अर्थ नुरक्षित है, यद्यपि इसे विशेषण से हटकर मंज़ा बन जाना पड़ा है।

शास्त्रों का अध्ययन

आवह— 'पावह वा हि-नी-उदू' म इरुन प्रतिष्ठा या बहपत के प्रय
म प्रयोग होता है और इगत बने पावह उनरना प्रावह उनरना 'पावह
म चट्टा सगता पायस पर पानी जिरना प्रावि बहुन ग मुहाकरे लूव प्रचलिन
है। इप सार के मूल म इग तरह वा कोई भाव नहीं है और प्रालकारित या
तालिक प्रयोग के कारण ही समवत इसका यह प्रय ही गया है। 'भाव—
प्रय है पानी और क वा प्रय है चहरा और इस तरह इसका ८
चेहरे का पानी। इस रूप म यह '॥' इरुन स प्रथिक टीरु रोब
इसी का चल्टा पोर विण्डा रूप है। यो रोब भी कुछ हमरा न हो
या रोब या रोब है। ही प्रयोग म ऐतो पर प्रावह की प्रयेश्वा यह (रूपम
प्रथिक रोब गोठता दिलाई देता है।

आवदस्त— पासाना होने के बारे पानी से पोने को आवदस्त कहते हैं।
मुहाकरा प्रावदस्त लेना चलता है। मूलत यह कारसी का था है। कारसी
म प्राव (सह्तन प्राप, प्रय) का प्रय पानी तथा दस्त (स० हस्त) का प्रय
हाथ होता है। 'प्रावदस्त' गाँड़ का कारसी म वह प्रय नहीं है जो हिंदी उदू
म हो गया है। कारसी म नमाज पठन के पूर्व हाथ पर पोने या बूजू करन
को प्रावदस्त कहते हैं। जिस प्रवार भारत म सच्चा करने के पूर्व पडित लोग
'मोइम अपवित्रो पवित्रो या' आदि मन्त्र पढ़कर अपनी शुद्धि करते हैं
उसी प्रवार आवदस्त के बत्त भी मुसलमानों को अरबी मन्त्र (जिसका भाव
है—तू मुझे उन लोगों जसा बना दे जो पाप से विमुख रहते हैं। मुझे पवित्रत
पत्त बरन वालों म बना दे। मुझे अपने नेक बदों म बना दे) पठन का हृष्ट
है। आशय है कि भारत म आकर अप की टटिं से आवदस्त बेचारा इतना
गिर गया। कहाँ तो पूजा के लिए यह आदमी जो शुद्ध करता था और अब
कहा।

आमलेट (omelette)— घडे से बना एक प्रवार का खाद्य पदार्थ। मूलत
यह सहिन शब्द lamella है जिसका अर्थ या 'पतला पत्तर। कोच म यह
शब्द la melle हो गया। कोच मे पहल से ही तलवार के पतल पत्तर या
लेट के लिए एक '॥' allemande या। दोनों के मिथग से omelette
बना। आमलेट भी पतल पत्तर के समान बनता है अत उसके लिए भी इसी
नाम का प्रयोग होता जाता है।

आयत—‘आयत’ शब्द का प्रचलित अर्थ है कुरान, तौरेत या इज़ील आदि धार्मिक किताबों का वाक्य। जायसी लिखते हैं—पुनि उस्मान वड़ पड़ित गुनी। लिखा पुरान जो आयत सुनी। ‘आयत’ अरबी का शब्द है और इसका मूल अर्थ धर्म-ग्रन्थ का वाक्य न होकर ‘चिह्न’ या ‘निशान’ है। बाद में उन चिह्नों को आयत कहने लगे जो इन धर्म-ग्रन्थों में वाक्यों के अन्त में पूर्ण विराम या फुलस्टाप के रूप में लगाए जाते थे (इन निशानों को अब ‘आयती मुतलक’ कहते हैं)। और आगे चलकर इसके अर्थ में और परिवर्तन हुआ और उस निशान से हटकर ‘आयत’ उन वाक्यों को कहने लगे जिनके अन्त में ‘आयत’ कहलाने वाला निशान हो। आश्चर्य है इस शब्द की उन्नति पर। कहाँ तो साधारण चिह्न या निशान का पर्याय और अब कहाँ धार्मिक-ग्रन्थों का वाक्य। पाक, पवित्र। जिसके पढ़ने-मात्र से सवाव मिले।

एकड़—एकड़ हिन्दी का एक प्रचलित शब्द है। यह १-३/५ वींधे के वरावर की भूमि की एक नाप है। एकड़ शब्द की उम्म इतनी अधिक लम्बी है कि वर्षों में उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। यूरोपीय, ईरानी तथा भारतीय आर्य जब अपने मूल स्थान पर एक साथ रहते थे तो यह शब्द अपने किसी पुराने रूप में उनमें प्रचलित था। बाद में जब ये लोग यूरोप तथा भारत में गये तो यह शब्द भी उनके साथ दोनों स्थानों में गया। सस्कृत में सुली भूमि या आगन के अर्थ में प्रयुक्त ‘अजिर’ शब्द यही है। यूरोपीय भाषाओं में ग्रीक शब्द ‘आर्गस’ तथा लैटिन शब्द ‘एजर’ भी इसी ‘एकड़’ के पुराने रूप हैं। इन ग्रीक और लैटिन शब्दों का भी अर्थ सस्कृत ‘अजिर’ की भाँति खुली जगह ही है। इस प्रकार ‘एकड़’ शब्द का प्राचीनम् ज्ञात अर्थ भूमि की विशिष्ट नाप न होकर सुली भूमि या खुला स्थान है। और आगे चलकर ऐंग्लो-सैक्सन शब्द ‘एकर’ के रूप में हमें ‘एकड़’ शब्द मिलता है। यहाँ तक आते-आते इस शब्द का अर्थ सुली भूमि से हटकर भूमि-खड़ हो गया था। और आगे चलने पर इस शब्द के अर्थ में परिवर्तन की तीन सीढ़ियाँ दृष्टिगत होती हैं। पहले इसका अर्थ ‘भूमि खण्ड’ से बदल कर ‘चरागाह’ हुआ तथा आगे चलकर ‘चरागाह’ से परिवर्तित होकर ‘घेरी हुई भूमि’ हो गया। परिवर्तन की तीसरी सीढ़ी में ‘घेरी हुई भूमि’ अर्थ बदलकर ‘घेरा हुआ नेत’ हो गया। १३वीं सदी तक आते-आते ऐंग्लैंड में ‘एकर’ उनी वड़ी भूमि या नेत को कहने लगे जो एक हन से एक दिन में जोता जा सके। यही आकर सर्वप्रथम ‘एकर’ शब्द के नाम ‘नाप’ के भाव का गठनन्न हुआ। पर, इन रूप में उन शब्द के अर्थ में निश्चितता नहीं थी। अच्छे वैनों के हन से बड़ा नेत जोता जा सकता था और सनाव या कमज़ोर वैनों के हन से छोटा।

वादों का अध्ययन

इस प्रकार एकर का अथ बड़ा सेत भी सम्भव था और योदा भी। और आगे चलकर इसके अथ की इस पर्वेश्वरपता को द्वार कर एकरूपता साने के लिए एडवड प्रथम एडवड ततीय हेनरी अट्टम तथा जाज चतुर्थ ने कानून बनाए और १८७८ ई० तक प्राप्ते प्राप्ते ४८४० वर्ग गज का एक 'एकर यान' लिया गया। इसी अथ में एकर 'एकर यान' के साथ भारत में भाकर 'एकड़' बन गया और आज तक प्रचलित है। यह भाग्य की बात है कि इतन महान लोगों के प्रयास के बाद भी इस 'एकर' के अथ में एकरूपता नहीं आ सकी है। भारत तथा इंग्लैण्ड में यह ४८४० वर्गगज का है पर स्काटलैंड, आयरलैंड, वेल्स तथा कुछ अन्य देशों में अब भी इसके कई रूप प्रचलित हैं। स्काटलैंड का एकड़ ६१५० वर्गगज का होता है तो आयरलैंड का ७८४० वर्ग गज और वेल्स का ४३२० वर्गगज का।

एकादमी (academy)—साहित्य या कला आदि की संस्था। मूलत यह यूनानी शब्द है। एथेंस के पास एक बगीचा था, जिसका मालिक Academus था। एकडेमस एक मत संविसान या और हूमरे मत से एक वीर योदा। ऐसी के नाम के आधार पर इस बगीचे को Academica यहते थे। अपन समय में प्रसिद्ध दार्शनिक लेटो ने इसी बगीचे को अपना स्कूल बनाया और यहाँ दार्शनिक वाद विवाद आदि होने लगे। इस प्रकार बगीचे का नाम लेटो के संसर्ग से शिक्षा एवं उच्चस्तर के पान विज्ञान की संस्था वा पर्याप्ति बन गया। लटिन में यह 'एकरूप' academia तथा फौंच म academie और अप्रैची म academy हो गया। अनपढ़ सामाजिक विज्ञान (या मिषारी) का नाम आज साइम एकादमी साहित्यिक एकादमी आदि रूपों में पान विज्ञान का कान्द्र बन गया है।

एक्सरे (X Ray)—एक जमन चिकित्सक य जिनका नाम था राबन (Wilhelm Konrad Von Roentgen)। १८९५ में वे एक निन्द कोई प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने एक चाहोने देया कि एक विशेष दण से एक प्रकार की विराम ऐसी ठोस वस्तुओं के भीतर भी प्रवाप कर जाती है जिनके भीतर प्रवाप की सामाजिक विरणे नहीं जा पाती। उम्हि विराम के बारे में वह कुछ घूरन जान गत। यहाँ के लिए गणित भावन में एक्स (X) का प्रयोग चलता है इसी प्रायार पर उग भानात विरण को उठाने जमन में X Strahlen कहा। ऐसी या मप्रैची अनुब्राद X Ray भावन मनान विरण है। विज्ञान में यह इस विरण को प्राप्त राबन विरण कहते हैं, किन्तु इस विरण की गहायना में लिया गया प्रोग्रेस इसी प्राप्तर पर एकम र बहुगत है यद्यपि यह विरण यह यहाँ भाव भी गत है।

एटलस (Atlas)—यह शब्द मूलत ग्रीक भाषा का है और इसका घात्वर्थ है lenai=उठाना) 'उठने वाला'। ग्रीक पुराणों में एक देव है, जो उन स्तमों का रक्षक है, जिनके ऊपर स्वर्ग खड़ा है। एक अन्य मत से स्वर्ग या पृथ्वी की सकी पीठ पर है। इस प्रकार इसका अर्थ है 'भारी बोझ उठाने वाला'। द्वी सदी में यूरोप का एक बहुत प्रसिद्ध भूगोल वेत्ता मर्केटर (Mercator) आ है। इसने नक्शों का एक सग्रह बनाया जिसमें फ्रन्टिसपीस के रूप में एटलस का चित्र था। इस चित्र में एटलस पृथ्वी को अपनी पीठ पर लिए था। वाद के अनेक नक्शा बनानेवालों ने इसी की देखा-देखी अपने नक्शों के अंग्रहों में भी प्रयम चित्र के रूप में इसी प्रकार के चित्र का प्रयोग किया। अस्तित्वाम यह हुआ इस चित्र के आवार पर ही पूरा सग्रह 'एटलस' कहलाने वाला और अब एटलस का अर्थ हो गया है 'नक्शों का सग्रह'।

एलार्म (alarm)—हिन्दी में इसका प्रयोग 'एलार्म घड़ी' के रूप में होता है, अर्थात् 'वज़कर उठाने वाली घड़ी'। अंग्रेजी में इसका अर्थ 'चेतावनी' आदि है। मूलत यह शब्द इतालवी भाषा का 'all' arme है, जिसका अर्थ है 'हथियार ले लो' (to arms)। पुराने जमाने में दूश्मन के चढाई करने पर सैनिकों को यह हुक्म दिया जाता था। इतालवी में ही दोनों शब्द मिलकर allarme हो गए, जिससे फ्रेंच alarme फिर प्राचीन अंग्रेजी alarme तथा आधुनिक अंग्रेजी alarm बना। 'हथियार ले लो' या 'उठा लो' में चेतावनी थी, इसीलिए इसमें चेतावनी का भाव है। हिन्दी में इसमें 'जगाने' का भाव है।

कंपनी (Company)—मूलत यह शब्द लैटिन है। लैटिन में com का अर्थ है 'साथ में' और panis का अर्थ है 'रोटी'। इस प्रकार कंपनियन (companion) वह है 'जो साथ में रोटी खाय', और कंपनी का मूल अर्थ है 'साथ में रोटी खाना'। वाद में 'साथ में रोटी खाने' से विकसित होते यह मित्रता साथ, साभा आदि अर्थों में होते आधुनिक अर्थ में आया है।

कम्बख्त—'कम्बख्त' शब्द अब 'वेहूदे' 'कमीने' या 'वदतमीज़' आदि के अर्थ में आता है, किन्तु इसके मूल अर्थ में इस प्रकार की कोई भावना नहीं है। 'वख्त' फारसी शब्द है जिसका मूल अर्थ 'भाग' या 'हिस्सा' है, पर वाद में इसका प्रयोग 'भाग्य' (जो अपने हिस्से आवे) के अर्थ में होने लगा। 'कम' भी फारसी शब्द है और इसका अर्थ 'थोड़ा' या 'विना' है। इस प्रकार 'कम्बख्त' का अर्थ 'कम भाग्य वाला' या 'अभागा' है। इसी प्रकार 'कम्बख्ती' का अर्थ 'वदनसीबी' है न कि 'कमीनापन' जैसा कि लोग प्रयोग करते हैं। किन्तु अब ये दोनों शब्द इसी नए अर्थ में चल पड़े हैं।

शब्दों का अध्ययन

कनल (Colonel)—सेना मे एक पाविकारी । मूलत यह शब्द लिटिन का columna है जिसका अर्थ होता है खमा । इतालवी भाषा मे यह colonna हो गया, जिसका अर्थ था सनिक पवित्र (column of soldiers) । इतालवी मे ही यह आगे चलकर colonello हो गया जिसका अर्थ हुमा बालम या रेजिमेंट का सेनाध्यक्ष । इस प्रकार यह शब्द खमा से चलकर यक्षि वन गया । वहाँ से फैच म इसन colonel तथा coronel दो रूपो—coronel colonel मे आया । पहले R (r) बाला हृप अधिक प्रचलित था अत अप्रजी म कनल उच्चारण चला । चतुर्वाही म भी यह दो रूपो—colonel colonel मे आया है और अप्रजी म colon । चतुर्वाही म भी यह दो रूपो—colonel colonel मे आया है और अप्रजी M colon । चतुर्वाही कनल उच्चारण कनल ही चल रहा है । यह है अप्रजी coronel के इस प्रकार इसका मूल सदृश्य अप्रजी coronel से है, colonel स नही । अप्रजी के बहुत बम शब्द व्यक्तित्वाम रूप मे भारत म सामाजिक हो सके है । यह शब्द (कनेलसिंह आदि) इस शब्द म भी प्रचलित है ।

कप्यू (Curfew)—यह स्थिति जब कोई व्यक्ति घर से बाहर नही निकल सकता । दूरोप म मध्य युग म ऐसा होना था कि रात म खास समय पर गासन की ओर स घटी बजाई जाती थी उस समय सभी लोग अपने पर दी भाग या रोशनी या तो ढक देते थे या तुम्हा दते थे । यही रोशनी को ढकना मूलत कप्यू था । फैच म "गढ़" दो थे Couvre feu । प्रथम शब्द का अर्थ है ढक देना (अप्रजी cover) तथा छासर का है भाग । यह फैच युगम ही विरसित होकर cuevrefeu हुया जो अप्रजी म आकर कप्यू हो गया । इस "गढ़" के अर्थ म भी काफी विकास हो चुना है । बाहर न निकलने की भागा भी कप्यू है यद्यपि उससे रोशनी का कोई सबूत नही है ।

कलेंडर (Calander)—कलेंडर उस पत्र का पत्रक समूह को कहते हैं जिसम हर महीने के दिनों तथा तारीखों का उल्लेख रहता है । इस शब्द का अर्थात अर्थ हिसाब या मूर्त की कापी है । रोमन सोगो म इस कापी का प्रचार था । वहाँ के बज देन वाले महान गूर्ज की गणना के लिए अपनी कापी या बदी म महीने तथा तारीख आदि लिखते थे । यह कापी या बदी कलेंडरियम बहनानी थी । इन कापी के ही गुरुकरण पर रोमनो ने ७३८ ई०प० वष, महीना सप्ताह तथा दिन का कलेंडर बनाया । यह इमान्दा भा बही नाम पहा । रोमनो के कलेंडर म १० ही महीने थे बार म नामा पास्पीलियन न दो ओर महीन जोड़कर पूरे वष का कलेंडर बनाया ।

कलेडर शब्द की और पहले की कहानी भी कम मनोरजक नहीं है। मूलत इस शब्द का सम्बन्ध लैटिन की 'कैलारे' से है। 'कैलारे' का अर्थ 'पुकारना' होता है। रोम में महीने के पहले दिन की घोपणा जनता में पुकार पुकार कर की जाती थी। अतः महीने के पहले दिन को रोमनों ते कैलेड्रस कहा। आगे चलकर महाजनों ने जब अपने हिसाब और सूद की वही बनायी तो उसमें सूद पाने की तारीख होने के कारण पहली तारीख या महीने के पहले दिन का महत्व अधिक था, अतः उसी आधार पर उस वही या कापी को उन्होंने 'कैलेडरियम' कहा जो आगे चलकर आज का कलेडर हो गया।

काँजी—एक खट्टा रस, जो ईख के रस या गाजर या और कई चीजों को पानी में सड़ाकर बनाया जाता है। छाछ, या दूध को फाड़ने वाले खट्टेरस को भी काँजी कहते हैं। मूलत यह शब्द द्रविड़ परिवार का 'काडर्शी' है जिसका मूल अर्थ था 'उवाली हुई चीज'। परवर्ती तमिल में काँजी रूप में यह मिलता है। चावल के माड में कुछ [और भी चीजे मिलाकर इसे बनाते थे। इन भाषाओं से यह शब्द परवर्ती संस्कृत में आया वहाँ यह काजी, काजिक काजिका आदि रूपों में मिलता है। यह भी उल्लेख्य है कि संस्कृत के कोशों में तो यह शब्द कई में आया है किन्तु अन्य प्रकार के ग्रन्थों में एकमात्र सुश्रुत ही अपवाद है जहाँ यह मिलता है। संस्कृत से यह हिन्दी, मराठी, पंजाबी, सिंधी आदि आधुनिक भाषाओं में आया है।

काँजीहौस—काँजीहौस एक प्रकार से पशुओं की जेल है। इसमें लावा-रिस या खेती-वाड़ी आदि को हानि पहुंचाने वाले पशु बन्द कर दिए जाते हैं। हिन्दी की विभिन्न वोलियों में यह शब्द 'काँजी हौज', 'कानी हौज' 'कानी हाउस', 'काँजी हौस', 'कानी हौद' तथा 'काँजी हाउस' आदि रूपों में मिलता है। अन्य भारतीय भाषाओं में यह शब्द इस रूप में नहीं है। हाँ पंजाबी में यह प्रायः इसी रूप में है और उड़िया में 'काँजिया हत्ता' है, जिसमें 'काँजिया' तो 'काँजी' है और 'हत्ता' अहाता का विकसित रूप है।

'काँजी हौस' में स्पष्ट ही दो शब्द हैं। 'काँजी+हौस'। काँजी की व्युत्पत्ति कई प्रकार से दी गई है। रामचन्द्र वर्मा (प्रामाणिक कोश, द्वूसरा संस्करण पृष्ठ २३८) तथा कुछ अन्य लोग इसे 'काइन' (=गाय) से जोड़ते हैं तो ग्रैंहेम वेली (BOAs भाग ४, पृ० ७८३-६०) 'कैचिंग' से। किन्तु मुझे इनमें कोई भी मत संभावित नहीं लगता। भारत में 'काइन' शब्द कभी 'काउज़' के स्थान पर प्रचलित नहीं हुआ कि उससे इसे जोड़ा जा सके। 'कैचिंग' कुछ निकट है परं यहाँ ऐसे घर को कभी अंग्रेजी में 'कैचिंग हाउस' कहा जाता रहा।

दार्शनों का अध्ययन

हो इसके प्रमाण नहीं मिलता। यों एव्यापासक दृष्टि से भी बासन या बचिंग ग बौद्धी का विषय नहीं है। गरे विचार म 'बौद्धी द्रविड़ परिवार का शब्द है। तभित म 'बौद्धी' पुम्हू या अध्यवस्थित के पथ म पाया है। तुम्ह म 'बौद्धी' चौपाए पा पर्याप्ति है। हीत तो स्पष्ट ही पथ जी 'हाउस है। हाउस > होट > होल (ग > ग) > होट हूप म इसका विचास घम्य दर्शनों म इसा है।

कॉपी (Copy)—बौद्धी का अथ है कागजों की बनी सारी विचार लिपि पर लिखा गाता है। यह शब्द भवजी म 'फैच Copic से आया है जो लटिन Copia से निकला है। लटिन शब्द का अथ है भाषितय या बाह्यत्व। बौद्धी म पृष्ठ से कागज होने के कारण ही उसे बापी कहा गया गया। पर्याप्ती शब्द copious अब भी मूल अथ अधिक को ही व्यक्त करता है।

कॉफी (Coffee)—इस पद्धति की बहुत अधिक अवृत्ति वह शब्द का है। भरवी बहुत वा मूल अथ है साराव या नशा करने वाली चीज़। बहुत जाता है कि दूसी सारी म एक बार बाल्मी नामक एक भरव गडरिये की बक रियो ने इस बेड के फलों को साया और उनको तुछ नगा हो गया। उसने उन फलों को अपन क्षयर भारमाया तो उसने देता कि यकावट मिलाने तथा हल्ला रा रा बरन की शक्ति इनम है। उसी के द्वारा इसका प्रचार हुया। भरवी म नशा करने वाली चीज़ के लिए बहुत शब्द या अत वहाँ के लोगों में इसका नाम यही रहा। यह 'बहुत शब्द धीरे धीरे भासपास के देशों में पला और तुर्की म इसका उचारण बहुत हो गया। वहाँ से इतालवी म यह Cafe तथा फैच म Cafe बना। अपन जी म यह इही से गया है। इस प्रकार काफी या 'बहुत' वा मूल अथ साराव या नशा करने वाली है। एक अथ मत के अनुसार अबीसीनिया के caffia नामक स्थान म यह सबसे पहले मिली और इसी से यह नाम पड़ा। बनस्पतिगास्त्री इस मत के अवस्थ हैं कि काफी का मूल देश अबीसीनिया ही था।

कॉलेज (College)—उच्चतर पाठ्याला। इसका मूल अथ विलकुल अलग है। लटिन म Col का अथ है साय और lego का अथ है जुनना। लटिन म दोनों के योग से शब्द बनता है collegium जिसका अथ है 'सभा या समिति। यही collegium फव से होते अपर जी मे मादर college बन गया। इसका मूल अथ है जुने हुए एक प्रकार के लोगों का सघ। रोमन कानून मे जुने हुए एक प्रवासी भाविति के लोगों के सघ को collegium कहते थे। इनमे कम से कम तीन अधिकारियों का होना भावार्थक

था। इसमें संघ का भाव बहुत बाद तक रहा है और अब भी है। अमेरिका तथा इंगलैंड आदि में चिकित्सकों आदि के कुछ संघों को कॉलिज कहा जाता है। आगे चलकर अग्रेजी में इस शब्द का प्रयोग विद्याध्ययन आदि में सलग्न व्यक्तियों (विद्यार्थी तथा शिक्षक) के संघ या समुदाय के लिए होने लगा और फिर यह धीरे-धीरे आज के अर्थ में आ गया।

कॉमरेड (Comrade)—इस शब्द का अर्थ है मित्र, किन्तु इसका प्रयोग अधिकतर कम्यूनिस्ट या साम्यवादी मित्र के लिए या किसी कम्यूनिस्ट व्यक्ति नाम के साथ 'श्री' आदि के अर्थ में भी होता है। इस रूप में इसका अर्थ है कम्यूनिस्ट पार्टी का सदस्य आदि। इस शब्द का मूल अर्थ है 'कमरे का दोस्त'। कमरे के अर्थ में एक लैटिन शब्द है Camera। यही स्पेनी भाषा में camara हो गया। वहाँ रात में सरायों के एक कमरे में जो कई आदमी रहते थे वे कामरेड (Camrade) अर्थात् 'कक्षमित्र' या 'कमरे के दोस्त' कहलाते थे। यह शब्द फासीसी भाषा में आकर Camarade तथा अग्रेजी में Comrade हो गया।

कॉमा (Comma)—अल्पविराम के लिए यह शब्द चलता है। इसका मूल ग्रीक शब्द Komma है जिसका अर्थ है 'कटा हुआ टुकड़ा'। वाक्य के एक टुकडे को यह अलग करता है, इसीलिए इस चिह्न को कॉमा कहा गया।

कॉमेडी (Comedy)—नाटक का एक रूप। हिन्दी में इसे 'कामदी' या 'सुखात' आदि भी कहा जाता है, किन्तु ये दोनों ही शब्द 'कॉमेडी' के पूरे भाव को व्यक्त नहीं कर पाते। कॉमेडी प्रायः गभीर नहीं होती तथा इसका मूल उद्देश्य मनोरंजन या हँसना आदि होता है। इससे सबद्ध विशेषण 'कॉमिक' से इसकी आत्मा के एक पक्ष पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। 'कॉमेडी' शब्द का सबवय यूनानी शब्द Komos से है। Komos डोरियन लोगों का एक पर्व था जिसकी प्रमुख विशेषता उच्छृंखलता, नृत्य, संगीत, गन्दे मजाक आदि थे। इस अवसर पर गाए जाने वाले विशिष्ट गीत भी Komos कहलाते थे। गीतों के बीच में भारतीय कवीर या जोगीडे की भाँति मजाक भी चलते थे। इस गीत और मजाक ने ही धीरे-धीरे कथानक युक्त हास्य-व्यग्रपूर्ण नाटक का रूप ले लिया। लगभग ५७८ ई० पू० में सुसेसियन ने कदाचित् पहली 'कामेडी' लिखी। इसमें व्यवस्थित कथानक का समावेश करने का श्रेय एपिकार्मस को है।

कैंडिडेट (candidate)—यह शब्द 'उम्मीदवार' का समानार्थी है। हिन्दी में भी इस शब्द का कम प्रचार नहीं है। लोक भाषाओं तक में लोग इसका घड़ल्ले

गद्दों का अध्ययन

से प्रयोग करते हैं। सटिन की एक घातु है 'कहेर जिसका अब 'चमकना' या 'सके' नियाई पड़ा' है। रोम मान्द्राज्य म जो सोग और नीकरियों के लिए 'उम्मीदवार होकर आते थे वे प्राय सफद चमकीले लगाते (या छोड़) पहने रहते थे। धीरे धीरे यह परम्परा-दी चल पड़ी और सभी उम्मीदवार राफें चमकीली पोगान म आने लगे। पलत कहेरे घातु से बना शान्त उनके लिए प्रयुक्त होने लगा, जिसका अप्रृच्छी दृष्टि क्षिण्ठ का मूल अब प्राजनक तो कहिंटे बाते नीते, भूरे, बालामी और कर्याई आदि सभी रण म दियाई पड़ते हैं जिन्हें चमकीले होने का माव उनकी पोगान म अवश्य होता है यद्यपि यह मात्र सयोग की बात है।

कम्ब्रिक (Cambric)—एक कपड़ा। पहले इस Camerike कहते थे। फ्रांस के Cambrui नगर म सबवयम यह कपड़ा बना, यत यह नाम पड़ा।

कलिको (Calico)—एक कपड़ा। भारतवर्ष के कलिकट (Calicut) नगर से इगलड म जान के कारण एक विशेष प्रकार के सूती कपड़ कलिको बहलाने लगा। यह विशेष कपड़ के लिए यह नाम है।

गजट—सरकारी विजितियों के घसबार का नाम गजट है। कुछ सोग गजट सब्द को 'गज्जा' से सम्बद्ध मानते हैं। गज्जा एक प्रकार के गाने वले नीलकण्ठ पश्ची का नाम है। इस मत के पोपको का बहना है जि सरकारी विजितियों मारम्भ म पटकर सुनायी जाती थी और यह पढ़वर सुनाना गज्जा पक्षी के गाने या बोलने की तरह या अतएव इस पन्ने वो या उस बागज को जिस पर यह पड़ने की सामग्री रहती गजट कहने लग। इस मत को मसदिग्ध नहीं कहा जा सकता।

दूसरे मत के अनुमार गजट शान का मूल इतालियन शब्द 'गजटा' है। १६ वीं सदी म वेनिस की सरकार का सबसे छोटा सिक्का गजटा' या जिसका मूल्य प्रथमेजी कादिग से भी कम था। उस समय सरकारी विजितियों को एक कागज पर लिख लिया जाता था और उसे विसी ऐसे स्थान पर सुनाया जाता था जहाँ बहुत से लोग सुन सकें, किंतु साथ ही एक और भी 'गत थी। जो लोग उन सरकारी विजितियों को सुनते के लिए वहाँ आते थे उन्हें एक गजेटा सिक्का फीस के रूप म देना पड़ता था। इस प्रकार की विजितियों महीने एक बार सुनाई जाती थी। सुनते के लिए एक 'गजेटा' देने के कारण ही धीरे धीरे उस बागज (या घसबार) को गजट कहन लगे।

कहना न होगा कि 'गजट' की दूसरी व्युत्पत्ति ही अधिक युक्तिसंगत लगती है। यह शब्द इतावली से फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी में और अंग्रेजी से भारतीय भाषाओं में आया है।

गुलाव—गुलाव एक प्रसिद्ध फूल का नाम है। यह शब्द फारसी का है, पर वहाँ मूल शब्द 'गुलाव' न होकर 'गुल' था। गुल का अर्थ यो तो फूल होता है, किन्तु फारसी में इसका पुराना अर्थ सब फूल न होकर सिर्फ़ 'गुलाव का फूल' था। 'गुलाव' शब्द का अर्थ उस समय 'गुल का आव' या गुलाव जल (रोज़ वाटर) था। बाद में गुलाव के फूल को लोग केवल 'गुल' न कहकर 'गुलाव' अर्थात् वह फूल जिससे पानी निकाला जाय, कहने लगे और इस प्रकार 'गुल' के लिए 'गुलाव' शब्द प्रचलित हो गया। आजकल लोग 'अर्क गुलाव' या 'गुलाव जल' शब्दों का प्रयोग करते हैं जो मूल अर्थ की दृष्टि से विलकुल बेतुका हैं। 'गुलावजल' का अर्थ हुआ 'गुल' के पानी का पानी। यह कुछ वैसा ही प्रयोग है जैसे 'सज्जन व्यक्ति'।

गोदाम—प्राय यह समझा जाता है कि हिन्दी का 'गोदाम' शब्द अंग्रेजी 'गोडाउन' (godown) से निकला है, किन्तु वास्तविक यह है कि अंग्रेजों के सपर्क के पहले (१६ वीं सदी) से यह भारत तथा आस-पास की अनेक भाषाओं में प्रयुक्त हो रहा है। वगाली, मराठी, सिहली में इसका रूप 'गोदाम' है, तो तामिल में 'कडगु' और तेलगू में 'गिडगी' है। अधिक सभावना इस बात की है कि मलय भाषा का इसी अर्थ का 'गुदोग' शब्द ही इन भाषाओं में विभिन्न रूपों में मिलता है। मलय का भी यह अपना शब्द नहीं है। वहाँ अनामी भाषा से आया है, तथा अनाम में चीनी से। चीनी तथा अनामी में इसके रूप 'ह्वान्त्साग' मिलते हैं। इस तरह यह शब्द चीनी भाषा से अनामी तथा मलय में होते हमारे यहाँ आया है।

चॉकलेट (chocolate)—एक मिठाई। हिन्दी में यह शब्द अंग्रेजी में आया है। मूल शब्द अमेरिका के मूल निवासियों की भाषा नहुअत्ल (यूटो-अज्जटेकन भाषा-परिवार की) का chocolate है, जिसका अर्थ है 'कडवा पानी'। मूलत जो चाकलेट बनता था वह आज जैसा न होकर कोकोआ (cacao) को पीसकर सूखा या गीला बनता था, जो काफी कड़वा होता था। अमेरिका से इस शब्द को स्पेन के लोग यूरोप में लाए। अब चीनी दूध आदि टानकर यह काफी सुस्वादु बनता है।

शब्दों का अध्ययन

चाय—प्रसिद्ध पेय। इसका प्राचीनतम उल्लंघन ३५० ई० के लगभग का मिलता है। चीन की प्राचीन भाषा का यह '茶' है। मूल शब्द चा(ch'a) है। इसके प्रचार में वहाँ के बोद्धा का हाथ है। वे शराब आदि अधिक नशीली चीजों से लोगों द्वारा बचाने के लिए इसके प्रचार में रुचि लेते थे। चा चहा चाई चाई टी आदि भ्रनेव इसी में यही शब्द मिलता है।

जनाव—यह हिन्दी उद्भव में एक शादरसूचन शब्द है और इसका अर्थ है 'महाशय' या श्रीमान। मूलत इस शब्द में इस का प्रकार कोई भाव नहीं था। भरवी की एक धातु है जोम-नूँ वे जिसका अर्थ होता है 'दूर होना दूर करना' या 'टटना'। इसी से भजनवी बनता है जिसका मूल अर्थ है 'दूर का गर या 'भजननाम'। इसी धातु से भरवी शब्द जानिव बनता है 'जिसका मूल अर्थ दूर की चीज़ और बाद का विकसित अर्थ है 'दूर का या जनाव शब्द भी इसी धातु से बना है और इसका मूल अर्थ है 'दूर का या 'भलग का'। 'दूर का या भलग का' से विकसित होकर जानिव की तरह इसका अर्थ 'दूर का या भलग का' होता है। भरवी तथा फारसी में यह शब्द 'द्वेर' या और हुआ क्योंकि मैं भी भ्रष्टता होने के कारण ही ही होते हैं। इस अर्थ में यह शब्द फारसी में भी प्रयुक्त मिलता है। भरवी तथा फारसी में भी भ्रष्टता होने के कारण ही ही होते हैं। इस अर्थ में यह शब्द फारसी में भी प्रयुक्त मिलता है। फारसी में यह घर के सामने या बगल का सहन या भजन हो गया। फारसी में यह घर के भीतर का भागिन और पिर सामने का कमरा हो गया। फारसी में ही और भागे चलकर कमरे बदलकर इसका अर्थ 'गरण लेने की जगह हो गया। अशारण गरण होते ही इसमें बढ़प्पत की भावना आई और शरण लेने की जगह से बढ़कर यह ऐसे व्यक्ति का वाचक हो गया जो शरण दे। अपने ऊपरतम विकास में यह शब्द अब शादरसूचन '茶' हो गया और इस अर्थ में यह कारसी उद्भव होता है। वहाँ तो इसी का भाईबद भजनवी भजनवी ही बना रहा और जानिव बैचारे को दिग्गजपेत स ही पुस्त नहीं मिली और यह दोडता-दोडता इतना आगे बढ़ गया।

जरसी (jersey)—इस '茶' का अप्रेजो उच्चारण जिति है। इगतिं चनेत में सबसे बड़ा द्वीप jersey है। वहाँ सब प्रश्यम एक विशेष प्रवार का कपड़ा बना जिससे जस्तियाँ बनती थीं। बाद में उस प्रवार के बुन कपड़े भी जरसी बहलाए। अब जरसी विशेष प्रकार का स्वेटर है।

"दों का अध्ययन

विस्तार हो गया है। पानी की सवारी' के मुकुचित भ्रय से बाहर निकलते वर्ष यह उस विशिष्ट प्रयोग में सवारी का समानार्थी हो गया है पानी का जहाज हवाई जहाज। कितना अधिकरण है कि मासमान की द्याता चीरते हुए उड़ने वाला जहाज और व्यू पदा से वर पक्ष को मिलने वाला दहज दोनों एक हैं।

इधर लोक भाषाओं में जहाज के भ्रय में कुछ और विकास हो रहा है और जहाजी सुपारी (एक प्रकार की विशेष बड़ी सुपारी) 'वह बल क्या है जहाज है या वह मकान तो पूरा जहाज है आदि रूपों में यह 'शू बड़ा' या विशालकाय के समानार्थी बनने के रास्ते पर प्रग्रसर होता दीप्त रहा है। कोन जाने वह बढ़पन भी इसके भाग्य में लिखा हो। पर हमसे और इसकी अवनति का द्वारा भी बद नहीं है। हिंदी में एक अत्यत निहित प्रकार के इन की सभा जहाजी इन हैं।

जायदाद— जायदाद का हिंदी उद्दू में आज का भ्रय है सपत्ति। उनके पास बड़ी जायदाद है का भ्रय है उनके पास बड़ी सपत्ति है। इस सपत्ति में एक और तो जामीन या मवान आदि अचल सपत्ति हैं तो हमसे और सामान' आनि चल सपत्ति। शब्द के मूल में इस प्रकार का कोई भाव नहीं है। जायदाद फारसी का शब्द है। जाय का भ्रय है जगह या जामीन पारसी में मूल रूप में इस शब्द का भ्रय या वह जमीन जो बादगाह की ओर से अपने अमीरों को सेना रपन में होने वाले यथा वे लिए दा जाय। वहाँ से विकसित होकर इसका भ्रय जामीन हुआ और यह 'सपत्ति' ही गया है।

जाजेट (georgett)— एक रेग्मी कपड़ा। धीमती जाजेट पासीसी दर्जिन थी जो घब्बे ढग के कपड़े बनाने के लिए प्रयोग थी। उठी वानम पर इस कपड़े का नाम जाजेट पड़ गया। इसका कारण यह या ति भौतिकों के बहुत घब्बे कपड़े के बनाया करनी थी वे प्राय इसी कपड़े के होते थे।

जिम्नास्टिक (Gymnastic)— एक प्रकार का व्यायाम। स्ट्रैटन में नम्न 'Gymnos' का भी भ्रय नम्न या नग है। इसी शब्द में 'gymnos' बना है। इसी शब्द में 'Gymnazein' बना है जिसका भ्रय होता है नग्या रहना या नग हात्तर व्यायाम करना। पूनरात

मे पहले लोग (प्रमुखत लड़के और पुरुष) नगे होकर व्यायाम किया करते थे। सूर्य के प्रकाश से लाभ उठाने के लिए ऐसा किया जाता था। इसी शब्द से gym-nastic वना। इस प्रकार इसका मूल अर्थ है 'नगा'। बाद मे यह नंगा होकर किए जाने वाले व्यायाम का वाचक हो गया और फिर एक विशेष प्रकार के व्यायाम का।

जुलाव—यह शब्द मूलतः 'गुलाव' ही है। पुरानी फारसी मे 'गुल' शब्द सामान्य फूल का वाचक था, इसी लिए 'गुलाव' (गुल का आव) का अर्थ था 'गुलाबजल'। गुलाबजलार्थी 'गुलाव' का प्रयोग दस्तावर दवा के रूप मे भी होता था। इस लरह 'गुलाव' शब्द फारसी से अरबी मे गया तो 'ग' ध्वनि 'ज' मे परिवर्तित होगई और यही 'जुलाव' हो गया। हिन्दी गुजराती, मराठी, नेपाली (जुलाय, जुलाफ) आदि मे यह अरबी रूप ही फारसी होते आया। अरबी से यह शब्द यूरोपीय भाषाओ मे भी पहुँचा और वहाँ इसका रूप 'जुलेप' हो गया। दवा के अतिक्रित वहाँ एक विशेष प्रकार के सुगवित अच्छे पेय का भी 'जुलेप' कहते है।

जेव—हिन्दी मे 'पाकेट' या 'खलीते' का समानार्थी शब्द 'जेव' है। यह शब्द मूलतः अरबी का है और वही से फारसी मे होता हुआ यह भारतीय भाषाओ मे आया है। अरबी मे इसका उच्चारण 'जैव' था, फारसी मे जेव तथा 'जीव' हुआ और भारतीय भाषाओ मे 'जेव' है।

अरबी शब्द 'जैव' का सबध अरबी धार्तु 'जीम-वाव-वे' (=काटना) से माना जाता है और इस प्रकार इसका मूल अर्थ है 'जो काटा जाय' या 'काटकर बनाया जाय'। आरभ मे अरबी मे 'जैव' शब्द का प्रयोग पहने जाने वाले कपड़ो के 'गरेवान' या छाती पर काटकर बनाए गए गले के भाग के लिए (शायद काटकर बनाने के कारण) होता था। अब भी इस अर्थ (गरेवान) में यह शब्द अरबी तथा फारसी मे प्रयोग मे आता है। पुराने अरब लोग पहले जो कपड़ा पहनते थे उसके गरेवान का नाम 'जैव' ही था। उस समय तक उन लोगो के कपड़ो मे पाकेट नही लगता था। आगे चलकर जब 'पाकेट' की आवश्यकता महसूस हुई तो सबसे सुरक्षित स्थान छाती समझी गई अतः गरेवान के पास ही वे लोग गले से लगाकर एक थैली लटकाने और बाद मे सभवतः उसी कपड़े मे सिलवाने लगे। यह थैली जैव (=गरेवान या छाती के पास का कपड़े का कटा भाग) के समीप लगती थी अतः लोग इसे भी 'जैव' कहने लगे। इस प्रकार 'गरेवान' या आगे के गले का समानार्थी शब्द 'यैली' का समानार्थी बन गया। बाद मे वह थैली गले के पास बीच मे न लगाई जाकर छाती पर

शब्दों का अध्ययन

ही बगल म और किर नीचे जधे के पास लगने लगी। माज जेव शब्द हिन्दी च्छू म प्राप्त सभी पाकेटों के लिए भाता है जाहे वे कमीज़ या बोट मे सामने लग हों जाहे कुत्ते और बोट की बगल म या पट बाधने की पेटी के भीतर या पीछे।

हिन्दी उन् म जव शब्द के कुछ और अथ भी विभिन्न प्रकार के प्रयोगों के बारण विस्तृत हो रहे हैं। जबतच म जेव शब्द निजी या मोनन और वस्त्रादि के अतिरिक्त वा या ऊपरी वा समानार्थी है तो जगी गिनास' और 'जबी तराजू भादि म घाटे का और जेवीघड़ी म पही के एक विशेष प्रकार का।

टमाटर (Tomato)—एक संकी। मूलत यह मेक्सिको का है। अमेरिका म आदिवासिया म एक भाषा नहुमतल (Nabuati) बोली जाती है जो मूटो अजाटेकन (Uto-Aztecian) भाषा परिवार की है। टमाटर उन् मूलत उसी भाषा का है। मूल शब्द टोमाटल (tomatl) या। सनिग म वह tomato हो गया जहाँ स अप्रेजी tomato भाषा। यूरोप म इसका प्रचार १५७० के लगभग हुया। १८२२ के पूर्व इस हानिकर माना जाता था। हिन्दी टमाटर मेरे विचार म अप्रेजी टोमटो स नहा आया है। यह मूल टोमाटन (त>र) के अधिक निकट है।

टोपो—हिन्दी का टोपी शब्द बड़ा विवादास्पद है। सभा के हिन्दी पान सागर या रामचंद्र वर्मा के प्रामाणिक बोग म उम हिन्दी के तोप या तोपना स जोड़ा गया है और स्वयं तोपना प्राइन तुप्प स सबद्ध कहा जाना है। प्लाटस ने घपा बोग म इस हिन्दी शब्द कहवर छुट्ठी पानी है। कुन्तरगांधी घपन मराठी कोग म उस सहृदय तुप्प खुम स जोड़ने हैं। टनर नेपाली बोग म बहित तुप्प टोप म इसका सबूप मानत है। गारेस न घपने पांचुड़ीज योवेडुल्म इन एग्रियाटिक सत्रिकिया (१९३६ ७० ३४६) म उन गाली तोपो (topo) स इस व्युपन माना है। उत्तराञ्चल म घपन प्रवास म इसका अप जारा गिरा या गोप हाना है। उड़गिरिस्तान म घपन प्रवास म मुझे उज्जरा भाषा म टाया अप म दोष उप मिला और मरा विचार करहा है कि भारतीय भाषाओं म यह तुर्जी भाषा म थाया है। हिन्दु एवं गण एवं वार म बहुत कुछ जानन और पढ़ने को मिला। गवग बही बात तो यह है कि यह १२वीं संवी म या उसके बाद इगरा प्रयोग मार्गीय भाषाओं में मिलता ता। म तुर्जी ग भाषा माना जा गया या कराह तुर्जी एवं अपनि म 'टायी' स बाज़ दूर नहीं है और अप दोनों का एक ही है। इन्ही

प्रकार यदि पुर्तगालियों के सर्वके के बाद ही इसका प्रयोग मिलता तो 'शीर्प' अर्थ के पुर्तगाली शब्द 'तोपे' या 'तोपो' से भी इसे जोड़ना बहुत ग्रन्थया न था। किंतु इसका प्रयोग भारत में पर्याप्त प्राचीन ज्ञात होता है। प्राकृत के प्रसिद्ध कोश पाड़ग्र सद्व महण्णवो में टोप्पर तथा टोप्पिआ शब्द 'टोपी' के अर्थ में दिए गए हैं और इन्हे देशज कहा गया है। प्राकृत, अपभ्रंश और अवहट्ठ के सुपासनाहचरित्र, आदिपुराण, जसहरचरित्र तथा उक्तिव्यक्तिप्रकरण आदि कई ग्रंथों में यह शब्द टोप्पर, टोपर, टोपी, टोपरउ, टोप आदि रूपों में उपलब्ध है। इन सबके आधार पर ऐसा लगता है कि हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं के जन्म के पूर्व से ही इस शब्द का प्रचार हमारे यहाँ था, और ऐसी स्थिति में इसे तुर्की या पुर्तगाली नहीं माना जा सकता। इसे देशज मानने के भी पक्ष में मैं नहीं हूँ। अब मेरे विचार में मूलत यह शब्द सस्कृत का है, किंतु सस्कृत स्तुप, स्तुभ आदि से इसका सबब नहीं है, क्योंकि टोपर, टोप्पर, टोपरउ आदि पुराने रूपों की 'र' ध्वनि इससे नहीं निकल सकती। संस्कृत ग्रंथ घूर्तसमागम (२ ११-१२) में एक शब्द 'टोपर' आया है जिसका अर्थ 'छोटा थैला' है। मेरे विचार में टोपी का मूल यही है, एक तो अर्थ और ध्वनि दोनों ही दृष्टियों से यह शब्द टोपी और उसके प्राप्त रूपों से काफी समानता रखता है, और दूसरे इससे 'र' ध्वनि का भी समाधान हो जाता है जबकि अन्य किसी से भी नहीं होता।

निष्कर्प 'टोपी' शब्द सस्कृत 'टोपर' से संबद्ध है। 'र' के लोप से 'टोपर' का टोप हो गया और फिर स्त्रीलिंग ई के योग से 'टोपी'।

टोस्ट (Toast)—पावरोटी का सेका हुआ टुकड़ा। मूल शब्द लैटिन to-reve है, जिसका अर्थ है 'जलाना या सेकना'। जलाने या सेकने के कारण ही यह नाम पड़ा है। ग्रामीण लैटिन में यह *tostare* हुआ और वहाँ से फ्रेंच में *toster*। अग्रेजी टोस्ट इसी से है। इस प्रकार टोस्ट वह है जो सेंका या जलाया जाय।

ट्रैजेडी (Tragedy)—इसे हिन्दी में 'त्रासदी' तथा 'दुखान्त' कहते हैं। यद्यपि दोनों ही शब्द इसके ठीक भाव को व्यक्त करने में असमर्थ हैं। ट्रैजेडी का अर्थ है 'वकरा-गीत'। ग्रीक मापा में *tragos* का अर्थ है 'वकरा' और *oide* का अर्थ है 'गीत'। इस प्रकार पहले यह एक प्रकार का गीत था। गाने वाला संभवतः वकरे की खाल पहनकर गाते थे, अतः गीत 'वकरा-गीत' कहलाया। अन्य मतों के अनुसार यह त्रास और करुणा का गीत वकरे के वलिदान के अवसर पर पहले गाया जाता था, अतः 'वकरा-गीत' हुआ। तीसरे मत के अनुसार

ही रहा किंतु इसका धर्षण बाल गया। प्रादृष्ट के स्थान पर इसका धर्षण शास्त्र में प्रमुख रूप से भरी जाने वाली पत्ती ही गया। प्राचार अधिक हो गया। इसके लिए दो कारण निए जाते हैं। एक भार में अमरीकी आदिवासी कमी-कभी विना पाइप के पत्ती का ही सपेटकर (भाजे वे चुट्टे की भाति) प्रयोग करते थे और उसे भी इसी नाम से अभिहित करते थे। यह चुट्टे विशेषता आता तबाक् खट्टलने वाली पत्ती का ही होता था मगर उस पत्ते उमके पौधे को सेनी लोग इसी नाम से पुरारने लगे। एक भाष्य मत के अनुसार स्पेतियों ने गतता से पाइप के शास्त्र का प्रयोग मादार पत्तों में अपेक्षाकृत अधिक प्रचलन तबाक् के पत्ते का ही था।) अप्रजी ग्रन्थ सेनी में ही निकला है। भरव में इस पौड़ी तथा इस नाम से पुतगाली १६०० ई० के लगभग ले आए। इसी विलम्ब पर रखकर अब वर को विचार की बोगियाँ की गई किंतु हीमों के मना करने पर उसने ऐसा नहीं किया। पुतगाली भाषा में इसका लिए ग्रन्थ tabico है।

दुक्कान—यह शास्त्र कारसी में 'दुक्कान' के रूप में आता है और इसका अर्थ वही है जो हिन्दी में है। अरबी में यह 'दुक्कान' या 'दूक्कान' है भीर वर्ण भी इसका यही अर्थ है। प्रस्तुत शब्द मूलत अरबी है या कारसी इस सबै में विद्वानों में मनने वाला है। स्टाइनगास ने इसे भरवा शब्द माना है। अरबी मानने पर भी इसकी व्युत्पत्ति के सबै में दो मत हैं। एक के अनुसार यह 'दात बाफ नू' पातु से बना है जिसका अर्थ एक पर एक रसना होता है। दुक्कान में चूंच चीजों एवं पर एक रसी रहती है भ्रत उसे दुक्कान कहा गया। दूसरे मत से इस शब्द का सबै दात बाफ काफ धानु से है जिसका अर्थ जमीन के बगवर बनता है। इस मत के पोषकों का वहना है कि पहले बटन के लिए लोग जमीन के समानातर चबूतरे बनाते थे, जिसे दुक्कान बहते थे। बाद में इस प्रकार के चबूतरे पर बठकर सामान बेबने लगे अब 'ग्रन्थ' का अर्थ चबूतर से बदलकर 'दुक्कान' हो गया। अर्थात् जो जाग (सईदुल पुरी) इस ग्रन्थ को अरबी नहीं मानते उनके अनुसार फारमी शास्त्र दुक्कान का दुक्कान मुमरद अर्थात् अरबी रूप है।

नारगी—आवमफोड तथा बस्टर के प्रसिद्ध अप्रजी कोगा में 'स' "स" का मूल शब्द अरबी नारज माना गया है। टनर न अपने प्रसिद्ध दोग नाम।

डिक्जनरी' मे मूल शब्द फारसी 'नारगी' माना है। मेरे विचार मे यह शब्द मूलत न तो अरवी है और न फारसी। नारगी फल के मूल स्थान तथा विकास के सम्बन्ध मे गैलेशियो की खोजो से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि इस फल का मूल स्थान भारत ही है। तिलहट, कुमार्यूँ, सिक्किम तथा नीलगिरि की पहाडियो पर आज भी इसकी जगली जातियाँ पायी जाती हैं। ऐसी स्थिति मे नारगी के मूल शब्द को फारसी या अरवी का न होकर किसी भारतीय भाषा का ही होना चाहिए।

संस्कृत मे नारगी के लिए 'नागरग' शब्द है। मेरे विचार मे मूल शब्द यही है। संस्कृत मे 'नाग' का अर्थ सिन्धूर होता है। नारगी सिन्धूर के रंग की होती है, इसीसे उसे 'नागरग' या 'नाग रगक' आदि कहा गया है। संस्कृत का 'नागरग' शब्द ही भारत की अनेकानेक भाषाओं और बोलियो मे नारगी, नारगि तथा नवरगी आदि रूपो मे मिलता है। भारत से ही यह शब्द फारसी तथा अरवी मे 'ग' के 'ज' हो जाने से यह 'नारज' हो गया। अरवी भाषा से यह शब्द यूरोप मे पहुँचा और कुछ ध्वनि-परिवर्तन के साथ विभिन्न भाषाओं मे प्रचलित हो गया। लैटिन मे इसका रूप 'ओरेजिया' मिलता है तो पुर्तगाली मे 'लारज', स्पेनिश मे 'नारज' फ्रान्सीसी मे 'अरेज', पुरानी अंग्रेजी मे 'ओरेंज' और जर्मन तथा अंग्रेजी मे 'आरज'। द्रविड भाषाओं मे सुगव के अर्थ मे एक शब्द 'नार' मिलता है। कुछ लोग इससे भी 'नारगी' का सबव मानते हैं।

निकर (Knicker)—हिन्दी मे 'निकर' जाँघिया को कहते हैं। अंग्रेजी मे मूल शब्द निकर न होकर Knickerbockers है। निकर या निकर्ज इसका सक्षिप्त रूप है। 'निकरवॉकर्ज' मूलत किसी पोशाक का नाम न होकर विशेष लोगो का नाम है जो डच थे और बाद मे न्यूयार्क मे बस गए थे। उन्ही के नाम के आधार पर इनके छोटे पाजामे या जाँघिये को भी अंग्रेजी मे 'निकर वॉकर्ज' कहने लगे। पहले यह पहनावा शिष्ट नही समझा जाता था और लोग इसका मज्जाक उड़ाते थे। बाद मे खेल आदि मे सुविधाजनक होने के कारण इसका प्रचार बढ़ा और यह शिष्ट लोगो द्वारा भी गृहीत हो गया। मूलत यह शब्द डच भाषा का है।

पंचमार्गी (अंग्रेजी fifth columnist का अनुवाद)—अंग्रेजी का यह प्रयोग मूलत स्पेनी प्रयोग पर आधारित है। १९३६ मे ई० मोला ने स्पेनी गृहयुद्ध के समय मैडरिड पर चारों ओर से चढ़ाई की। चार ओर से चार

"मर्दों का अध्ययन"

सनाये (in army force of four columns) तो वो ही उसने रेडियो संहा कि इन चारे के मतिरित एक पांचवीं (fifth column) भी है जो शहर म भीतर है। उसका मायाय उन स्वप्नशीय गुप्त वाम करने वाला संघ जो नगर म था। तबस बिसी देख या नगर म बाहरी शहर की ओर संघुपचार का माय बरने वाला या ताढ़ फोड़ बरने वाले के लिए इस fifth columnist या पचमांगी का प्रयोग होता है।

पाण्डुलिपि— हस्तलिखित प्रथा के लिए हिन्दी म पाण्डुलिपि शब्द पर्याप्त प्रचलित है। सामाजिक पत्र को देखन स स्पष्ट नहीं होता कि इसका पट भ्रम बहुत हा गया।

पाण्डुलिपि म स्पष्ट ही दो शब्द हैं पाण्डु और लिपि। पाण्डु का भ्रम इस सदम म सफूर्न है। चिचारणीय यह है कि सफूर्न लिपि स हस्तलिखित प्रथा का क्या सम्बन्ध ? हस्तलिखित प्रथा म भी लिपि काली नीली लाल या हरी विसी भी रंग की हो पर सफूर्न तो नहीं ही होगी। किर हस्तलिखित प्रथा के लिए पाण्डुलिपि शब्द का प्रयोग बहुत ही रद्दस्यमय है।

बस्तुत 'पाण्डुलिपि' अपने यहाँ का पुराना शब्द है। इसका मूल भ्रम लिखा हुआ मसविदा या टाफ़न है। अपन यहाँ मसविदे पहले लकड़ी की पट्टी पर या सपाट परती पर लिख जात थे। भ्रतएव उनकी लिपि सफूर्न (पाण्डु) होती थी। इसी बारण उहे पाण्डुलिपि कहा जाता था। आधुनिक युग म गलती स इस शब्द का प्रयोग हस्तलिखित पोथी के लिए होने लगा, वही प्रयोग भव तक चला था रहा है। भ्रम कुछ लोगों को यह भ्रगुदि खटकने लगी है और इसके स्पान पर हस्तलेख पत्र का प्रयोग मायूसिष्ट के भ्रगुवाद रूप म बरने लगे हैं बिन्दु पाण्डुलिपि का प्रयोग वह नहीं हुआ है भ्रम होने की सभावना है।

पॉपलिन (Poplin)— एक कपड़ा। लटिन म एक पाँच है Papa जिसका भ्रम होता है बिंगप अर्थात् प्रमुख पादरी। इसका बिंगपण है Papal जिसका भ्रम है पोप या बिंगप का। Papal के आधार पर लटिन भाषा म पोप या बिंगप के अधीन कस्ते को papalina कहते थे। कास का एक बस्ता Avignon इस प्रकार का papalina या इसीलिए उसे papalina भी कहते थे। पापलिन कपड़ा सबप्रथम वही बना भ्रम उसे papalina नाम के आधार पर पापलिन कहा गया।

पिअनो (Piano)— मूल पाँच इतालवी भाषा का prinsoforte है। इतालवी भाषा म Piano e forte का भ्रम होता है कोमल (soft) और कठा

(loud)’। पिग्रानो के अविष्कर्ता क्रिस्टोफरि (Christofori) ने जब १७१०-११ में पिग्रानो वनाया तो उन्हें इस वाजे में यह विशेषता दिखाई पड़ी, अर्थात् इसकी आवाज ऊँची या तेज होने पर भी अमधुर या अकोमल नहीं होती। पिग्रानो शब्द उसी piano forte का सक्षिप्त रूप या इस युगम शब्द का प्रथम अर्थ है। इतालवी Piano का ग्रथ कोमल या वरावर है जो लैटिन शब्द planus से सबद्ध है।

पेन्सिल (Pencil)—हिंदी में यह शब्द अग्रेजी से आया है। इसका मूल शब्द लैटिन का penicilum है, जिसका अर्थ ‘छोटी पूँछ’ होता है। असल में योरोप में प्राचीन काल में पख की कलम से लिखने के साथ-साथ रँगने के बुरुश की तरह के छोटे बुरुश से भी लिखा जाता था।। यह बुरुश ‘पूँछ’ का वनता था जो ‘छोटी पूँछ’ सा दिखाई पड़ता था। इसीलिए उसे penicillum या ‘छोटी पूँछ’ कहते थे। यह ‘पख का ब्रश’ पेन से तेज चलता था। बाद में जब इसके स्थान पर ‘पेन्सिल’ का प्रयोग हुआ तो, तो ‘पेन्सिल’ को यही नाम दे दिया गया। यद्यपि ‘पेन्सिल’ का ‘छोटी पूँछ’ से कोई सबब नहीं है। इस तरह, पेन्सिल का मूल ग्रथ है ‘छोटी पूँछ’।

पेन (Pen)—‘पेन’ का सबध लैटिन penna से है, जिसका अर्थ पख होता है। इसका अर्थ यह है कि पहले पख की कलम से लिखा जाता था। पुरानी तस्वीरों में पख की कलम प्राय मिलती है। बाद में लकड़ी और लोहे की कलम बनने लगी, तब भी यही नाम चलता रहा।

पैंट (Pants)—मूलत यह शब्द ग्रीक भाषा का Patnaleon है जिसका अर्थ ‘सब शेर’ (all lion) होता है। इतालवी भाषा में एक समय में यह व्यक्ति का नाम होता था। वेनिस के सत पैतालियन (Saint Pantaleone) का नाम भी इसी पर आधारित था। उनके कारण यह नाम और भी प्रचलित हुआ। प्रचलन का परिणाम यह हुआ कि इतने बड़े संत का पवित्र नाम धीरे-धीरे पतित होने लगा और इतालवी भाषा की कामदियो (comedies) में पैतालोन (Pantalone) नाम का एक विदूपक या जोकर की तरह का पात्र होने लगा। इस पात्र की वेषभूषा भी प्राय निश्चित सी हो गई। एक ऐसा पात्र की वेषभूषा भी प्राय निश्चित सी हो गई। एक ऐसा पात्र जो धुटने के नीचे चुम्त होता था, तथा जॉध के ऊपर उभरा हुआ’ पैर में स्लीपर और आँखों पर चश्मा आदि। इस पात्र का जोकर के रूप में इतना प्रचार हुआ कि धीरे-धीरे इसके नाम का Pantaloon रूप में प्रयोग इतालवी में जोकर या विदूपक के अर्थ में होने लगा। वहाँ के

गढ़ों का अध्ययन

सामाये (an army force of four columns) तो भा ही उसने रेहियो स
कहा कि विं इन चार के प्रतिरक्षा एक पाँचरा (fifth column) भी है जो
पश्चात म भीतर है। उससा भाग्य उन स्पष्ट रीय युक्त बाम बरन वाला से
या जो नगर म थे। तबवा निसी दा या नगर म बाहरी शबू की ओर स
युक्तचर वा वाय बरन वाल या ताढ़फां बरने वाल के लिए इस fifth
columnist या पचमार्थी का प्रयोग होता है।

पाण्डुलिपि—हस्तलिपिन शब्द के लिए हिन्दी म पाण्डुलिपि का
पर्यान प्रचलित है। सामायन शब्द भी देखन स स्पष्ट नहीं होता कि इसक
यह प्रथम से हो गया।

पाण्डुलिपि' म स्पष्ट ही दो शब्द हैं पाण्डु और लिपि। पाण्डु का
प्रथम इस सद्दम म सहेज है। विचारणों यह है कि सफ़ूर लिपि स हस्त
लिपित प्रथम का क्या सम्बन्ध? हस्तलिपित प्रथम म भी लिपि काली नीली
लाल या हरी बिसी भी रंग की हो। पर सफ़ूर तो नहीं ही होगी। किर
हस्तलिपित प्रथम के लिए पाण्डुलिपि शब्द का प्रयोग बहुत ही रहस्यमय है।

वस्तुतः पाण्डुलिपि भ्रमन यहां का पुराना शब्द है। इसका मूल अर्थ
लिखा हुआ मसविदा या टाप्ट है। अफन यहां मसविदे पहले लकड़ी की
पट्टी पर या सपाट धरती पर लटिया स लिख जात थे। अतएव उनको लिखि
सफ़ूर (पाण्ड) होती थी। इसी कारण उह पाण्डुलिपि कहा जाता था।
भाषुनिक युग म गलती स इस शब्द का प्रयोग हस्तलिपित पोथी के लिए होते
लगा, वही प्रयोग घब तक चला था रहा है। घब कुछ लोगों को यह अनुदि
खटकने लगी है और इसके स्पनान पर हस्तलेख शब्द का प्रयोग म यूस्तिक्षण
के भ्रमुवाद स्पष्ट म बरने लगे हैं जिन्हें पाण्डुलिपि का प्रयोग कम नहीं हुआ है और
न होने की सभावना है।

पोपलिन (Populin)—एक कपड़ा। लटिन म एक शब्द है Papa जिसका
अर्थ होता है विवाप अर्थात् प्रमुख पादरी। इससे विशेषण है Papal
जिसका अर्थ है पोप या विवाप का। Papal के आधार पर लटिन भाषा म
पोप या विवाप के अधीन बस्ते को papalina कहते थे। कास का एक बस्ता
Avignon इस प्रकार का papalina या इसीलिए उसे Pipalina भी कहते थे।
पापलिन बपड़ा सवप्रथम वही बना मत उसे papalina नाम के आधार पर
पापलिन कहा गया।

पियानो (Piano)—मूल शब्द इतालवी भाषा का Pianoforte है।
इतालवी भाषा म Piano e fronte का मर्य होता है कोमल (soft) और ऊर्जा

(loud)'। पिग्रानो के अविष्कर्ता क्रिस्टोफरि (Christofori) ने जब १७१०-११ में पिग्रानो बनाया तो उन्हे इस वाजे में यह विशेषता दिखाई पड़ी, अर्थात् इसकी आवाज ऊँची या तेज होने पर भी अमवुर या अकोमल नहीं होती। पिग्रानो शब्द उसी piano forte का सक्षिप्त रूप या इस युगम शब्द का प्रथम अर्थ है। इतालवी Piano का अर्थ कोमल या वरावर है जो लैटिन शब्द planus से सबद्ध है।

पेन्सिल (Pencil)—हिंदी में यह शब्द अग्रेजी से आया है। इसका मूल शब्द लैटिन का penicilum है, जिसका अर्थ 'छोटी पूँछ' होता है। असल में योरोप में प्राचीन काल में पख की कलम से लिखने के साथ-साथ रँगने के बुरुश की तरह के छोटे बुरुश से भी लिखा जाता था।। यह बुरुश 'पूँछ' का बनता था जो 'छोटी पूँछ' सा दिखाई पड़ता था। इसीलिए उसे penicillum या 'छोटी पूँछ' कहते थे। यह 'पख का ब्रश' पेन से तेज चलता था। बाद में जब इसके स्थान पर 'पेन्सिल' का प्रयोग हुआ तो, तो 'पेन्सिल' को यही नाम दे दिया गया। यद्यपि 'पेन्सिल' का 'छोटी पूँछ' से कोई संबंध नहीं है। इस तरह, पेन्सिल का मूल अर्थ है 'छोटी पूँछ'।

पेन (Pen)—'पेन' का संबंध लैटिन penna से है, जिसका अर्थ पख होता है। इसका अर्थ यह है कि पहले पख की कलम से लिखा जाता था। पुरानी तस्वीरों में पख की कलम प्रायः मिलती है। बाद में लकड़ी और लोहे की कलम बनने लगी, तब भी यही नाम चलता रहा।

पैट (Pants)—मूलत यह शब्द ग्रीक भाषा का Patnaleon है जिसका अर्थ 'सब जौर' (all lion) होता है। इतालवी भाषा में एक समय में यह व्यक्ति का नाम होता था। वेनिस के सत पैतालियन (Saint Pantaleone) का नाम भी इसी पर आधारित था। उनके कारण यह नाम और भी प्रचलित हुआ। प्रचलन का परिणाम यह हुआ कि इनने बड़े सत का पवित्र नाम धीरे-धीरे पतित होने लगा और इतालवी भाषा की कामदियों (comedies) में पैतालोन (Pantolone) नाम का एक विदूपक या जोकर की तरह का पात्र होने लगा। इस पात्र की वेषभूषा भी प्रायः निश्चित सी हो गई। एक ऐसा पायजामा जो घुटने के नीचे चुम्त होता था, तथा जाँध के ऊपर उभरा हुआ' पैर में स्लीपर और आँखों पर चश्मा आदि। इस पात्र का जोकर के रूप में इतना प्रचार हुआ कि धीरे-धीरे इसके नाम का Pantaloons रूप में प्रयोग इतालवी में जोकर या विदूपक के अर्थ में होने लगा। वहाँ के

शब्दों का अध्ययन

तत्कालीन जोकरों की सबप्रमुख विशेषता यह पायजामा थी यह Pantaloons का बहुचरन है Pantaloons इस प्रकार के पायजामे के लिए प्रचलित हो गया। इगलड में इटली से यह शब्द १६वीं सदी के आसपास उस पायजाम के भ्रम में आया और यह इस शब्द का सोभाग्य है कि जोकरों की पोशाक होत हुआ भी शिष्ट लोगों द्वारा प्रयुक्त होने लगा। आज का मध्य जी Pant's शब्द pantaloons का ही संक्षिप्त है। हिन्दी पतलून का सबध भी इसी pantaloons से है।

पम्फलेट (Pamphlet)—इमका मूल है थ्रीक शब्द pamphilus जिसका अर्थ है वह जिसे सभी प्यार या पम्फलेट कोई भी पसंद नहीं करता। १२वीं सदी में एक लटिन कविता को लोगों ने बहुत पसंद किया और इसी पसंद के माध्यार पर उस pamphlet कहा। यह थोटी पुस्तक के हैं मध्ये। बाद में इस प्रकार की हर पतली पुस्तक pamphlet कहनाही। इसी का विकसित है pamphlet (इत्तहार या मूर्चना आदि हैं वन गया जो विशेष प्रकार की पतली पुस्तकों होने लगा। इस तरह पम्फलेट मूलतः एक सबप्रिय कविता का लोग द्वारा दिया गया नाम है।

पराग्राफ (paragraph)—पराग्राफ का मूल अर्थ है एक थोटा विहँ। भारत की तरह ही यूरोप में भी प्राचीन वाल में पुस्तकाम वाक्य के सभी शब्द एक में मिलाकर लिखे जाते थे। पूर्णविराम अवधिविराम या पराग्राफ जमा कोइ विभाजक चिह्न या स्पष्ट बही नहीं होता था। पाठदा को जब इस नृटि के कारण कठिनाई का मनुभव होने लगा तो लतरा ने—मवश्यम थ्रीक लतरको ने—उस पक्षित के बगल में या नीचे एक थोटा तिरछा निशान लगाना शुरू किया, जहाँ से नए दिव्य या विषय के नए सुन या लाइट का शारभ होता था। ऐसे थोटे निरधे निशान का थ्रीक में paragraphos कहा गया। थ्रीक में para का अर्थ है के विनारे या बगूत में और graphos का अर्थ है लिखा हुआ। पहले यह निशान विनार या बगूत में बनाया गया था वहाँ इसीलिए इस यह नाम लिया गया। बाद में जहाँ यह निशान होता था वहाँ से आगे की सामग्री बनने पक्षित से निशान जान लगी और यह नाम इस प्रकार लग लियी जान वाली सामग्री के लिए प्रयुक्त होने लगा। मध्य या paragraphos सटिन paragraphous, दोचं paragraphic का ही विभागित पहले !

पोलो (polo)—घोड़े पर सवार होकर खेला जाने वाला हाँकी की तरह का एक खेल। पोलो खेल का प्रारंभ कहाँ हुआ, इस संबन्ध में विवाद है। कुछ विद्वान् इसका जन्म उत्तरी भारत में मानते हैं। किन्तु कुछ लोग फारस, चीन या तिब्बत आदि का भी नाम इस दृष्टि से लेते हैं। सभावना यही है कि इसका मूल स्थान उत्तरी भारत है। ‘पोलो’ शब्द मूलत कहाँ का है इस सबध में भी मैतक्य नहीं है। कुछ लोग इसे मूलतः तिब्बती शब्द मानते हैं। तिब्बती पुलु (pulu) का अर्थ गेंद होता है। कुछ अन्य लोग इसे सिध-सम्यता की भाषा का मानते हैं। इस रूप में इसे द्रविड शब्द माना जा सकता है। अधिकांश लोग इसे ‘वाल्टी’ भाषा का मानते हैं। हूणों की भाषा से भी इसका सबव जोड़ा गया है। सभावना यही है कि यह शब्द वाल्टी भाषा का था तथा उत्तर भारत एवं तिब्बत आदि में इसका प्रचार था और इसका मूल अर्थ मात्र गेंद था। भारत से यह खेल १८७१ में इंग्लैंड पहुँचा। चीन जापान आदि में भी इसका प्रचार है।

प्लेग (plague)—ताजन। मूलतः इस शब्द का अर्थ है ‘मुक्का’ या ‘धक्का’। आरभ में यह महामारी चिकित्सकों के लिए एक ‘ज्ञवर्दस्त धक्का’ थी क्योंकि इसका सामना करना अत्यन्त कठिन था, इसीलिए इसे ‘प्लेग’ कहा गया। मूल शब्द ग्रीक का *plaga* है जो लैटिन में भी यही है। अग्रेजी में फेच से होते आया है। पहले प्लेग, प्लेग के अर्थ में प्रयुक्त न होकर महामारी का पर्याय था। इसके अन्तर्गत हैं जा आदि कई अन्य वीमारियाँ भी थीं। इसका प्राचीनतम उल्लेख ४३० ई० पू० से भी पूर्व का है। प्लेग वीमारी का मूल स्थान पहले अफ्रीका माना जाता था किन्तु नई खोजोंने यह सिद्ध कर दिया है कि यह अन्य देशों में भी था।

फार्म या फार्म (Farm)—बहुत बड़ा खेत या सेत। मूलत, यह लैटिन शब्द *firmus* है जिसका अर्थ है निश्चित या ठीक करना। इसी से लैटिन में इसका प्रयोग ‘किसी जमीन के लिए निश्चित की गई लगान या मालगुजारी’ के लिए होता था। यह लैटिन *firma* ही फ्रासीसी में होते अग्रेजी में ‘फार्म’ हो गया। बाद में १६ वीं सदी में इसका अर्थ हो गया जमीन का वह टुकड़ा जिसके लिए लगान निश्चित की गई हो। इस प्रकार जमीन के टुकड़े के लिए इसके प्रयोग ने धीरे-धीरे इसे खेत आदि बना दिया। इस तरह ‘फार्म’ मूलत ‘फार्म’ की लगान है। पैसा जमीन बन गया।

फिरंगी—इस शब्द का यो तो हिन्दी में कई अर्थों में प्रयोग होता है, किन्तु इसका अधिक प्रचलित अर्थ गोरा या यूरोपनिवासी है। पहले इनका प्रयोग

शब्दों का अध्ययन

पुतगाली लोगों के लिए भी होता था। ह्वास्टन यादि कुछ विद्वानों ने इस शब्द को मलयालम शब्द परगी से निकला माना था जिन्हें यह मत ग्रामायं तिर्द हो चुका है। मूलतः यह शब्द लatin *Francus* तथा मोल्ड हाई जमन *Franco* है जिसका मूल अर्थ एक प्रवार का माला होता था। प्राचीन ग्रंथों में *franci* भी यही शब्द है। इस हिंदियार के लोगों में विशेष दक्षता के कारण वाद में एक जाति का नाम *Frank* या *Franc* पड़ गया। इन लोगों के स्थान में वोनिया (*Franconia*) का नाम भी इही के नाम के आधार पर पड़ा। इही कक्ष के लोगों ने इठी सभी में गाल पर ग्रामरण बर उस जीत लिया जाति वा बोधव यह शब्द पासीसी तथा स्वनिना होत ५०० ई० से पूर्व ही अरबी तथा फारसी में पहुँचा। अरबी में इसके इफरजी किरजी तथा फारसी में करगी किररी आनि इसके मिलते हैं। वही स धीरे धीर यह शब्द एशिया के प्रनेक दशा में प्रचलित हो गया। जस चीजीं पुलग तिर्ती वेताग हिन्दी किररी तथा तमिल और सिंहली 'परगी' आनि। ऐसा मनुमान लगता है कि एशिया में यह शब्द पश्चिमा जाति के अथ में आया। (पश्चजी में *Frank* शब्द वा एक अर्थ भी पश्चिमी जाति है) इसीलिए भारत यादि में पश्चिम में जब पुतगाली भाए तो उह इस नाम से पुकारा गया। किररी शब्द भारत में प्राय भारभ से ही हीनार्थ रहा है। इस प्रवार मूलतः यह शब्द हिंदियार विशेष के लोगों में दक्ष एक यूरोपीय जाति है।

यह शब्द हमारे जन जीवन में पर कर गया था और हिन्दी प्रदेश के प्रनेक धारा के में इसका खुलकर प्रयोग हुआ है।

देसवा के कङ्कलस वरवाद ई किरणिया

फूँड—इस 'पूँ' का अर्थ गदा, वेगजर अस्तील तथा बर्गा यादि होता है। इसकी व्युत्पत्ति तरिख है। हिंदी शब्द सागर में इसकी व्युत्पत्ति सस्तृत पव+पट से मानी गई है। पव का अर्थ पवित्र बरने वाला होता है। इसका सबध सस्तृत धातु पूँ से है जिसका अर्थ पवित्र बरना या शोपना है। शब्द सागर में इस व्युत्पत्ति में 'पव' का अर्थ गोवर लिया गया है। यह 'पापन' इसलिए कि गोवर भी भूमि यादि को पवित्र करने वाला है। दूसरे 'पूँ' पट का अर्थ गडना है। इस प्रकार गोवर गडन से 'फूँड' का भाव निष्ठा माना गया है। कहता न होगा कि यह कल्पना द्राविड़ प्राणायाम है। ध्वनि जी हट्टि से भी पव+पट से फूँड का भाव निकलता ग्रामायन्सा है। इसकी दूसरी व्युत्पत्ति रामचंद्र वर्मा के प्रामाणिक हिन्दी कोंग में दी गई है। उनके मनुसार 'फूँड' शब्द धनुकरणात्मक है।

मेरा अनुमान यह है कि 'फूहड़' शब्द का सबव उर्दू तथा फारसी में प्रचलित शब्द 'फुहश' से है। हिन्दी में यह शब्द फारसी से आया है पर मूलत यह अरबी भाषा का शब्द है। अरबी की एक वातु है 'फे-हे-जीन' जिसका अर्थ है 'वहुत बुरा होना'। इसी आधार पर अरबी में 'फुहश' शब्द का अर्थ 'वहुत बुरा' या 'वहुत बुरे शब्द वाला' होता है।

फोटो (photo)—इस ग्रीक उपसर्ग का अर्थ है 'प्रकाश'। इसे 'ग्राफ' (निखना) में जोड़कर शब्द बना 'फोटोग्राफ' जिसका अर्थ हुआ 'प्रकाश से लिखना'। कैमरा से बने चित्र प्रकाश से लिखे या बने रहते हैं अत वे फोटो-ग्राफ कहलाए। हिन्दी का 'फोटो' (चित्र, तस्वीर) शब्द अग्रेजी 'फोटोग्राफ' का सक्षिप्त रूप है। अग्रेजी में अकेले 'फोटो' शब्द प्राय नहीं चलता।

बैंगला—बँगला विशेष प्रकार के मकान को कहते हैं जो प्रायः एक मजिला होता है तथा जिसके चारों ओर बाग होता है। इस प्रकार के मकान (प्राय मिट्टी की दीवाल और फूस की छत के) बगाल में बहुत पहले से बनते आ रहे हैं। वही की देखा-देखी मुगल काल में उत्तर भारत में भी ऐसे मकान बेगमो के लिए बनने लगे थे। अग्रेज जव भारत में आए तो ये भारतीय जलवायु के अनुकूल ये मकान उन्हे भी आकर्षित किए विना न रह सके। परिणाम यह हुआ कि ऐसे मकानों का प्रचार बहुत बढ़ा। अग्रेजी भाषा में १७वीं सदी में बैंगलो (bungalow) शब्द का प्रयोग शुरू हुआ जो हिन्दी आदि अन्य भारतीय भाषाओं में 'बँगला' या 'बागला' आदि रूपों में मिलता है। स्पष्ट ही इस शब्द का सबध, इसके मूल स्थान 'बगाल' या 'बँगला' से है। 'बँगला' में 'बग' तो इस देश का पुराना नाम है (अग्र बंग आदि) और 'ला' सबध-कारक की विभक्ति है। अर्थात् 'बगला' का मूल अर्थ है 'बग का'।

वकरीद—'वकरीद' मुसलमानों का एक त्योहार (१०वीं जिल हिज्जा को) है। कहा जाता है कि हजरत इब्राहिम ने खुदा के नाम पर अपने लड़के हजरत इस्माइल (मुन्तियो के अनुसार) या इशाक (चियो के अनुसार) की कुर्बानी कर दी थी। उसी की यादगार में अब तक मुसलमान लोग कुर्बानी करते हैं। कुर्बानी अपनी सबसे प्यारी चीज की करनी चाहिए पर उसके बदले पशुओं की जाती है।

इस त्योहार का पुराना नाम 'ईदुल अजहा' है। 'ईद' का अर्थ है बार-वार आने वाली खुशी या त्योहार और 'अजहा' का अर्थ है कुर्बानी का जानवर या कुर्बानी। इस प्रकार 'ईदुल अजहा' का अर्थ है 'कुर्बानी का त्योहार'।

"वने का अध्ययन

सईटनपुरी ने भी 'वेलाम पे' से इसे बना माना है। उनके अनुसार इस पातु
वा अथ 'दुबल करा' है और इस आवार पर बला का मूर अर्थ में वह गम है।
जो जिसमें दुबला कर दे। इन दोनों में दूगरा ही बताचित ठीक है।

बहादुर—बहादुर वा अथ चीर है। यितु मूलत इसमें चीर का कोई
भाव नहीं है। वहा फारसी "द" है और इसका अथ मूल्य या कीमत होता
है। दुर एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ मोती है। यह शब्द फारसी में दु
से दुर हो गया। बहादुर इन दो शब्दों (बहा+दुर) के योग से बना अर्थ
इसका मूल अथ है मोती की सी कीमत वाला या बेश कीमत। लगता है
कि मध्ययुग में लड़ाई में तेज लोगों की विशेष इच्छत होती थी कि अत उहें यह
छिताब दिया जाता या और बाद में उनके गुण (वीरता) के लिए इसका प्रयोग
प्रयोग भारत में भी होता रहा है।

बाइविल—बाइविल शब्द का मूर आपार विवास शब्द है। पेपीरम
जिससे पहले पेपर बनता या बी भीतरी धातु को श्रीक भाषा में विवलास
बहते थे। विवलास लिखने के बाद आता या। इसी से पुस्तकें बनती थीं।
अत इसके आगार पर यीक शब्द विवलिया बना। विवलिया "द" वा अथ
"पुस्तक" है। अपनी के विवलियोप्रभी शब्द में यह "द" आज भी सुरक्षित
है। घागे चतुर अच्छ प्रकार के बागव बन यितु अवविश्वास तथा प्राचीन
वादिता के बारए अम प्रथो के लिए पविरस की भीतरी धातु विवलास
का ही प्रथोग होना रहा। जस भारत में मध्य लिखने के लिए आज भी लोग
भोजपुर ही पस्त बरते हैं। इस प्रकार विवलिया "द" वा अथ सामाज
पुस्तक स हटपर अम प्रथ हो गया। पिर धीरे धीरे निमटकर एक विविट
अम प्रथ के लिए यह रुढ़ हो गया और सटिन स हाता हुआ कोच तथा प्रप्रशी
मादि बाइविल" तथा जमन में बाइवेल हो गया।

बॉइकॉट (boycott)—सरतना यानी उन मविभेदी चीजों का बहिकार
या बाइकॉट का आन्दोलन चला या। उन युग के अन्त हिन्दी उपयामों में
इस शब्द का प्रयोग मिलता है। 'बॉइकॉट' वा अथ है बहिकार। इनिहाय
बतलाना है कि मध्ययुग नजा द्वारा मुमग्नित बहिकार बन्दन चालन वनिष्यम
वायप्रार्थना के एक मञ्जन का हृषा या इनीतिए इही का नाम (बॉयकॉट) का
आगार पर बहिकार करने के अथ में बॉयकॉट "द" प्रथ रही न चल पड़ा।
बॉयकॉट साहब यत ग्रांड बन स्टट के यो (यायरलड) प्रेस में कर्म

(land agent) थे। १८८० में इन्होंने वहाँ लगान बहुत बढ़ा दी। परिणामतः वहाँ के सभी लोग इनके विरुद्ध हो गए। दुकानदारों ने इन्हे सामान बेचना बन्द कर दिया, घोबी ने कपड़ा घोना, नाई ने हजामत बनाना आदि। अत मे जब ये परेगान हो गए तो चुपचाप डग्लैड लैट आए। इसका समाचार वहाँ के समाचार पत्रों में मुख्यपृष्ठ पर छपा और उसी दिन से इनका नाम सगठित वहिकार करने के अर्थ में अंग्रेजी भाषा की सम्पत्ति बन गया। सन् है, कभी-कभी बुरा करने का परिणाम भी अच्छा निकल जाता है। अत्याचार करके वॉयकर्ट महोदय अमर हो गए। वदनाम अगर होगे तो क्या नाम न होगा?

वावर्ची—वावर्ची रसोईये को कहते हैं। यह शब्द फारसी का है और वहाँ इसका रूप 'वावर्ची' है। 'वावर' का फारसी मे 'विश्वास' या 'यकीन' अर्थ होता है और वावर्ची वह है जिसका विश्वास किया जाय। इस प्रकार 'वावर्ची' शब्द का मूल अर्थ 'विश्वासपात्र' था और अब परिवर्तित होकर 'रसोइया' हो गया है। रहस्य यह है कि 'वावर्ची' आरभ मे उस 'अफसर' को कहते थे जो वादगाहों या बडे लोगों के रसोईघर का प्रबंधक होता था। उसका काम था कि भोजन तैयार होने पर उसे चख ले अर्थात् यह देख ले कि भोजन मे जाहर आदि तो नहीं है और तब अपने स्वामी को खिलावे। इस रूप मे वह अफसर मालिक का विश्वासपात्र होता था इसीलिए उसे 'वावर्ची' कहा गया। लगता है कि वाद मे कुछ सामान्य स्तर के लोगों में इस शब्द का प्रचार हुआ और वे लोग रसोइया अतग और विश्वासपात्र अफसर अलग नहीं रख सकते थे, अत उनके यहाँ एक ही व्यक्ति दोनों कार्य करने लगा, इस प्रकार वावर्ची मे खाना पकाने वाले का भाव आ गया। सच है महिमा घटी समुद्र की रावण वसा पड़ोस। वावर्ची शब्द को कुछ कम घनी या सामान्य लोगों के सपर्क मे आने पर 'अफसर' से 'खाना पकाने वाला महाराज' बनना पड़ा।

विगुल (bugle)—मूलतः यह शब्द लैटिन का *buculus* है जिसका अर्थ या 'छोटा बैल'। फैच में यह शब्द परिवर्तित होकर *bugle* हो गया। और वहाँ से अंग्रेजी मे आया। उस समय बैल आदि के सींग के विगुल बनते थे (तुलनीय है सिंहनाद, सिंहा, शृंगी आदि शब्द) अत विगुल के लिए *bugle-horn* (=बैल-सींग) का प्रयोग होने लगा। वाद मे 'हार्न' शब्द छूट गया और विगुल के अर्थ मे *bugle* ही रह गया। इस प्रकार विगुल का अर्थ है बैल आदि। अंग्रेजी के वृत्त कम शब्दों से हिन्दी मे मुहावरे बने हैं। विगुल से 'विगुल

शब्दों का अध्ययन

सर्दियाँ पुरी ने भी वे लागे से इस बना माना है। उनके अनुसार इस धारु
वा अथ दुवन बरना' है और इस आधार पर बला का मूल अद म वह गम है
जो जिसम बो दुबला कर दे। इन दोनों म इसम ही क्षमित ठीक है।

बहादुर—बहादुर का अथ वीर है। किन्तु मूलत इसम वीर का कोई
भाव नही है। यहा फारसी शब्द है और इसका अथ मूल्य या कीमत होता
है। दुरं एक अरबी शब्द है जिसका अथ मोनी है। यह शब्द फारसी म
सं दुर हो गया बहादुर इन दो शब्दों (बहा+दुर) के योग से बना।
इसका मूल अथ है मोनी की सी कीमत बाला या वेरा कीमत। लगता
वि मध्ययुग म लड़ाइ म तज लोगों की विशेष इज़जत होती थी अत उहाँ
तिताव दिया जाता था और बाद म उनके गुण (वीरता) के लिए इसका प्रयोग
प्रयोग भारत म भी होता रहा है।

बाइबिल—बाइरिन शब्द का मूल आधार विवलास शब्द है। पेरीस
जिसस पहल पेपर बनता था की भीतरी छाल को ग्रीक भाषा मे विवलास
वहते थ। विवलास लिखने के नाम आता था। इसी से पुस्तकें बनती थीं।
अत इसके आधार पर ग्रीक शब्द विवलिया बना। विवलिया शब्द का अथ
पुस्तक है। अग्रजी के 'विवलियाप्रभो' शब्द म यह ग्रन्थ आज भी सुरक्षित
है। अग्रजी चलकर अच्छे प्रकार के बागज बन किन्तु अवविद्वास तथा प्राचीन
वादिता के कारण घम ग्रामों के लिए परिस की भीतरी छाल विवलास
का ही प्रयोग होना रहा जस भारत म मन लिखने के लिए आज भी लोग
भोजप्रज्ञ ही पसंद करते हैं। इन प्रकार विवलिया ग्रन्थ का अथ सामाजिक
पुस्तक रा हटकर घम ग्राम हो गया। फिर थोरे थोरे निमटकर एक विगिट
घम ग्राम के लिए यह रुद्ध हो गया और लटिन स होना हुमा फौंच तथा अप्रसी
आदि 'बाइबिल' तथा जमन म बाइबन हो गया।

बाईकॉट (boycott)—स्वतंत्रता आन्दोलन मविनेशी चीजों का बहिरार
या बाईकॉट का आन्दोलन चला था। उम युग के अन्त हि-नी उपयामो म
इस शब्द का प्रयोग मिलता है। 'बाईकॉट' का अथ है बहिष्कार। इतिहाय
बतलाना है कि सवप्रथम प्रजा द्वारा सुमणित बहिष्कार कर्णेन चालन विनियम
वायकॉट नाम के एवं सउजन का हुमा था इतीहाय इही के नाम (वायकॉट) का
आधार पर बहिष्कार करने के अथ म बॉयकॉट शब्द भ्रमेकी म चल पड़ा।
बायकॉट साहव भ्रम स्टट के मेषो (भायरलड) प्रणा म बारिन्दा

(land agent) थे। १८८० में इन्होंने वहाँ लगान बहुत बढ़ा दी। परिणामत वहाँ के सभी लोग इनके विरुद्ध हो गए। दुकानदारों ने इन्हे सामान बेचना बन्द कर दिया, घोबी ने कपड़ा बोना, नाई ने हजामत बनाना आदि। अत मे जब ये परेशान हो गए तो चुपचाप डम्लैड लौट आए। इसका समाचार वहाँ के समाचार पत्रों में मुख्पृष्ठ पर छपा और उसी दिन से इनका नाम सगठित वहिष्कार करने के अर्थ में अग्रेजी भाषा की सम्पत्ति बन गया। सच है, कभी-कभी बुरा करने का परिणाम भी अच्छा निकल जाता है। अत्याचार करके बौयकां महोदय अमर हो गए। बदनाम अगर होगे तो क्या नाम न होगा?

वावर्ची—वावर्ची रसोइये को कहते हैं। यह शब्द फारसी का है और वहाँ इसका रूप 'वावर्ची' है। 'वावर' का फारसी में 'विश्वास' या 'यकीन' अर्थ होता है और वावर्ची वह है जिसका विश्वास किया जाय। इस प्रकार 'वावर्ची' शब्द का मूल अर्थ 'विश्वासपात्र' था और अब परिवर्तित होकर 'रसोइया' हो गया है। रहस्य यह है कि 'वावर्ची' आरभ में उस 'अफसर' को कहते थे जो बादशाहों या बड़े लोगों के रसोईघर का प्रबन्धक होता था। उसका काम था कि भोजन तैयार होने पर उसे खाले ले अर्थात् यह देख ले कि भोजन में जाहर आदि तो नहीं है और तब अपने स्वामी को खिलावे। इस रूप में वह अफसर मालिक का विश्वासपात्र होता था इसीलिए उसे 'वावर्ची' कहा गया। लगता है कि बाद में कुछ सामान्य स्तर के लोगों में इस शब्द का प्रचार हुआ और वे लोग रसोइया अलग और विश्वासपात्र अफसर अलग नहीं रख सकते थे, अत उनके यहाँ एक ही व्यक्ति दोनों कार्य करने लगा, इस प्रकार वावर्ची में साना पकाने वाले का भाव आ गया। सच है महिमा घटी समुद्र की रावण वसा पड़ोस। वावर्ची शब्द को कुछ कम धनी या सामान्य लोगों के सपर्क में आने पर 'अफसर' से 'खाना पकाने वाला महाराज' बनना पड़ा।

विगुल (bugle)—मूलत यह शब्द लैटिन का buculus है जिसका अर्थ यह 'छोटा बैल'। फ्रेंच में यह शब्द परिवर्तित होकर bugle हो गया। और वहाँ से अग्रेजी में आया। उस समय बैल आदि के सींग के विगुल बनते थे (तुलनीय है सिंहनाद, सिंहा, शृंगी आदि शब्द) प्रति विगुल के लिए bugle-horn (=बैल-सींग) का प्रयोग होने लगा। बाद में 'हानं' शब्द छूट गया और विगुल के अर्थ में bugle ही रह गया। इस प्रकार विगुल का अर्थ है बैल आदि। अग्रेजी के बहुत कम शब्दों से हिन्दी में मुहावरे बने हैं। विगुल से 'विगुल'

बजना या बिगुन बजाना' आदि स्वतंत्रता आदोलन के सिलसिले में विकसित हुए।

वित (bill)—मूर शब्द लटिन का bullia है जिसका अर्थ है 'मुहर'। याद में मुहर उगे सरकारी बाधाएँ भी भी bullia या bill कहने लगे। पोप की मुहर लगे बाधाएँ भी 'बुल' कहलाते थे। bill का हो bill हृषा जो अप्रेली में बिन हो गया। लगता है कि प्रारम्भ में जो दिल माते थे उन पर मुहर होती थी। अब सभी वित वित हैं जाहे मुहरमुक्त हो या बिना मुहर के।

बुखार—बुखार शब्द का प्रयोग हिन्दी में 'जबर' के अर्थ में होता है, पर यह व्यसना मूर अथ नहीं है। अरबी माफा में यह घातु है वे खेरे जिसका अर्थ 'आप निकालना' या 'धुर्वाँ निकालना' आदि होता है। 'बुखार' शब्द इसी से बना है और अरबी में इसका मूर अर्थ है 'माप'। भाषण में गर्भी होती है अन फारसी में इसका अर्थ गर्भी हो गया और जबर में गर्भी होती है अत आगे चल कर फारसी में ही बुखार 'बूर्ज' के लिए भी प्रयोग होने लगा। फारसी से ही यह शब्द हिन्दू उर्दू में आया यद्यपि इसके साथ अरबी फारसी के मान या गर्भी आदि के भाव नहीं आते। यह इस दा में बेकल जबर का ही समानार्थी है। ही दिल या जो या बुखार निकालना जह मुहावरों में 'बुखार में हृदय' के शब्द 'बूर्ज' दुर ग्राहि उड़ेगों का भी भाव भा गया है।

बहु (blank)—यह सुनकर किम भाइचय नहीं होगा कि बठने का 'बहु' और रूपया लने देने का कारबार करने वाला 'बहु'—ये दोनों ही मूरन एक शब्द हैं। बहु की मूर परम्परा इटनी स प्रारम्भ में होती है। बहु का बनिस नगर जिसी समय विश्व ध्यापार का केंद्र था। अब व्यापारियों की सूटूलियत के लिए बहुत से लोग सट माल के चोराहे पर बैंचों पर लिकने रखते बठने थे और सिक्के की अनला बनली करने थे। बैंच के लिए इटनियत नहीं 'बहु' है अत इनके बहु दिनपर एस रहे रहते थे बहु बहुताने थे। बाट में लोग बैंच के स्थान पर टेकुन या पट्ट का प्रयोग करने लगे तो बहु 'बहु' नाम उन मर्जा के लिए भी प्रयुक्त हुआ। इस प्रकार 'बहु' नहीं बहु वा अथ 'बैंच' स परिवर्तित होकर रूपय पके रखने वी बैंच तमा और मात्र चतुर रूपए पके रखने को मैत्र हो गया। और मात्र चतुर रूपय पके वी डेर को 'बहु' बहन नहों। और उमी स विकसित होकर 'बहु' शब्द म भावन वा अर्थ भागा।

अग्रेजी शब्द 'वेच' तथा इंटैलियन वेचवाची शब्द 'वैको' या 'वैक' ये दोनों ही वेचवाची ट्यूटनिक शब्द 'वैका' से निकले हैं। इस प्रकार 'वेच' और 'वैक' शब्द एक ही हैं। इन्हें देखकर कहावत याद आ जाती है—कहाँ राजा भोज और कहाँ भोजवा तेली। कहाँ तो आज के कारवार का प्रमुख साधन वैक और कहाँ वैठने की एक सामान्य सी चीज वेच। नामत मौलिक रूप से दोनों एक हैं किन्तु अर्थतः आज इनमें कितना अन्तर है!

बैडमिटन (Badminton)—एक खेल। डॉ० विल्फ्रेड फंक तथा कुछ अन्य लोगों के अनुसार यह खेल मूलतः भारत का है। यहाँ से यह खेल अग्रेजों के साथ १८७३ ई० में इंग्लैंड पहुंचा। व्यूफोर्ट के ड्यूक की एक छोटी स्टेट थी, जिसका नाम 'बैडमिटन' था। इसी में सर्वप्रथम इस खेल का प्रचार हुआ, जिसके आधार पर इस खेल का नाम 'बैडमिटन' पड़ गया।

मक्खीचूस—'मक्खीचूस' हिन्दी का एक प्रचलित शब्द है। इसका अर्थ कजूस है। इसका प्रयोग तो छोटे-बड़े सभी करते हैं, किन्तु बहुत कम लोगों ने यह सोचा होगा कि यह शब्द कजूस का समानार्थी कैसे बना। इस सर्वधं में लोक में एक बड़ी मनोरजक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि एक बार एक कजूस आदमी बाजार से दो पैसे का धी लेकर अपने घर को चला। रास्ते में सयोगवश धी में एक मक्खी गिर कर मर गई। घर आने पर उसने धी में पड़ी मक्खी देखी। वह सोचने लगा कि हो-न-हो यह मक्खी धी पीने आई थी और बहुत ज्यादा धी पीने के कारण ही मर गई। यह सोचकर उसे बड़ी चिंता हुई और वह किसी प्रकार अपना धी मक्खी से वापिस लेने की सोचने लगा। अन्त में उसे एक युक्ति सूझी। उसने उस मरी मक्खी को मुँह में डालकर खूब चूसा और जब उसे विश्वास हो गया कि उसका जितना धी मक्खी ने पीया रहा होगा, उसने चूस लिया, तब उसने मक्खी थूकी। कहते हैं तभी मैं कजूसों की सज्जा मक्खीचूस हो गई।

मर्सराइज़, मर्सराइज़ड (mercerised)—विशेष प्रकार का चमकदार और मज़बूत कपड़ा। इंग्लैंड में एक रंगरेज था, जिसका नाम था जॉन मर्सर (John mercer)। इसका जीवनकाल १७६१-१८६६ है। १८४४ में इसने कपड़े के सूत को एक विशेष प्रकार के मिश्रण (Solution of caustic alkali) में भिगोने का ऐसा तरीका निकाला जिससे उसका बना कपड़ा अधिक चमकदार तथा मज़बूत हो जाता था, साथ ही उसमें विभिन्न रंगों को समान्य कपड़ों की तुलना में अधिक अच्छी तरह पकड़ने की शक्ति आ जाती थी। उग रंगरेज

वजना या 'विगुल वजना' आदि स्वतंत्रता भादोलन के मिलसिते पर विवरित

विल (bill)—मूँह गट्ठ लटिन का bulla है जिसका अर्थ है 'मुहर'। चाद में मुहर लगे सरकारी वाणियों को भी bulla या bull बहने लगे। पोर्ट बो मुहर लगे वाणियां भी बुल कहते थे। bulli का हा bulli हृष्टा जो अप्रसी में विल हो गया। लगता है कि प्रारम्भ में जो विल थाते थे उन पर मुहर होनी थी। अब सभी विल विल हैं जाहे मुहर्युक्त हो या बिना मुहर के।

बुखार—बुखार दा का प्रयोग निवालना में ज्वर के धथ म होता है पर
यह इसका मूल धथ नहीं है। अरबी भाषा म यह यातु है 'वेन्म रे निमरा'
धय भाप निकलना या 'युर्दि निकलना' भाटि होता है। बुखार दा इसी
से बना है और अरबी म इसका मूल धय है 'भाप'। भाप म गर्भी होनी है यह
फारसी म इमका धय 'गर्भी हो गया थोर ज्वर' म गर्भी होने ही यह भाप है।
कर फारसी म ही बुखार दा का ज्वर के लिए भा प्रयोग होता लगा। फारसी
से ही यह "—" हित्रो उद्द म शाया यद्यपि इसके माय अरबी-फारसी के भार
या गर्भी भाटि के भाव नहीं आए। यह इस दा म चबल ज्वर का ही रामानार्थ
है। ही दिल या जी का बुखार निकलना जरूर मुहावरा म बुखार म हृद क
प्रोष, गोत्र दुष प्रादि उद्गरों का भी भाव आ गया है।

बँक (bank) — यह मुनाफ़ा विन था “चप तरी होगा कि बड़ी की बेंच” भी।
गप्पा सेन-दन वा कारवार बरने गता ‘बैंक’ — यह दोनों ही मूल शब्द हैं।
बैंक की मूल परम्परा इत्ता ग प्रारम्भ स हाता है। बहु का विनियोग नहार तिकी
समय विन्ड ब्लापार वा बैंक या। यह ब्लापारिया की सूनियन के लिए
बहुत स सोग सेट माह क छोराह पर बेंचों पर विनार गतार देंगा य और
गिक्के की घट्टाघट्टी बरा थ। बेंच के लिए सूनियन “हाँ” देंगा।
यह इनके बेंच विनार पर रग रहने पर बेंचों कहाँ बहाँ नाम उन में से
बेंच के रखान पर देखुन या मह का प्रयोग बरा सह तो बहु नाम उन में से
के लिए भी प्रयुक्त होया। एक दशार ‘बैंक’ एक का सब बेंच मौजूद होने की देख
होता रहन पर रगत का बेंच तथा और धाग चतार गतार गतार रगते की देख
होता रगत का बेंच तथा और धाग चतार गतार गतार का देख को बहु बहत नह। देख
उभी म रितियां होते हैं जैसे म धाव का प्रयोग करा।

अग्रेजी शब्द 'वैच' तथा इंग्लियन वेचवाची शब्द 'वैको' या 'वैक' ये दोनों ही वेचवाची ट्यूटनिक शब्द 'वैका' से निकले हैं। इस प्रकार 'वैच' और 'वैक' शब्द एक ही हैं। इन्हें देखकर कहावत याद आ जाती है—कहाँ राजा भोज और कहाँ भोजवा तेली। कहाँ तो आज के कारवार का प्रमुख साधन वैक और कहाँ वैठने की एक सामान्य सी चीज वैच। नामत मौलिक रूप से दोनों एक हैं किंतु अर्थत आज इनमें कितना अन्तर है!

बैडमिटन (Badminton)—एक खेल। डॉ० विलफ्रेड फंक तथा कुछ अन्य लोगों के अनुसार यह खेल मूलतः भारत का है। यहाँ से यह खेल अग्रेजों के साथ १८७३ ई० में इंग्लैंड पहुँचा। ब्यूफोर्ट के ड्यूक की एक छोटी स्टेट थी, जिसका नाम 'वैडमिटन' था। इसी में सर्वप्रथम इस खेल का प्रचार हुआ, जिसके आधार पर इस खेल का नाम 'बैडमिटन' पड़ गया।

मक्खीचूस—‘मक्खीचूस’ हिन्दी का एक प्रचलित शब्द है। इसका अर्थ कजूस है। इसका प्रयोग तो छोटे-बड़े सभी करते हैं, किन्तु बहुत कम लोगों ने यह सोचा होगा कि यह शब्द कजूस का समानार्थी कैसे बना। इस संबंध में लोक में एक बड़ी मनोरंजक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि एक बार एक कजूस आदमी बाजार से दो पैसे का धी लेकर अपने घर को चला। रास्ते में सयोगवश धी में एक मक्खी गिर कर मर गई। घर आने पर उसने धी में पड़ी मक्खी देखी। वह सोचने लगा कि हो-न-हो यह मक्खी धी पीने आई थी और बहुत ज्यादा धी पीने के कारण ही मर गई। यह सोचकर उसे बड़ी चिंता हुई और वह किसी प्रकार अपना धी मक्खी से वापिस लेने की सोचने लगा। अन्त में उसे एक युक्ति सूझी। उसने उम मरी मक्खी को मुँह से डालकर खूब चूसा और जब उसे विश्वास हो गया कि उसका जितना धी मक्खी ने पीया रहा होगा, उसने चूस लिया, तब उसने मक्खी यूकी। कहते हैं नभी में कजूसों की सजा मक्खीचूस हो गई।

मर्सराइज़, मर्सराइज़ड (mercerised)—विशेष प्रकार का चमकदार और मजबूत कपड़ा। इंग्लैंड में एक रगरेज था, जिसका नाम था जॉन मर्सर (John mercer)। इसका जीवनकाल १७६१-१८६६ है। १८४४ में उसने कपड़े के सूत को एक दिशेग प्रकार के मिश्रण (Solution of caustic alkali) में भिगोने का ऐसा तरीका निकाला जिससे उसका बना कपड़ा अधिक चमकदार तथा मजबूत हो जाता था, मात्र ही उसमें विभिन्न रंगों को सामान्य रूपों की तुलना में अधिक अच्छी तरह पकड़ने की जकिन आ जाती थी। जा रंगरेज

“बोर्डों का अध्ययन
वजना या विगुल बजाना” आदि स्वतंत्रता घादोलन के मिलसिले में वित्तिन हुए।

बिल (bill)—मूर शार्ट लटिन का bulla है जिसका अर्थ है ‘मुहर’। बाद म मुहर लगे सरकारी कागज को भी bulla या bull कहने लगे। पंची मुहर लगे कागज भी ‘बुल बहलाते थे’। bulla का ही bulla हुआ ज अब जी म बिल हो गया। लगता है वि प्रारम्भ म जो बिल पाते थे उन पर मुहर होनी थी। अब सभी बिल बिल हैं चाहे मुहरखुक्त हो या बिना

बुखार—बुखार शब्द का प्रयोग हिन्दी म ज्वर के अथ म होता है पर यह इसका मूल अथ नहीं है। अरबी भाषा म यह पातु है वे से जिसका अर्थ भाप निकलना या घबीं निकलना आदि होता है। बुखार शब्द इसी से बना है और अरबी म “सरा मूल अथ है भाप। भाप म गर्भी होती है परन फारसी म इसका अथ गर्भी हो गया और ज्वर म गर्भी होनी है यह भागे चर कर फारसी म ही बुखार शब्द का ज्वर के लिए भी प्रयोग होने लगा। फारसी स ही यह “— हिन्दी उड़ म आया यद्यपि इसके साथ अरबी फारसी के भाषा म गर्भी भादि के नाम नहीं आए। यह इस दशा म बेवल ज्वर का ही समानाधी है। हाँ दिल या जी या बुखार निकालना जरूर मुहावरों म बुखार म हृष्ण के नोंद गोर दुख आदि उद्दगों का भी भाव आ गया है।

बैन (bank)—यह मुनक्कर चिम आचय नहीं होगा कि बठने की बेच और रपया सन-देने का कारबाह करने वाला वह —ये दोनों ही मूलन एक गाँह हैं। वहाँ की मूल परम्परा अस्ती से प्रारम्भ स हानी है। वहाँ का वेनिए नगर चिमा समय विद्व गापार का बढ़ था। परन व्यापारिया की सूक्ष्मियत के निम्न बहुत स लोग सेंट माक क चौराह पर बेचा पर सिक्क रखार बठन पर और मिक्के को घन्सा-बन्दी करत थे। बेच के निम्न इट्टियन “— वरो है परन के बेच जिनपर पर रमे रहने पर वैको कह राने थे। वाँ म य सोा बेच क स्थान पर टेकुल या मठ का प्रयोग करन सग तो कही वहो नाम उन मठों के लिए भी प्रयुक्त हुआ। इन प्रकार वैको गाँव का अथ बेच म परिवर्तित हाँकर स्पष्ट पर रान का बेच तपा और धारा घनकर रान-उग्न राने की मेड हो गया। और धागे चारकर रान पर को देर को वैको बन गया। और उगी स विवित होकर बैक गाँव म धार का अथ धारा।

अग्रेजी शब्द 'वैंच' तथा इंग्लियन वेचवाची शब्द 'वैको' या 'वैक' ये दोनों ही वेचवाची ट्यूटनिक शब्द 'वैका' से निकले हैं। इस प्रकार 'वैंच' और 'वैक' शब्द एक ही है। इन्हें देखकर कहावत याद आ जाती है—कहाँ राजा भोज और कहाँ भोजवा तेली। कहाँ तो आज के कारबार का प्रमुख साधन वैक और कहाँ वैठने की एक सामान्य सी चीज वैंच। नामत मौलिक रूप से दोनों एक हैं किन्तु अर्थत आज इनमें कितना अन्तर है!

बैडमिटन (Badminton)—एक खेल। डॉ० विलफ्रेड फक तथा कुछ अन्य लोगों के अनुसार यह खेल मूलत भारत का है। यहाँ से यह खेल अंग्रेजों के साथ १८७३ ई० में इंग्लैंड पहुँचा। ब्यूफोर्ट के ड्यूक की एक छोटी स्टेट थी, जिसका नाम 'बैडमिटन' था। इसी में सर्वप्रथम इस खेल का प्रचार हुआ, जिसके आधार पर इस खेल का नाम 'बैडमिटन' पड़ गया।

मक्खीचूस—'मक्खीचूस' हिन्दी का एक प्रचलित शब्द है। इसका अर्थ कजूस है। इसका प्रयोग तो छोटे-बड़े सभी करते हैं, किन्तु बहुत कम लोगों ने यह सोचा होगा कि यह शब्द कंजूस का समानार्थी कैसे बना। इस सर्वांग में लोक में एक बड़ी मनोरजक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि एक बार एक कंजूस आदमी बाजार से दो पैसे का धी लेकर अपने घर को चला। रास्ते में सयोगवश धी में एक मक्खी गिर कर मर गई। घर आने पर उसने धी में पड़ी मक्खी देखी। वह सोचने लगा कि हो-न-हो यह मक्खी धी पीने आई थी और बहुत ज्यादा धी पीने के कारण ही मर गई। यह सोचकर उसे बड़ी चिंता हुई और वह किसी प्रकार अपना धी मक्खी से वापिस लेने की सोचने लगा। अन्त में उसे एक युक्ति सूझी। उसने उस मरी मक्खी को मुँह से डालकर खूब चूसा और जब उसे विश्वास हो गया कि उसका जितना धी मक्खी ने पीया रहा होगा, उसने चूस लिया, तब उसने मक्खी थूकी। कहते हैं तभी से कंजूसों की सज्जा मक्खीचूस हो गई।

मर्सराइज़, मर्सराइज़ड (mercerised)—विशेष प्रकार का चमकदार और मज़बूत कपड़ा। इंग्लैंड में एक रगरेज था, जिसका नाम था जॉन मर्सर (John mercer)। इसका जीवनकाल १७६१-१८६६ है। १८४४ में इसने कपड़े के सूत को एक विशेष प्रकार के मिश्रण (Solution of caustic alkali) में भिगोने का ऐसा तरीका निकाला जिससे उसका बना कपड़ा अधिक चमकदार तथा मज़बूत हो जाता था, साथ ही उसमें विभिन्न रगों को समान्य कपड़ों की तुलना में अधिक अच्छी तरह पकड़ने की शक्ति आ जाती थी। इस रगरेज

शब्दों का अ।

कि भारतीय भाषाओं के इन देशों की भाषाओं से तथा इन देशों की भाषा
ने भारतीय भाषाओं से शब्द लिए हैं।

प्रीक में

सहृदय या उससे विकसित पाली या प्राकृत भाषाओं से जाकर श्रीक भाषा
में प्रयुक्त होने वाले "अ" मुख्यत तीन प्रकार के हैं पहले के अन्तर्गत पौराणिक
और ऐतिहासिक (व्यक्तिया व्यवहार वाली के) नाम हैं। जब और भूत
पति बुद्ध स्वयम्भू, मौय वासुदेव केतु भगव युभग्नेन आदि। दूसरा वग
भौगोलिक शब्द का है। यूनानिया की भौगोल म बड़ी शब्दी थी। इस कारण
इस प्रकार के शब्द भी—जगर प्रात पवत नदियों आदि के "अ"—वही की
भाषा म पर्याप्त सत्या म ये। उच्चाहरण के लिए पाचाल गायार तदग्निला
क्षयपपुर इकुमती इरावती कुभा गगा गण्डवती नमन युग्म विनस्ता
आदि को लिया जा सकता है। इनम उपयुक्त दोनों वगों के "अ" पहले तत्त्वम
रूप म श्रीक म नहीं ये स्वभावत इनम पर्याप्त व्यानि-वरित्तन हैं। जग
गगा जी का 'गगमेत गण्डवती' का 'बोदेतातेत' और 'क्षयुल' का
सन्दर्भकोत्तर हो गया।

तीसरे प्रकार के शब्द सामाय वस्तुपा आदि का नाम है। बृन्दा व होग।
कि भाषाओं म शूहीत "ओ" की हटिग विषय मृत्युन इस तीमर दग का ही
होता है। इसम सर्वाधिक घनादि मूल्यवान पत्त्वर और पहले पौरा तथा युग
मुख्या एव विलास की वस्तुपा के नाम आते हैं। प्रत्यय हा एव वग के "अ"-
स दोनों देशों के जीवन स्तर संस्कृतिक विकास तथा पारस्परिक मम्बार पर
धृच्छा प्रकारा पढ़ता है। इस वग के बुध शब्द उच्चाहरण का म ये
दिए जा रहे हैं।

सहृदय या यूनानी म इनका हप निर्माण है। प्राचीन भाषा
भवकादी म यह शब्द 'वनस्पति क वस्त्र' क धय म प्रयुक्त है। दूसरे म
पहले वेवल ठन के वस्त्र वनत य रुई स पपड़ बनान की बाग भारत का
घनुम घान और शाविशार है। यूरोपीय देशों म घान यानों न निष्पत्ति के
क घवल म पाल पहन रुई घयति वस्त्र दउ और इगी क घाषार

१ सहृदय हिंदू लेखक प० १३८ भग्नमूलर हिन्दू रसित्र
प० २५।

२ श० मोतीघार प्राचीन भारतीय वर मूरा प० , ,

पर पश्चिम में ऐसे वस्त्रों का नाम ही 'सिन्धु' पड़ गया। असुखनीपाल (६६८-६२६ ई० पू०) ने भारत से अनेक प्रकार के पेड़-पौधे मँगवाये थे और उनमें यह ऊन उत्पन्न करने वाला पौधा, (अर्थात् 'कपास') भी था। यूनानियों को तो बड़ा आश्चर्य हुआ जब उन्होंने भारतीयों को पेड़ों पर पैदा होने वाले ऊन का कपड़ा पहने देखा^१। ध्वनि-परिवर्तन के साथ यही 'सिन्धु' शब्द यूनानी में 'सिन्दॉन' हो गया, लैटिन में 'सेता' या 'सेतिनस', ग्रर्वी में 'सतीन', हिन्दू में 'सदीन'। लैटिन का 'सेतिनस' इतालियन में आकर 'सेतिनो', फ्रासीसी में 'सतीन', और अङ्गरेजी में 'सैटिन' हुआ। हिन्दी-पजावी आदि में इस शब्द का प्रचलित रूप 'साटन' है।

'कपास' यूनानी में 'कर्पासांस' है; 'सिन्धु' की तरह ही भारतीय शब्द 'कर्पास' भी सूती कपड़े और रुई के साथ पश्चिमी देशों को गया। हिन्दू में यह 'कर्पस' है, लैटिन में यह 'कर्वसुस' तो ग्रर्वी में 'केरपास'।

'अरिसि' और 'ब्रीहि' यूनानी भाषा में क्रमशः 'ओरुज' और 'ब्रिज' है। 'अरिसि' शब्द तमिल से गया है। जिसका अर्थ चावल होता है। ग्रर्वी में यही 'अरुज' और 'रुज्ज' हो गया^२। कुछ लोगों के मतानुसार तमिल शब्द 'अरिशि' या जो मूल द्रविड़ में 'अरिकी' या 'वारिशी' था। इसीसे पश्तो 'ब्रिजहे' और फारसी के 'विरज' अथवा 'विरिज' है, यही यूनानी में 'ओरुज' और 'रुज' है। लैटिन 'ओरिज' फ्रेच 'रिज' या 'रिस', स्पेनिश 'ओरोस', और अङ्ग्रेजी 'राइस' भी इसी से निकले हैं। वेवर के मत से दोनों यूनानी शब्द 'ओरुज' और 'रुज' सस्कृत शब्द 'ब्रीहि' से विकसित हुए हैं।^३

'पिप्पली' का यूनानी रूप 'पेपरी' है। लैटिन में आकर यह 'पिपर' बना और अङ्ग्रेजी में 'पेपर' हो गया।

सस्कृत का 'कुँकुम' शब्द यूनानी में 'कोकेस' रूप में है, मेरा अनुमान है यह पुरानी फारसी में 'कुर्कुम' होते गया है। 'मरकत' ग्रीक में पहुँचकर 'स्मरगदांस' बन गया। वेवर के विचारानुसार यह सामी भाषाओं से होता हुआ वहां पहुँचा। सस्कृत के 'कटुकफल' का रूप यूनानी में 'करुओफुल्लान्' है, विकास की दृष्टि से इसका सम्बन्ध कदाचित् मूल सस्कृत के प्राकृत रूप 'कडुग्रफल' से है। भारतीय शब्द 'कलम' ही यूनानी में पहुँचने पर 'कलमास' बना। लैटिन में इसका रूप 'कैलमस' है। हिन्दी-उर्दू में प्रचलित रूप 'कलम'

१. हेरोडोटस ३, १०६।

२. रॉलिन्सन - इण्टरकोर्स विद्विन इण्डिया एण्ड वेस्टर्न चर्ट्ड, पू० १४।

३. इण्डियन एण्टीवेरी, नई १८७३, पू० १४७।

भरवी से भाया है तितु मूल में यह 'म्ब भरवी' का है नहो। बंदर का मत है कि भरवी में यह ससृत या यूनानी में गया है।^१

ससृत में 'पूर' शब्द यूनानी में 'क्लोर' हो गया है। लैटिन और अगरेजी में इसी का रूप 'क्लर' है। 'चादन' यतानी में 'सान' है। इसका एक और रूप 'सातालोन्' भी यूनानी में है जो स्पष्ट ही क्रात्सा 'सान' से सम्बद्ध है जो स्वयं 'चादन' से निकला है। ससृत 'शृगवेर' यूनानी में आवार दिग्गिवरी' बन गया है।

मेर विचार में ससृत 'म्ब इम्ब' ही यूनानी में 'इलफात' हो गया था। कि भारत में हाथी दाते पश्चिमी दशा को जाना था यह अनेक द्यावा में प्रमाणित है। यह 'हाथी' अथ का वाचक अथ परिवर्तन की प्रतिक्रिया से हुआ है। लैटिन में इसी से 'एलिफल्स' प्रजड़ील फैब्र में 'ओलिफान्ट' प्राचीन अगरजी में 'ओलिफाट' और अवाचीन अगरजी में 'एलिफट' विकसित हुए हैं।

'वृद्ध' शब्द यतानी में बलुराम अथवा 'वृहत्याम' इसका एक ऐप वेरिल्वॉम्स' भी मिलता है। वेरिल्वॉम्स' से हा लैटिन वेरिलस, प्राचीन फासीमी वेरिल, तथा अगरजी 'वेरिल' आदि निकले हैं। हिन्दी में प्रचलित रूप विल्वोर फारमी के 'विल्वूर' से है जो स्वयं ससृत के 'वृद्ध' से ही विकसित है।

यूनानी 'ग्र' 'सक्सरि' अथवा सेक्साँन 'गकरा' आय है। अगरजी का शब्द 'गुगर', फासीसी का 'गुवर' स्पनी का गजूरह' और भरवी का 'असोखर' भी इसी में हैं। फारसी का 'गवर' भी ससृत 'शवरा' से ही है। ससृत में 'शवर का मूलाय' है 'बालुका करा', रूप सार्थक के बारण था। महा वह 'चीनी' के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। मूलतः 'शकरा सफे' को तहा वहिक सम्भवत दानेदार राष्ट्र के घोस्ते को कहते थे।

मसृत 'म्भ' यूनानी में 'ओकनास' है, लैटिन में यही 'ओवन' और अगरेजी में 'ओब ऐप' में मिलता है। इसी प्रकार प्रामाणिक यूनानी भाया में प्रमनाई' बना और 'बम्पन' बम्पान्। मूलत 'बम्पन' 'ग्र' ससृत का नहीं अपितु द्रविड़ है और इसका अथ 'बदल' या 'क्षेत्र' है। यूनानी में यह सेनापति के अथ में प्रयुक्त होता है ससृत 'प्राच्य' यूनानी में प्रसाह हो गया। वहाँ यह 'मगध राज्य' के लिए आता है। उनिष्ठम इस समृद्ध 'प्राच्य' या परास (एक वर्ण) से सम्बद्ध करते हैं।

भारत का 'इण्डिया' नाम भी मूलत यूनानी है। यूनान में भूगोलगास्त्र का पिता होने का गौरव हेकेतेअस को प्राप्त है। भारत का इन्होंने ही सर्वप्रथम उल्लेख किया है। स्थकृत 'सिन्धु' का डिरानी में 'हिन्दु' हुआ। फिर आयोनियन लोगों की भापा में महाप्राण का अभाव होने से, यह 'इन्दो' या 'इन्दोस' हो गया। इसी से अग्रेजी आदि में 'सिन्ध' नदी का नाम 'इण्डस' बना और भारत का नाम विभिन्न यूरोपीय भापाओं में इदो, इन्दिया, इण्डिया आदि।

इसी प्रकार स्थकृत 'उच्च' का ग्रीक भापा में 'ओरुजान', 'नलद' का 'नर्दास', 'मदार' का 'मदेलकान', 'अगर' 'अगलोखान', 'उपल' का 'ओपलिलअरॉस', 'कटुभूरि' का 'कत्तुवोउरिने' तथा 'मुळ' का 'मुस्खोन' हो गया। लैटिन में

ऊपर स्थकृत 'सिन्धु' से लैटिन में आकर 'सेता' या 'सेतिनस्', 'कर्पास' से 'कर्वेसुस', 'पिपली' से 'पिपर', 'कलम', से 'कैलमस', 'कर्पूर' से 'कैफ्फोर', 'इभिदन्त' से 'एलिफैन्टम्', 'वैदूर्य' से 'वेरिलस' तथा 'अर्म' से 'ओर्वेस' का उल्लेख किया जा चुका है। वस्तुतः लैटिन में यूनानी आदि अन्य भाषाओं के माध्यम से संस्कृत के काफी शब्द आए हैं। कुछ शब्द प्रत्यक्ष सपर्क से सीधे भी गए हैं, यो आज इतने दिनों वाद अकाद्य प्रमाण देते हुए यह सनिश्चय कहना प्रायः बहुत कठिन है कि अमुक शब्द सीधे आए हैं तथा अमुक-अमुक शब्द अमुक-प्रमुक भापाओं से होते आए हैं। लैटिन में प्रयुक्त स्थकृत के कुछ अन्य शब्द ये हैं :

स्थकृत	लैटिन
यवद्वीप	इवादिअस
लक्षद्वीप	लक्कादिवेस
सौराष्ट्र	ओराश्च
आन्ध्र	आन्द्रे
खिन्नवारि	किन्नावारि
शुल्वारि	सल्फर
कुष्ठ	कास्टस
सगुण	सकोन
सफेत	सपेनास
मुळ	मस्कुलस

'कटहल' के लिए लैटिन में 'पल' शब्द मिलता है जो 'मूलत' इनी अर्थ में तमिल शब्द है। यह कदाचित् संस्कृत होते लैटिन में गया होगा।

भरवी में

शब्दों का अध्ययन

पुराने में प्रयुक्त मिस्त्र उज्ज्वल, पाकूर बलम तथा नमारिय (प्रथमाश) भूलत गरुड़ के मुष्ट, पूर बलम नमरा हैं। इनके धरिरित सहृदय का पिण्डी भरवी में 'दिनकिन' शब्द का 'मसोलर' (लकड़ा) का 'परनदोप' 'दण्डिण' वा 'दण्डनाय', सिथ (नदी) का 'सहू' 'विष' का वेण (जटर विषय), इत्ता' से 'हेल' (इतायची) तावूल' का 'तम्बोल' कनकपत्तन का 'वरापन' (तीरोग), 'बोबल' वा 'फोफल' (मुपारी) नीलोत्पत्ति का 'बीलोफर' 'वर्पाग' वा 'पास' विषना का 'इशीफल' जायफल का 'जायाल', शिखर का 'गतीरा' (द्रुतिया) बहेड़ा का बलीलह हर का 'हलीसज', भिलातक का बलादर, मठल (वारोमठल) का मदल (धगर बी लकड़ी जो पारोमठल से जाती थी), तुगुम्ब का तुरुम्ब थीट का 'सीन' (वपडा) 'पट' का बोत नील का नीलज नारियल का नारनील 'जीवा' का जब 'उच्च' का 'गोज, उज्जन' का उज्जन या 'उरन तथा 'बहुमास' का बामास मादि सकड़े 'गच' हैं।

इसपात को भरवी में मुहानिदा (हिंद से प्राई हई) कहते हैं और अक को हिंदसा। हिंदी तलबार और हिंदी भाले भी वहाँ बड़ मशहूर रह है। भरवी 'बारजा' (नेडा) को 'बेडा दोनीज' (नाव विशेष) को ढोगी तथा 'होरी' को 'हाढ़ी' से जोड़ा गया है।

वस्तुत इम क्षेत्र में अभी तक व्यवस्थित काम नहीं हुआ है। यहाँ बेबल बानगी स्वरूप कुछ सब्द दिए गए। यनि यूनानी, लटिन तथा अरबी से व्यवस्थित तुलना बी जाय तो ऐसे शब्दों की सह्या बहुत बड़ी ही सकती है साथ ही इनके द्वारा इस बात का भी पता चल सकता है कि वस्तु एवं विचारों के द्वारा में भारत ने यूनान रोम और अरब दोनों कुछ दिया।

★★

